नवरत्नउपदेशका मानसशास्त्रीय विश्लेषण

(पारला-मुंबईमें आयोजित अध्ययनशिखिरके केसेटोंके आधार पर गुजराती प्रवचनोंका हिन्दी अनुवाद)

o
o
o
o
o
o
o
o
o
o
o
o
o
o
o
o

गोस्वामी श्याममनोहर

लेखक-प्रकाशक:
गोस्वामी श्याम मनोहर
६३, स्वस्तिक सोसायटी, चौथा रास्ता,
जुहुस्कीम, पारला, मुंबई - ४०००५६

अनुवादक: अशोक शर्मा

नि:शुल्क वितरणार्थ आर्थिक सहयोग:
वैष्णव समाज मेड़ता राजस्थान

नवरत्न उपदेशका मानसशास्त्रीय विश्लेषण

(प्रति: ११०० प्रकाशनवर्ष: वि.स. : २०६२ श्रीवल्लभाब्द : ५२७)

मुद्रक:
जी. एन. पिन्टस्
२९९४/१, मस्जिद खजूर,
धर्मपुरा, चावड़ी बाजार,
दिल्ली - ११०००६

।।श्रीकृष्णाय नमः।।

।। श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः।।

प्रकाशकीय

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरणका यह **नवरत्न** ग्रंथ, मूलमें उत्तर गुजरातके खेरालु गांवके श्रीगोविन्द दवेको भगवत्सेवा करते हुवे जो उद्वेग होता था उसके निवारणकेलिये प्रकटा उपदेश है; और षोडशग्रंथोंमेंका छट्ठा ग्रंथ है.

महाप्रभुजी द्वारा चुने मार्गसे, कलिकालक्रमसे, विपरीत ही दिशामें चलनेकी मानसिकता रखनेवाले हम गोस्वामी बालक और अनुगामी वैष्णव जनताको आज पुष्टिसम्प्रदायमें सबसे अधिक अगर कोई बात चुभती है तो वह महाप्रभुजी द्वारा उपदिष्ट सिद्धान्त ही हैं. ऐसी अपनी दुर्गतिमें से बाहर आनेके लिये उपदेशक और अनुगामी एक बार मिलकर अपने मूल सिद्धान्त और उनके निरूपक ग्रंथोंका निभ्रांत आशय पारस्परिक सहमतिसे जब तक निर्धारित न कर लें तब तक अपनी समस्याका समग्रतया सांप्रदायिक समाधान नहीं मिल सकता. अतएव कुछ गोस्वामी नवयुवक एक सार्वजनिक चर्चासभा करनेका आग्रह कर रहे थे. मैं उस समय भी बहुत आशावादी नहीं था तो भी चर्चासभामें विचारोंकी आधारभूमिकाके रूपमें विचार्य मुद्दे, सिद्धान्तवचन; और उनके भावाभिप्राय जो मरी समझके अनुसार ठीक लगते थे उनका १३ शीर्षकोंमें एक संकलन प्रस्तुत किया था. उसके बाद **सिद्धान्तवचनावली** के तौरपर प्रकाशित करवाकर सबको भिजवा भी दी थी. आज परन्तु महाप्रभुजीके नाम पर अपने चरण पुजवानेवाले हम गोस्वामी बालकोंको महाप्रभुजीके वचन गालीसे भी अधिक चुभते हैं. उस कारण अनुगामी वैष्णव जनताको भी महाप्रभुजीके साक्षात् वचनों के बजाय उनके वंशजोंके वचन अधिक कर्णप्रिय लगते हैं. इस

कारण पहले तो कोई सुनना ही नहीं चाहता अथवा तो सुनकर मूल आचार्यवाणीका यद्वा-तद्वा अभिप्राय देकर छूट जाना चाहते हैं. अथवा कितनेही चतुर गो.बा. अब सिद्धान्तोंके प्रकट हो जानेके कारण उन्हें सिद्धान्तके तौर पर व्यक्तिगत अथवा तो सार्वजनिक रूपमें मानते हैं परन्तु उसके होते हुवे भी आठ गुना हो हल्ला सिद्धान्तविरुद्ध कार्यक्रमोंकी एक कूटनीति भरा जनतामें शुरु किया है. इसका हेतु केवल एक ही कि जैसे बने वैसे जनतामें व्यामोह फैला दो कि सच्चे सिद्धान्तोंकी गंभीरताकी ओरसे पुष्टिमार्गीय जनता आंख कान मोड़ ले!

इस परिस्थितिमें प्रभुने जिसे जैसी सामर्थ्य दी हो तदनुसार महाप्रभुजीका वास्तविक अभिगम जनताके समक्ष प्रस्तुत करते रहना चाहिये. क्योंकि आजके स्वार्थकी कीचड़में गलेतक डूब कर फंसे हुये हम सब आजकी तारीखमें हिलमिलकर सर्वमान्य प्रस्तुति अपने सिद्धान्तोंकी कर सकें, ऐसी शक्यता लगती नहीं है. अतएव जो सिद्धान्तचर्चासभा बुलाई गई थी उसके वार्षिकोत्सव रूपमें महाप्रभुजीके वास्तविक अभिप्राय प्रस्तुत करनेके लिये ग्रंथोका हरेक वर्ष स्वाध्याय करते हैं. स्वाभाविक रीतिसे इसमें मेरी भाषा कठोर होती है, जो कि नहीं होनी चाहिये, ऐसा स्वीकारते हुये भी, कभी तो ऐसी तेजाबी भाषासे धुलकर हम गोस्वामी बालक और वैष्णवोंमें रहा हुवा पुष्टिका बीजभाव सच्चे सुवर्णकी तरह चमक उठेगा तो जैसे गालिबने कहा है **इश्क मुझको नहीं वहशत ही सही मेरी वहशत तेरी शोहरत ही सही. कता कीजे न ताल्लुक मुझसे कुछ नही हो तो अदावत ही सही.** इस न्यायानुसार मैं अपने आपको न केवल क्षम्य बल्कि कृतकृत्य भी मान लेनेकी मनोवृत्ति रखता हूं. पुष्टिप्रभु महाप्रभु और प्रभुचरण हमको वास्तविक पुष्टिमार्गके पथिक बनायें उस एक महत्त्वाकांक्षाके साथ!

इस स्वाध्यायप्रवचनको कैसेटमेंसे कम्प्युटरमें उतारनेवाले चि. परेश और चि. मनीषा, जिन्होंने मेरी अनघड गुजराती भाषाको सुधारनेकेलिये घंटो घंटोकी प्रूफरीडिंग की. और अपेक्षित थोड़ा बहुत संशोधन करने एकत्रित होकर बैठनेवाले सब विद्यार्थियोंका हृदयसे आभार मानना कि नहीं! इस बारेमें मेरे मनमें थोड़ी अनिश्चय है. क्योंकि पुष्टिमार्गके प्रति मेरी कि इनकी ही नहीं बल्कि सब पुष्टिमार्गीयोंकी इस बारेमें गम्भीर जबावदारी है ही. अतएव मार्गकी सेवाके कार्यक्रममें आभार किसका मानना होता है! लेकिन फिर भी मेरी भाषाकी कमियां पुष्टिमार्गका विषय न होकर मेरी व्यक्तिगत कमी या न्यूनताका विषय है. उस कारण आभार नहीं मानूं तो मैं कृतघ्नी बनूंगा! इसके अतिरिक्त इसके मुखपृष्ट का डिजाइन बनानेवाले चि. जगदीश शेठ और उनमें रंग भरनेवाली चि. ख्याति मेहता हैं. उसके बाद मुद्रणसंबंधी बहुत कुछ जबावदारी श्रीमनीष बाराईने मेरे प्रत्येक प्रकाशनकी तरह निभाई है. अतएव इन सबका आभार मानना कि नहीं? ....

सब पुष्टिमार्गीयोंकेलिये पुष्टिबीजभावकी निश्चिंत दृढ़ताकी शुभेच्छाओं के साथ!

वि. स. २०६१ दीपावली *गोस्वामी श्याममनोहर*

।।अमृतवचनावली।।

(१) जो कटोरी (गहने धरिके सामग्री आई सो तो भोग श्रीठाकुरजी आप ही के द्रव्यकुं आरोगे सो आप ही को भयो. जो श्रीठाकुरजीको द्रव्य खायगो सो मेरो नाहिं अरु मेरो सेवक

भगवदीय होयगो सो देवद्रव्य कबहूं न खायगो. जो खायगो सो महापतित होयगो. ताते वा प्रसादमेंते भोजन करिवेको अपनो अधिकार न हतो; याकेलिये गोअन्कों खवायो अरु श्रीयमुनाजीमें पधरायो (यह सुनिके सब वैष्णव चुप होय रहे)

{श्रीमहाप्रभु:घरुवार्ता - ३}.

(२) धनादिकी कामनापूर्तिकेलिये जो शास्त्रविहित श्रवण-कीर्तन-अर्चन आदि किये जावे हैं उनकुं कर्ममार्गीय समझने. उदरपोषणार्थ आजीविकाके उपार्जनके रूपमें जो श्रवण-कीर्तन-अर्चन आदि किये जावें उनकुं तो खेतीबारीकी तरह 'लौकिक कर्म' ही कहनो चहिये. मलप्रक्षालानार्थ गंगाजलकुं प्रयोगमें लावे जेसो वो निषिद्धाचरण हे; ओर एसो दुष्कृत्य करवेवालो पापभागी ही होवे है.

{श्रीप्रभुचरण : भक्तिहंस}.

(३) अपने सेव्य-स्वरूपकी सेवा आप ही करनी. और उत्सवादि समयानुसार, अपने वित्त अनुसार करने, वस्त्राभूषण भांति-भांतिके मनोरथ करी सामग्री करनी.

{श्रीगोकुलनाथजी-चतुर्थेश : २४ वचनामृत}

(४) जब सन्तदासको सगरो द्रव्य गयो तब श्रीठाकुरजीकी सेवामें मंडान श्रीठाकुरजीके द्रव्यसों राखे और श्रीठाकुरजीके द्रव्यमेंते चौबीस टका पूंजी करि कोड़ी बेचते. सो श्रीठाकुरजीकी पूंजीमेंते तो कासिदको दियो न जाई सो कमाईको टका दिये. तब इनकी मजूरीको राजभोग न भयो सो महाप्रसाद हू न लियो. टकाके चूनको न्यारो भोग धरते सो राजभोग जानते, महाप्रसाद लेते, और नित्यको नेग बहोत श्रीठाकुरजीके द्रव्यसों होतो; ताते आपुनी राजभोगकी सेवा सिद्ध न भई (जाने). कासिदको दिये सो नारायणदासको लिखें जो तुम्हारी प्रभुतातें एक दिन राजभोगको नागा पर्यो जो मेरी सत्ताको भोग न धर्यो! या प्रकार सन्तदास

विवेकधैर्याश्रयको रूप दिखाये. विवेक यह जो श्रीगुसांईजीको हूंडी पठाई - आपुनी सेवा न भई - राजभोगको नागा माने. धैर्य यह जो श्रीठाकुरजोको द्रव्य खान-पान न किये. आश्रय यह जो मनमें आनन्द पाये - दु:खक्लेश न पाये.

{श्रीहरिरायजी-द्वितीयेश:भावप्रकाश ८४ वैष्णवनकी वार्ता-७६}

(५) पारिश्रमिकके रूपमें वित्त दे के कोइ दूसरेके द्वारा सेवा कराई जावे तो चित्तमें अंहकार तो बढ़े परन्तु वो भगवान्में कभी चाट नहीं सके. भगवत्सेवार्थ कोई दूसरेसूं पारिश्रमिक धन लिये जावेपे तो, जेसे पंडा-पुरोहितनकुं यज्ञयागादिको फल नहीं मिले परन्तु यजमानन्कुं ही मिले, वेसे ही सेवाकर्ताकी सेवा निष्फल बन जाय हे. यजमान, जेसे, दक्षिणा दे के पुरोहितन्के द्वारा यज्ञयाग करा लेवे, वेसे ही भगवत्सेवा (आजकल जेसे पुष्टिमार्गीय हवेलीन्में वैष्णवगण गुसांई-मुखिया-भीतरिया-समाधानीकी बटालियनसूं करवा लेवे हें वा तरह: अनुवादक) करा लेवेमें क्या बुराई? वहां कर्ममार्गमे वो विहित होवेसे पुरोहितन्सूं कर्म सम्पन्न करा लेनो आपत्तिजनक नहीं हे. भक्तिमार्गमें, परन्तु, या तरहसूं भगवत्सेवा करा लेवेको कहीं विधान उपलब्ध न होवेसूं, कोइ दूसरेकुं धन दे के सेवा करानो अनुचित ही हे. भक्तिमार्गमें तो भगवदुक्त प्रकार (निज घरमें निजपरिजनन्के सहयोगद्वारा निजी तन-मन-धनसूं ही) भगवत्सेवा करनी चाहिये.

{सुरतस्थ ३/२ गृहाधिपति श्रीपुरुषोत्तमजी:सिद्धा.मुक्ता. विवृ.प्रका.२}

(६) "**अत्र गृहस्थानविधानेन, स्वगृहाधिष्ठित-स्वरूप-भजन-परित्यागेन अन्यत्र तत्करणे भक्ति: न भवति, इति सूचितं भवति**" अर्थात् यहां सेवोपयोगी स्थानके रूपमें निज घरको विधान उपलब्ध होवेसूं, अपने घरमें बिराजते ठाकुरजीकी सेवा छोड़के कोइ दूसरी जगह (अर्थात् हवेलीन्में, जेसे आजकल,

भेंट-सामग्री चढ़ा के नित्य या मनोरथों की झांकी कर लेनो वैष्णवन्ने पुष्टिमार्गमें परमधर्म मान लियो हे वेसे) भगवत्सेवा करवेवालेन्कुं कभी भक्ति सिद्ध नहीं हा सके हे.

{श्रीवल्लभात्मज-श्रीबालकृष्णजी:भक्तिवर्धिनीव्याख्या २}.

(७) जो श्रीवल्लभकुल है वह अपने सेव्यस्वरूपपर कैसो स्नेह रखे हैं कि एक ओर द्रव्यको ढेर करो और दूसरी ओर श्रीठाकुरजी पधरावो तो श्रीवल्लभकुल इस द्रव्यकी ओर देखेगो भी नहीं; और श्रीठाकुरजीकूं अतिस्नेहसू पधरा लेगो. लेकिन जो या कलिके जीव हैं उनकू तो द्रव्य ही प्रिय लगे है. या कारण वह तो श्रीठाकुरजीकी ओर देखेंगे नहीं. और केवल वैभवकी ओर देखेंगे और तुरन्त मोहमें पड़ेंगे....

(श्रीमट्टूजी महाराजके ३२ वचनामृत : ५)

(८) लौकिक अर्थकी इच्छा राखिके जो भगवद्भजनमें प्रवृत्त होय सो सर्वथा क्लेश पावे हे. इतने कछू लाभके लिये पूजादिकमें प्रवृत्त होय सो 'पाखंडी' ओर 'देवलक' कह्यो जाय हे. तासूं लाभपूजार्थ सिवाय जामें निषेध नहीं हे एसी रीतिसूं 'मेरो लौकिक सिद्ध होय' एसी इच्छासूं जो भजनमें प्रवृत्त भयो होय सो 'लोकार्थी' कह्यो जाय.

{श्रीनसिंहलालजी महाराज:सिद्धान्तमुक्तावलि-टीका श्लोक १६-१७}

(९) श्रीउदयपुर दरबारकुं आशिर्वाद! याके द्वारा सूचित कियो जावे हे कि चल-अचल सम्पत्तिके आर्थिक तथा स्वामित्वकी व्यवस्थाके बारेमें योग्य व्यक्तिन्की एक सलाहकार समिति नियुक्त कर ली गई हे. सेवा आदि विषयन्में पुरातन तथा प्रवर्तमान प्रणालिके अनुसार काम कियो जायेगो; ओर यदि पुरातन परम्पराको बाध न होतो होयगो ओर समिति कोइ तरहके सुधारकी इच्छा रखती होयगी तो ऐसे सुधार भी स्वीकारे

जायेंगे. ओर श्रीठाकुरजीको द्रव्य अपने व्यक्तिगत उपयोगमें नहीं वापर्यो जायेगो, जेसी कि परम्परा आज भी हे ही, ओर याकुं निभायो जायेगो. तो भी मेरे पूर्वजन्के समयसूं चले आ रहे मेरे स्वामित्वके हक्क वा ही तरह कायम रहेंगे. या ही तरह आय-व्ययकुं भी उन-उन बहीखातान्में लिख्यो जायेगो जेसे कि हालमें लिख्यो जा रह्यो हे.

{नि.ली.गोस्वामितिलकायित श्रीगोवर्धनलालजीमहाराज: डिक्लॅरेशन मितिभाद्रशुक्लापंचमी सं.१९४८ ता.५/९/१८९३}

(१०) महाराजकुं जो आमदनी वैष्णव आदिन्सूं होवे हे वामेंसूं घरखर्चाके रूपमें महाराज ठाकुरजीकी सेवाको खर्चा निभावें हें. ठाकुरजीकेलिये चल या अचल सम्पत्ति अलगसूं निकालके वामेंस् ठाकुरजीकी सेवाको खर्च नहीं निभायो जावे हे. ठाकुरजीके वैभवको, नेगभोगको, आभूषण-वस्त्र आदिको खर्च महाराज स्वयं अपनी आमदनीके अनुसार निभावे हें... ठाकुरजीके सन्मुख भेंट धरी नहीं जा सके... ठाकुरजीकी भेंट देवमन्दिरमें भेजनी पड़े हे. महाराज वा भटकुं अपने उपयोगमें ला नहीं सकें.

{नि.ली.अमरेलीवाले गो.वागीशलालजीके आम-मुखत्यार : ''अमरेलीहवेली व्यक्तिगत हे या सार्वजनिक'' मुद्देपर सन् १९०९-१० में गायकवाडी बड़ौदा राज्यकी कोर्टमें दी गई जुबानी}

(११) जेसे अपने पूर्वपुरुष स्वयं अपने धर्मके सत्यस्वरूप तथा शुद्धाद्वैतसिद्धान्त कुं पूर्णतया समझके वैष्णवधर्मको यथार्थ उपदेश लोगन्कुं देते हते; ओर मध्यवर्ती कालमें जो सम्पत्ति आदिके कारणन्सूं हमने बहोत हद् तक छोड़ दिये हें, या कारणसूं अधिकांश लोगन्में साधारण सेवा और केवल वित्तजा भक्ति की ही रूढ़िके अनुसार जानकारी बच गयी हे.

{नि.ली.गो.श्रीदेवकीनन्दनाचार्य-पंचमेश द्वारा मुंबईके वैष्णवन्कुं लिखित पत्र : 'आश्रय' अप्रिल ८७ के अंकमें प्रकाशित}

(१२) वकील: यदि कोई भी पुष्टिमार्गीय मन्दिरमें, वैष्णव श्रीठाकुरजीकी सेवा और नेग-भोग केलिये; और श्रीठाकुरजीकी सेवाकुं निभावेकेलिये भेंट आदि दे के वित्तजा सेवा करते होंय और वा मन्दिरमें तनुजा सेवा भी करते होंय तो वो, "मन्दिर पुष्टिमार्गीय नहीं होव" ऐसे आपको कहनो हे?

पू.पा.महाराजश्री : पुष्टिमार्गीय वैष्णवन्केलिये स्वतन्त्रतया तनुजा या वित्तजा सेवा करवेकी कोई प्रक्रिया नहीं ह, ओर एसी सेवाकी जाती होय तो वाकुं 'साम्प्रदायिक मन्दिर' नहीं कह्यो जा सके.

{सुरतस्थ ३/२ गृहाधिपति नि.ली.पू.पा.गो. श्रीव्रजरत्नलालजी महाराज : "नड़ियादकी हवेली वैयक्तिक हे या सार्वजनिक" विवादमें पुष्टिमार्गके विशेषज्ञ साक्षीके रूपमें दी जुबानी}.

(१३) ...या ही तरह अपने यहां जो सन्मुखभेंट धरी जाय हे वो भी देवद्रव्य होवे हे; ओर वा सामग्रीकुं काममें नहीं लियो जाये. श्रीगोकुलनाथजी और श्रीचन्द्रमाजीके घरमें आज भी ये नियम पाल्यो जाय हे. वो वल्लभकुलके श्रीयमुनाजीके पंडाकू दी जाय हे. दूसरा कोई वाको अनुकरण करे तो वो अनुचित हे... हम श्रीनाथजीके सामने जो सन्मुख भेंट धरें हें, वो श्रीमहाप्रभुजीकी पादुकाजीकुं धरें हें, फिर भी वो आभूषणन्में वापरी जावे हे, सामग्रीमें नहीं. सन्मुखभेंट धरवे में बहोत अनाचार होवे हे. या तरहसूं आयो द्रव्य 'देवद्रव्य' बने हे... वाकुं लेवेवालेकी बुद्धि बिगड़े बिना नहीं रहे.

{नि.ली.गो.श्रीरणछोड़लालजी महाराज राजनगर : वचनामृत-४८४-८७}.

(१४/क) वैष्णवन्‌के पास जो भी परम पदार्थ हे वाको अस्तित्व आजके ही दिनको आभारी हे. कालकी भीषणता और परिस्थितिकी विषमता के अत्यन्त विकट युगमें श्रीमत्पभुचरणन्‌के दिव्य सिद्धान्तन्‌के ऊपर अटल रहवेपर ही जीवमात्रको ऐहिक और पारलौकिक कल्याण हो पावेगो. अन्याश्रयके त्यागकी भावनापे जगत्‌के जीव दृढ़ रहें तो वैष्णव-हवेलीन्‌के वैभवके कारण जो वैष्णव घरसेवाकुं भूल चुके हते, संयोगावशात् उन हवेलीन्‌में श्रीके दर्शन आज बन्द भये हें, सो वैष्णवन्‌के घर पुन: भगवत्सेवासूं किलकिलाते हो जायेंगे. ये लाभ सम्प्रदाय और सम्प्रदायीन् केलिये मामूली नहीं रहेगो. ईश्वरेच्छा अनाकलनीय होवे हे. मोकुं तो श्रद्धा हे कि या कठिन परीक्षामें हम सभीन्‌को श्रेय ही सिद्ध होवेवालो हे.

(१४/ख) मेरे अनुयायीन्‌कुं दो प्रकारकी दीक्षा दउं हूं. प्रथम कंठी बांधनी तथा दूसरी ब्रह्मसम्बन्धदीक्षा. कंठी-बांधनी साधारण वैष्णवन्‌कुं ही दी जावे हे तथा ब्रह्मसम्बन्ध विशेषरूपसूं उन अनुयायीन्‌कुं, जो सेवामें विशेषरूपसूं बढ़नो चाहे हें. पहली दीक्षाकुं 'शरण-दीक्षा' कहें ह तथा दूसरी दीक्षाकुं 'आत्मनिवेदन' कहें हें. शरणदीक्षासूं वैष्णव सिर्फ नामस्मरण करवेको ही अधिकारी बने हे तो सेवावाले वैष्णवकुं ब्रह्मसम्बन्धदीक्षा लेवेके बाद ही अधिकर मिले हे. ब्रह्मसम्बन्धवालो वैष्णव अपने घरमें ही सेवाको अधिकारी होवे हे... हम स्वरूपकी सेवा नन्दालयकी भावनासूं करें हें. यालिये हम सातोंके सात पुत्रन्‌के 'घर' ही कहलावे हें ओर हमारे घरकी सृष्टि 'तीसरे-घरकी-सृष्टि' कहलावे हे.

{नि.ली.गो.श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज तृतीयेश: (१४/क) : श्रीमत्प्रभुचरणप्राकट्योत्सव ता. २४/१२/४८के दिन मुंबइके पुष्टिमार्गीय वष्णवन्‌की सभामें अध्यक्षीय प्रवचन. (१४/ख) बयान: मूर्तिबा कार्या. सहा. कमि. देवस्थानविभाग

खंड उदयपुर एवं कोटा बजरिये कमिशन मु.कांकरोली.फाईल संख्या. १/४/६४. श्रीद्वारकाधीशमन्दिर दिनांक ७/११/६५}.

(१५) आज मोकुं अपने हृदयके उद्‌गार कहवे दो, मेरो हृदय जल रह्यो ह, मन्दिरन्‌में मात्र द्रव्यसंग्रहकी प्रवृत्ति बच गई हे; ओर वोही अनर्थन्‌की जड़ हे. ऐसे मन्दिरन्‌के अस्तित्वसूं कोई लाभ नहीं. हमारो सम्प्रदाय सामुहिक नहीं वैयक्तिक हे. सार्वकालिक तथा सार्वदेशिक अवश्य हे परन्तु सार्वजनिक नहीं. "करत कृपा निज दैवी जीवनपर" या उक्तिमें 'निज' शब्दको प्रयोग कियो गयो हे. दैवी जीव कहीं भी हो सके हें परन्तु सार्वजनिक रूपसूं नहीं. आज हम 'पुष्टि' को नाम लेवेके भी अधिकारी नहीं हें! अपने मन्दिर कहां हें! आजको हमारो जीवन चार्वाक-जीवन हो रह्यो हे. क्या हम, आज जा प्रकारको सम्प्रदाय हे, वाकु जिवानो चाहें हे? यदि सच्चे सम्प्रदायकुं चाहते हो तो स्वरूपसेवा घर-घरमें पधराओ एवं नामसेवापे भार रखो... भक्तिकी प्राप्ति स्वगृहन्‌में सेवा करवेसूं ही होयगी. आजके इन मन्दिरन्‌सूं कोई लाभ नहीं हे, क्योंकि इनमें द्रव्यसंग्रहकी प्रधानता आ गयी हे; ओर जहां द्रव्य इकट्ठो होय हे वहीं अनर्थ हो जावे हे. आज सम्प्रदायको विकृत स्वरूप यासूं ही हे.

{ नि.ली. गो. श्रीकृष्णजीवनजी महाराज मुंबई-मद्रास: 'वल्लभविज्ञान' अंक ५-६ वर्ष १९६५}

(१६/क) हम श्रीवल्लभाचार्यजीकी आज्ञाका पालन कहां कर रहे हें? अपने यहां गृहसेवा कहां हे? केवल मन्दिरन्‌में दर्शनसूं क्या लाभ हे? श्रीमहाप्रभुजीकी आज्ञा हे "कृष्णसेवा सदा कार्या" यदि श्रीमहाप्रभुजी मन्दिरकुं मुख्य मानते तो अपनी तीन परिक्रमान्‌में अनेक मन्दिर स्थापित कर देते. श्रीगुसांईजीने श्रीगिरिधरजीकुं सातस्वरूपके मनोरथ करते समय या प्रकारकी चेतावनी दी थी. मन्दिरस्थापन करते समय उनकुं डर हतो कि घरमेंसूं ठाकुरजी मन्दिरमें पधार जायेंगे. मेरे पिताजीने कल

(उपर्युद्धृत १५ वचनमें) जो कह्यो वो अक्षरश: सत्य हे. तुम अपने घरन्में ठाकुरजीकुं पधराओ ओर सेवा करो.

(१६/ख) पुष्टिमार्गीय प्रणालिकाके अनुसार ट्रस्ट होनो उचित नहीं हे. श्रीआचार्यचरणने प्रत्येक ब्रह्मसम्बन्धी जीवकुं आज्ञा दी हे "**गृहे स्थित्वा स्वधर्मत:**" (भक्तिवर्धिनी) अर्थात् गृहमें रहके स्वधर्माचारण करनो चहिये. गोस्वामी बालक भी आचार्य होवेके बावजूद वैष्णव भी हें. अत: आचार्यश्रीकी उपरोक्त आज्ञाकुं पालनो उनको भी कर्तव्य हे... अत: मेरो तो माननो यही हे कि आचार्यचरणके सिद्धान्तके अनुसार वैष्णवन्कुं स्वयंके घरमें श्रीठाकुरजीकी सेवा करनी चहिये ओर धर्मग्रन्थन्को पठन-पाठन करनो चहिये. नहीं कि मन्दिरन्में जाके... ट्रस्ट तो पुष्टिमार्गीय प्रणालिकासूं संगत होनेवाली बात नहीं बल्कि अपनी प्रणाली भंग करवेवाली बात हे.

{दहिसरमें श्रीगोवर्धननाथ हवेली ट्रस्टके संस्थापक पू. पा.नि.ली. गो.श्रीव्रजाधीशजीमहाराज : (१६/क) 'वल्लभविज्ञान'. अंक ५-६ वर्ष १९६५, (१६/ख) 'नवप्रकाश' अंक ८ वर्ष ८}

(१७/क) ओर जब जनरल पब्लिक ट्रस्ट हे तब ठाकुरजीकुं गोस्वामीके सम्बन्धसूं पृथक् करके, ठाकुरजीकुं सब सम्पत्ति अर्पण करके, अर्थात् भेंट करके रिलीजिअस एंडॉमेन्टके रूपमें भये वे ट्रस्ट हें. ऐसी अवस्थामें इन ट्रस्टन्सूं जो नेग-भोग चलायो जावे हे, वो देवद्रव्यसूं चलायो जा रह्यो हे. देवद्रव्यको उपभोग करनेवालो अन्तमें देवलक ही होवे हे. श्रीमदाचार्यचरणने प्रभुकी सोनेकी कटोरी गिरवी रखके जब भोग आरोगायो तब आपने वा द्रव्यसूं समर्पित सारो को सारो प्रसाद गायनकुं खवा दियो. ये हे साम्प्रदायिक सिद्धान्त. या प्रकारके आदर्शरूप सिद्धान्त्को जा प्रथासूं विनाश होवे, आचार्यन्कुं देवलक बनायो जाय, वा प्रथाकुं जितनी शीघ्र सम्प्रदायसूं हटा दी

जाय, उतनो ही श्रेय यामें गोस्वामिसमाज तथा वैष्णवसमाज को निहित हे.

(१७/ख) भगवत्सेवा सम्प्रदायकी आत्मरूप प्रवृत्ति हे. आचार सेवाको अंग हे, सेवाके अनुकूल आचारको पालन कियो जानो चहिये. आचार - पालनकुं प्रमुखता देके भगवत्सवाको त्याग भी उचित नहीं हे. भगवत्सेवा जेसे भी बने करो... गुरुघरन्में मत भेजो... यदि हम भगवद्द्रव्यकुं पेटमें डालेंगे तो वो अपराध हे. ग्रन्थन्के अध्ययनके प्रति हमकुं समाजकुं आकृष्ट करनो चहिये.

{नि.ली.गो.श्रीदीक्षितजी महाराज मुंबई-किशनगढ़ : (१५/क) ''आचार्योच्छेदक ट्रस्ट प्रथासे पुजारीपनकी स्थापना घोर सिद्धान्तहानि एवं घोर स्वरूपच्युति'' लेख पृष्ठ ७. (१६/ख) 'श्रीवल्लभविज्ञान' अंक ५-६ वर्ष १९६५ में प्रकाशित वक्तव्य}.

(१८/क) जेसे स्वरूपसेवा स्वार्थबुद्धिवश ओर लौकिक कार्य समझके नहीं करवेकी श्रीमहाप्रभुजीकी आज्ञा हे, वसे ही नामसेवा भी वृत्त्यर्थ नहीं करनी चहिये, ऐसी आज्ञा श्रीमहाप्रभुजी निबन्धमें करें हें... वृत्त्यर्थ सेवा करवेसूं प्रत्यवाय (दोष) लगे हे. जेसे गंगाजमुनाजलको उपयोग गुदाप्रक्षालनार्थ नहीं कियो जा सके, वैसे ही सेवाको उपयोग भी वृत्त्यर्थ नहीं करनो चहिये.

(१८/ख) तन ओर वित्त प्रभुकेलिये वापर्यो जाय तो मन भी प्रभुमें अवश्य लगे ही हे. अतएव श्रीवल्लभने उपदेश कियो हे कि ''तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा''. मानसी जो परा हे वो सिद्ध करनी होय तो तनुवित्तजा सेवा आवश्यक हे. तन और वित्त कहीं एकत्र लगायो जाय तो चित्त भी वहां दिन-रात लग्यो रह सके हे. दलालीको व्यवसाय करवेवालेके व्यावसायमें केवल तनसूं श्रम कियो जावे हे परन्तु वामें वित्त स्वयंको लगायो नहीं जावे हे. अतएव बजारके भावन्की घटबढ़में दलालकुं तनिक भी मानसिक चिन्ता होवे नहीं... कोइ बच्चाको पिता केवल ट्युशन फी देके

बादमें समझ ले हे कि बच्चा परीक्षामें पास हो ही जायेगो. इन तीनोंकुं फलप्राप्ति होवे नहीं क्योंकि तनुजा-वित्तजा दोनों नहीं लगी. अब तनुवित्तजा दोनों लगावेवालेके चित्तप्रवण होवेको उदाहरण देखें: एक दुकनदार दुकान और मालकी खरीदीमें पूंजी लगा के व्यापार शुरु करे सुबहसूं रात तक वहां उपस्थित रहके जब तन भी व्यापारमें लगावे हे तो या कारणसूं दिनरात वाकुं व्यापारके विचार आते रहें: अच्छी तरह व्यापार केसे करूं - केसे व्यापार बढ़े... अत: पुष्टिमार्गें प्रभुमें आसक्ति सिद्ध होवेकेलिये मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया समझायी गयी हे कि भावपूर्वक भक्तकु तनुवित्तद्वारा सेवा करनी चहिये.

{पू.पा.गो.श्रीगोविन्दरायजी महाराज पोरबन्दर : (१६/क) 'सुधाधारा' पृ.११४. (१६/ख) 'सुधाबिन्दु' पृ.७३}

(१९) वल्लभमतमें ये सिद्धान्तत: गलत हे ओर ऐसे देवस्थानन्के चढ़ावाको प्रसाद भी खायो नहीं जा सके हे, क्योंकि वहां देवलकत्व हो प्रधान हे. आजके युगकुं देखते भये जहां न्यास करनो आवश्यक हे वहां उपर्युक्त सिद्धान्तन्कुं ध्यानमें रखके ही न्यास करनो आवश्यक हे, जासूं देवलकवृत्तिसूं बच्यो जा सके. यदि एसी व्यवस्था नहीं की गइ तो देवद्रव्य होवेगो, जाके सेवन करवेसूं आचार्य स्पष्ट कहें हें कि नर्कपात होयगो.

{नि.ली.गो.श्रीरणछोड़ाचार्यजी प्रथमेश : ''हमारी धार्मिक स्थितिका वर्तमान स्वरूप एवं भविष्यकी व्यवस्थाहेतु प्रतिवेदन (दि.२५/२/८१) पृ.१२}

(२०) क्योंकि श्रीनाथजी स्वयं वाके भोक्ता हें किन्तु वैष्णव-वृन्द तथा सेवकगण भी वा महाप्रसाद लेने तकके अधिकारी नहीं हे. यह आचार्यचरणके इतिहाससूं प्रत्यक्ष प्रमाणभूत हे. वाके महाप्रसाद लेवेको केवल गायकुं ही अधिकार हे. अन्यथा वा देवद्रव्यके उपभोग करवेसूं निश्चय ही अध:पतन हे... सब प्रकारके दान-चढ़ावा व वसूल वसूली करवेको उल्लेख कियो गयो

हे, वो भी सम्प्रदायके सिद्धान्तसूं नितान्त विरुद्ध हे. अपने सम्प्रदायकी प्रणाली के अनुसार जो अपने सम्प्रदायके सेवक हें, उनको ही द्रव्य गुरु-शिष्यके सम्बन्धसूं लेके सेवामें उपयोग करायो जा सके हे. सम्प्रदायमें सब प्रकारके दान-चढ़ावान्को उपयोग सेवामें नहीं कियो जाय हे; ओर कदाचित् कहीं कियो जातो होय तो वो सम्प्रदायके नियमन्सूं विरुद्ध होवे के कारण बन्द कर देनो चहिये.

{पू.पा.गो.श्रीघनश्यामलालजी-सप्तमेश : "श्रीनाथद्वारा ठिकानेके प्रबन्धकी दिल्ली-योजनाकी आलोचना (ता. १-२-५६)"}

(२१/क) प्रश्नः 'देवद्रव्य' कायकुं कहें हें? 'देवद्रव्य'को मतलब, देवको द्रव्य. ऐसो द्रव्य या पदार्थ जो देवकुं ही उद्देश्य बनाके अर्पण कियो गयो होय वाकुं 'देवद्रव्य' कहें हें. याही प्रकार गुरुकुं उद्देश्य बनाके अर्पण किये गये द्रव्यकुं 'गुरुद्रव्य' कह्यो जाय हे. प्रभुकी प्रसादी वस्तुकुं 'महाप्रसाद' कहें हें. या प्रकारके मन्दिरन्में ठाकुरजीके सन्मुख भेंट धरे जाते द्रव्यकुं ओर ट्रस्टकी ऑफिसमें आते द्रव्यकुं तो स्पष्ट शब्दन्में 'देवद्रव्य' कह्यो जा सके हे; और वा द्रव्यसूं सिद्ध होती सामग्रीमें भगवत्प्रसादी होवेके बाद महाप्रसादपनो तो आवे हे परन्तु वाके साथ वामें देवद्रव्यपनो भी रहे ही हे. याही कारण वैष्णवन्कुं ऐसे महाप्रसादकुं देवद्रव्य समझके ही व्यवहार करनो चहिये. ऐसे महाप्रसादकुं लेनेमें देवद्रव्यको बाध तो रहे ही हे.

(२१/ख) मन्दिरके स्थलके फेरबदलके बारेमें श्री गो.पू. १०८ श्रीबालकृष्णलालजी ने कह्यो कि पुष्टिमार्गमें सार्वजनिक मन्दिरकी परम्परा नहीं हे. यामें व्यक्तिगत स्वरूप, निजी स्वरूप, की ही बात हे; ओर याही कारण पुष्टिमार्गमें सेवाप्रकार देवालयके प्रकार जेसो नहीं हे. मन्दिरको निर्माण भी घर जेसो होवे हे. कहीं भी ध्वजा-शिखर नहीं होवे. वैष्णव भी घरमें ही सेवा करे हें तथा वाकुं 'मन्दिर' ही कहें हें...

{'सेवा-देवद्रव्य-विमर्श' ग्रन्थके सहलेखक पू.पा.गो. श्रीबालकृष्णलालजी महोदय सूरतस्थ ३/२ गृहाधीश : (२१/क) 'वैष्णववाणी' अंक३, वर्ष मार्च १९८३. (२१/ख) 'गुजरात समाचार' अंक २५/५/९३में प्रकाशित}.

(२२) ...ब्रह्मसम्बन्ध लेके सेवा करवेसूं प्रत्येक इन्द्रियन्‌को भगवान्‌में विनियोग होवे हे... मन्दिर-गुरुघर केवल उपदेशग्रहण करवेकेलिये हें. सेवा अपनकुं अपने घरन्‌में करनी हे.

{पू.पा.गो.श्रीमथुरेश्वरजी संस्थापक - श्रीगोवर्धननाथजी मन्दिर, होलिवुड्.एन्.वाय्.अमेरिका: 'वल्लभविज्ञान' अंक ५-६ वर्ष १९६५}

(२३) प्रश्न: अपने सम्प्रदायमें मन्दिरकुं 'मन्दिर' न कहके 'हवली' क्यों कह्यो जावे हे?

उत्तर: सामान्यतया इतर हिन्दु-सम्प्रदायमें 'मन्दिर' शब्द देवालयके अर्थमें प्रयुक्त होवे हे परन्तु ऐसे देवालयके रूपमें मन्दिर जेसी संस्थाको पुष्टिमार्गमें अस्तित्व ही नहीं हे. क्योंकि पुष्टिमार्गमें अपने मांथे जो प्रभु पधराये जावें हें वे प्रभुस्वरूप ओर उनकी सेवा हरेकको व्यक्तिगतरूपमें वाकी भावनाके अनुसार पधराये जावे हें. स्वयंके श्रीठाकुरजीकी सेवा पुष्टिमार्गीय जीवको एकमात्र स्वयंको कर्तव्य बन जातो स्वयंको ही धर्माचरण हे. पुष्टिमार्गीय सेवा सामुहिक जीवनको विषय नहीं परन्तु व्यक्तिगत जीवनको विषय हे. जेस लोकमें पत्नी अथवा माताको पति अथवा पुत्र की सेवा या वात्सल्य प्रदान करवेको वाको व्यक्तिगत धर्म उत्तरदायित्व ओर अधिकार होवे हे. वा ही तरह जा सेवकके जो सेव्यस्वरूप होवे हें वा सेव्यस्वरूपकी सेवा वाको व्यक्तिगत प्रवृत्ति नहीं परन्तु सेवा तो स्वयंके आन्तरिक जीवनके साथ सम्बन्ध रखवेवाली बात होवेसूं स्वयंके जीवनकी स्वयंके घरमें की जावेवाली धर्मरूप प्रवृत्ति हे... अत: इतर हवेलीन्‌की

तरह जेसे 'श्रीनाथजीको मन्दिर' शब्द, रूढ़ हो गयो होवेसूं, प्रयोग कियो जावे हे. वस्तुत: तो सामुहिक दर्शन या सेवा जहां की जाती होय एसे अन्यमार्गीय सार्वजनिक देवस्थान जेसो वो मन्दिर नहीं हे.

{'सेवा-द्रेवद्रव्य-विमर्श'ग्रन्थके लेखक अ.सो.वा.पू.पा.गो. श्रीवल्लभरायजी सुरतस्थ ३/२ गृहगोस्वामी : 'पुष्टिने शीतल छांयडे' पृ.सं. १५७-१५८}.

(२४) श्रीमहाप्रभुजीने अलग-अलग मन्दिरन्की प्रणाली खड़ी नहीं करी; परन्तु यामें जगद्गुरु श्रीवल्लभाचार्यकी एक दूरदृष्टि हती: प्रत्येक वैष्णवको घर नन्दालय बननो चहिये... कोइ मन्दिरके पड़ौसमें एक बहन रहे हे. वाकुं मन्दिरकी आरतीके घन्टानाद सुनाई पड़े हें. सेवा करवेकुं बैठी भइ वो बहन ठाकुरजीके वस्त्र बड़े करके स्नान करावे जा रही हती कि आरती घंटानाद सुनाई दिये. वो ठाकुरजीकुं वहीं वाही अवस्थामें छोड़के मन्दिरकी तरफ दौड़ गई. थोड़ी देरके बाद लौटके घर आई. अब विचार करो कि या तरहसूं कोई सेवा करे तो वामें आनन्द कभी आ सके क्या? यहां तो प्रत्येक वैष्णवको घर नन्दालय हे.

{श्रीमद्भागवततत्त्वमर्मज्ञा श्रीगिरिराजजीहवेली (बड़ौदा) संचालिका, अमेरिकामें सार्वजनिक मन्दिरार्थ स्वयं के सेव्य श्रीगोवर्धननाथजीके स्वरूप पधराके वहां नवपुष्टि चेतनाको संचार करवेवाली पू.पा.गो. सुश्रीइन्दिराबेटीजी: 'वैष्णवपरिवार' अंक जून ९०}

(२५) "अति धन्यवादार्ह हे कि आपने इतनी मेहनत करके सम्प्रदायके सिद्धान्तन्कूं कोर्टमें समझाये"-- हमारो यामें पूरो सहयोग रहेगो, तनमनधनसे...हमारे सभी चि.बालक या कार्यमें सहयोग करवेकुं तैयार हें".

{पू.पा.गो.चि.श्रीहरिरायजी(जाम.) के सिद्धान्तनिष्ठ पितृचरण नि.ली.गो. श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज : मोकुं (प्रस्तत-सम्पादकको) भेजे दि.२६-१०-८६ और ७-११-८६ के पत्रन्में}.

(२६) मैं तो एक बात कहनी चाहूंगो कि समाजके भीतर ओर अपने सम्प्रदायमें इतनो अधिक सिद्धान्तवैपरीत्य हो गयो हे कि गुजरातके एक गांवमें... पुष्टिमार्गके ही, अपने सम्प्रदायके ही, दो मन्दिर हें ओर मन्दिरन्की दीवाल भी एक ही हें; परन्तु... ऐसी जबरदस्त प्रतिस्पर्धा वैष्णवसमाजमें पैदा हो गई हे कि मानों एकदूसरेके साथ स्पर्धा करते होंय ऐसे. ईर्ष्या-द्वेषको वातावरण जब सेवाके क्षेत्रमे उत्पन्न हो जावे तो वासूं बढ़के लोकार्थित्व ओर क्या हो सके हे! ...जो शॉ-बिजनस सम्प्रदायमें चल रह्यो हे वाको निवारण होय एतदर्थ एक सुन्दर चर्चासभाको आयोजन भयो हे... मेरी सविशेष विनंती ये हे कि एसे सभी सिद्धान्तवैपरीत्यकी फजीहत जो सर्वाधिक कहीं होती होय तो गुजरातमें होवे हे. भागवतमें भी लिख्यो भयो हे कि "गुर्जरे क्षीणतां गता"... अतः सिद्धान्तकी सत्यनिष्ठा कहीं साधनी होय तो... ओर श्रीमहाप्रभुजीके पुष्टिसिद्धान्तन्के सद्जागरणकी कहीं आवश्यकता होय तो... गुजरातमें एसी सभान्को आयोजन होनो चहिये...

{पू.पा.गो.चि श्रीद्रुमिलकुमारजीमहोदयः "पुष्टिसिद्धान्त चर्चासभा (दि.१०-१३ जनवरी, ९२. पार्ले-मुंबई) विस्तृतविवरण" पृ.३१७-३१८}.

(२७) पुष्टिमार्ग गुप्त हे, दिखावाकेलिये तो हे ही नहीं, भक्त ओर भगवानके आन्तरिक सम्बन्ध दृढ़ करवेको मार्ग हे... दोनोंके संबंध एसे होने चहिंये कि कोइ तीसरेकुं वाकी जानकारी न हो पाये. अपनो अपने भगवान्के साथ क्या सम्बन्ध हे याकुं

दूसरे कोइ व्यक्तिकुं जतावेकी आवश्यकता ही क्या हे? प्रशंसा पावेकुं? स्वयंकी महत्ता बढ़ावेकुं? ये तो सभी कुछ बाधक हें.

{पू.पा.गो.चि.श्रीद्वारकेशलालजी महोदय (श्रीवल्लभाचार्य प्राकट्यपीठ अमरेली-कांदीवली-चम्पारण्य-सूरत) : 'पुष्टि नवनीत' पृ.१२}

(२८/क) प्रश्न : आज चल रहे जो डिस्प्युट् हैं वामें कितनेक सिद्धान्त चर्चित हो रहे हैं जैसे कि नये मन्दिर नहीं खोलने, ट्रस्टमन्दिर नहीं बनाने, ठाकुरजीके नामपे द्रव्य नहीं लेनो, ठाकुरजीके दर्शन नहीं कराने, तथा बिना समझे-सोचे कोईकु ब्रह्मसम्बन्ध नहीं देनो. इन सब विषयमें आपको अभिमत क्या है?

उत्तर : देखो मन्दिरकी जहां तक स्थिति है तो ये बात सत्य है के पुष्टिमार्गीय प्रकारसुं मन्दिर तो मात्र एक ही है; और सबकी घरकी स्थिति हती... आज मन्दिर जितने हैं अथवा जिन स्थाननकुं अपन मन्दिर समझे हैं वो स्थान... वाकु अपन 'मर्यादापुष्टि मन्दिर' कह सके हैं, 'पुष्टिमन्दिर' नहीं. पुष्टिको प्रकारतो मात्र गृहसेवामें ही है.

(२८/ख) आजसे डेढ़सौ साल पहले, श्रीमहाप्रभुजीके समय से तब तलक, पुष्टिमार्गमें कोई भगवद्-मन्दिर खोलनेका क्रम नहीं था. प्रत्येक वैष्णव घर घरमें सेवा हो उसका आग्रह रखता था. वैष्णव अपने घरमें श्रीठाकुरजीके स्वरूपको सेव्य तरीके पधराकर गुरुघरकी प्रणालिकानुसार सेवा करते थे.

{पू.पा.गो. श्रीव्रजेशकुमारजी तृतीयेश २७/क: 'आचार्यश्रीवल्लभ' अगस्त १९९४, अंक ५, पुष्टिमार्गवर्तमान, प्रश्न-उत्तर ४, पृ. ७, २७/ख : ब्रज मोहे बिसरत नाहीं, पृ. १४०-४१}

(२९) श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं कि दुनियांमें भटकते रहते अपने मन-चित्तकू श्रीठाकुरजीके साथ जोड़कर उनकी

तनुवित्तजा सेवा करनी... तनुवित्तकी सेवा अर्थात् अपने कमाये भये अपने धनसूं, अपने घरमें श्रीठाकुरजीकी अपने शरीरसूं सेवा करनी वह.

{पू.पा.गो.चि. श्रीवागीशकुमारजी 'वल्लभीय चेतना', अक्टूबर १५, २००३, पृ. ४}

(३०) चित्त भगवत्प्रेममें परिपूर्ण हो जावे है, पूर्णत: भगवानमें जुड़ जावे है, तन्मय और तल्लीन हो जावे है तब परा सेवा भई. यह 'मानसी सेवा' कहलावे. याके साथ मनुष्यकू शरीरसू भी सेवा करनी चहिये... तनुजा सेवासू शरीरकी शुद्धि होवे है. अहंता अर्थात् हूंपनेकू नाश होवे है. धनसू होती सेवा वित्तजा सेवा है. वासूं ममता-मेरेपनेकू नाश होवे है. अहंता और ममता एक दूसरेके साथ जुड़ी रहे हैं. अतएव तनुजा और वित्तजा सेवा साथ होनी चहिये. यामें प्रधानता तनुजासेवाकी है. कवल धन देनेसू सेवा नहीं होवे. यासू राजसी वृत्ति आवे है.

{पू.पा.गो.चि. श्रीद्वारकेशलालजी महोदय, षष्टेश, वडोदरा : श्रीमद्भगवद्गीता पुष्टिदर्शन पृ. १२५}

oooooooooooo

oooooooo

oooo

o

विषयानुक्रमणिका

००००००००००
००००००००
००००
०

नवरत्नम्

(आत्मनिवेदनके चिंतनद्वारा लौकिक अथवा अलौकिकके बारेमें, सेवामें उपयोगी अथवा अनुपयोगी बातोंके बारेमें, करनेमें आती हुई किसी भी प्रकारकी चिंता न करनेका उपदेश)

चिंता कापि न कार्या निवेदितात्मभिः कदापीति।
भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकींच गतिम्।।१।।
निवेदनं तु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः।
सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा निजेच्छातः करिष्यति।।२।।

(स्वयं आत्मनिवेदन करनेवाले अथवा उसके द्वारा निवेदित स्वकीयोंका, जो निवेदित अथवा अनिवेदित व्यक्तियोंकेलिये विनियोग होता हो, तब आत्मनिवेदनके स्वरूपका विचार करके भक्तिकेलिये चिंता दूर करनी)

सर्वेषां प्रभुसंबंधो न प्रत्येकमिति स्थितिः।
अतोऽन्यविनियोगेऽपि चिंता का स्वस्य सोऽपि चेत्।।३।।
अज्ञानाद् अथवा ज्ञानात् कृतमात्मनिवेदनम्।
यैः कृष्णसात्कृतप्राणैः तेषां का परिदेवना।।४।।

(आत्मनिवेदन पर पूरा विश्वास न होनेके कारण अथवा भगवत्सेवामें निवेदितका विनियोग न होनेके कारण होती चिंता श्रीपुरुषोत्तमके स्वरूप चिंतवनद्वारा दूर करनी)

तथा निवेदने चिंता त्याज्या श्रीपुरुषोत्तमे।
विनियोगेऽपि सा त्याज्या समर्थो हि हरिः स्वतः।।५।।

(स्वयं या स्वयंके स्वकीय लौकिक अथवा वैदिक व्यवहारोंमें स्वस्थ न रह सकते हो तो उनके कारण होती चिंता भी अपनी साक्षीभावनाके चिंतन द्वारा दूर कर लेनी)

लोके स्वास्थ्यं तथा वेदे हरिस्तु न करिष्यति।
पुष्टिमार्गस्थितो यस्मात् साक्षिणो भवताखिलाः।।६।।

(गुरु एवं भगवान दोनोंकी अथवा तो उन दोनोंमेंसे किसी एककी आज्ञा पाली न जा सकती हो तो उस भयके कारण होती चिंता स्वसेव्य प्रभुके स्वरूपके चिंतन या भगवत्सेवाके तात्पर्य चिंतन द्वारा दूर करनी)

सेवाकृतिर्गुरोराज्ञा बाधनं वा हरीच्छया।
अतः सेवापरं चित्तं विधाय स्थीयतां सुखम्।।७।।

(उपदेशित प्रकारसे सेवाका निर्वाह करनेकी सामर्थ्य हो कि न हो परन्तु उसके कारण स्वभाविक रूपसे उत्पन्न होती चिंताको भगवल्लीलाकी भावना या भगवत-शरणागतिकी भावनासे दूर कर लेना)

चित्तोद्वेगं विधायापि हरिर्यद्यत् करिष्यति।
तथैव तस्य लीलेति मत्वा चिंतां द्रुतं त्यजेत्।।८।।

तस्मात् सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णःशरणं मम।
वदद्भिरेव सततं स्थेयमित्येव मे मतिः।।९।।

।।इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितं नवरत्नं सम्पूर्णम्।।

*****

***

*

श्रीकृष्णाय नमः ।।
।।श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ।।

जयति श्रीवल्लभार्यो जयति च विट्ठलेश्वरः प्रभु श्रीमान् ।
पुरुषोत्तमश्च तैश्च निर्दिष्टा पुष्टिपद्धतिर्जयति ।।

पुष्टिसिद्धान्तचर्चा-वार्षिकोत्सवका उद्देश्य :

आज हम, अपने सिद्धान्तोंका अपनी सक्रिय बुद्धि द्वारा समझनेका जो अभिगम उसका उत्सव, पुष्टिसिद्धान्त-चर्चा-सभाके वार्षिक उत्सव रूपमें मना रहे हैं. निष्क्रिय रीतिसे केवल सुनते रहना, अपनी बुद्धिका प्रयोग न करना, वैसा तो हमने बहुत सुन लिया. अपनी सक्रिय रुचिके साथ महाप्रभुजीकी वाणीका अवगाहन करनेका जो अभिगम वह ही पुष्टि सिद्धान्त-चर्चा सभा थी. उसी चर्चासभाके वार्षिक महोत्सवको इसी अभिगमसे हम गोस्वामी बालक ही नहीं, केवल आप वैष्णव ही नहीं, लेकिन अपन सब पुष्टिमार्गीय मिलकर मनायें, और उसीकी कड़ीके रूपमें अब हम नवरत्नका थोड़ा सघन स्वाध्याय करेगें.

नवरत्नग्रंथके अध्ययनकेलिये विषय :

यह जो पत्रिका है इसे जिन लोगोंने रखना हो वह इसे हाथमें रखें. नवरत्नके श्लोकोंका अन्वय करके; हरेक शब्दका अन्वय करनेके बाद जो वाक्यरचना होती है उस वाक्यके घटक क्या क्या उपादान हैं, उन्हें अलग अलग प्रकारसे अलग अलग टाईपमें दर्शाया गया है. वहां एक टाइपको कन्डेन्स् अर्थात् सघन कर दिया है. तो दूसरे किसी टाइपके नीचे अन्डरलाइन कर दी गई है. किसी टाइपको तिरछा करा है तो किसी टाइपको ब्रेकेट्में डाला गया है. एवं बौक्स ब्रेकेट् साईडमें दिया गया है. अर्थात् जो वाक्यके घटक अलग अलग अंग हैं, उन्ह हम अच्छी तरहसे समझें. आज हमें थोड़ी देर हो गई है, इसलिये आज आप

इसे रखो, रद्दी समझ कर इसे फेंक नहीं देना जोकि हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है. इसलिये समझा रहा हूं कि रद्दीमें मत फेंक देना. मोटे तौरपर आज कदाचित शुरु हो सकेगा तो आज करूंगा, नहीं तो कल हम इसे शुरु करेंगे. इसे समझनेसे पहले कुछ जो मुख्य विषय हैं नवरत्नके उपदेशके पीछे, उन विषयोंको भी हमें समझना पड़ेगा. सबसे पहला विषय नवरत्नके बारेमें यह है कि नवरत्न षोडशग्रन्थोंमें का एक ग्रन्थ है.

पुष्टिमार्गीय आचारसंहिता अर्थात् षोडशग्रंथ :

हम सब पुष्टिमार्गीय हैं और अपने पुष्टिमार्गकी जो कोई आचारसंहिता है तो उस आचार संहिताका प्रथम उपदेश या प्राथमिक उपदेश महाप्रभुजीने षोडशग्रंथों द्वारा किया है. इसके अतिरिक्त भी कितनेक आचारसंहितारूप ग्रन्थ महाप्रभुजीने किये हैं. दृष्टिगत रूपसे जो उपदेश महाप्रभुजीने स्वयं न किये हों, वह उपदेश श्रीगोपीनाथजी और श्रीगुसांईजीने दिये हैं वैसे भी कुछ ग्रंथ हैं. इसके लिये ही षोडशग्रंथ एवं वैसे ही अन्य ग्रंथोंको एककाय प्रकट करनेका प्रोजेक्ट मैंने हाथमें लिया है. लगभग २२ ग्रन्थोंका एक वोल्युम प्रकाशित होने जा रहा है, श्रीमहाप्रभुजी कृपा करेंगे तो निश्चित प्रकाशित हो जायेगा. इसमें श्रीगोपीनाथजी एवं श्रीगुसांईजी द्वारा रचित साधनदीपिका, सर्वोत्तमस्तोत्र, वल्लभाष्टक, स्फुरत्कृष्णप्रेमामृत, श्रीमहाप्रभुजी द्वारा रचित ग्रन्थ पंचश्लोकी, शिक्षाश्लोकी एवं सर्वनिर्णयका साधनप्रकरण, मंगलाचरण ऐसे ग्रंथोका भी समावेश करके लगभग २२ ग्रंथोंकी एक अपनी आचारसंहिताका निकट भविष्यमें प्रकाशन करूंगा. वर्तमानमें हमें जो समझनेकी आवश्यकता है वह यह है कि षोडशग्रंथ हमारी सबसे पहली आचारसंहिता है. षोडशग्रंथके उपदेशसे हम अलग पड़े तो किसी दूसरे मार्गपर भटक जायेंगे और फिर समझलो कि तुम पुष्टिमार्गपर नहीं चल रहे. षोडशग्रंथको समझो, किस प्रकार समझोगे? इसके बारेमें किसी भी प्रकारकी विप्रतिपत्ति (विरोध) नहीं हो सकती: स्वयं

पढ़कर समझो, बालकोंके उपदेश द्वारा समझो, चर्चा करके समझो, अनुवादसे समझा. बशरते अनुवाद प्रमाणित हो तो कोई कठिनाई नहीं.

पुष्टिभक्तिमार्गमें प्रवृत्तको नवरत्नका उपदेश :

श्रीगुसांईजीने यहां नवरत्न ग्रन्थके अन्तमें एक महत्वपूर्ण बात कही है. और उसे प्रत्येक पुष्टिमार्गीयको ध्यानमें रखना चाहिये, श्रोताओंको तो निश्चित, परन्तु जो पुष्टिमार्गके सिद्धान्तोंका उपदेश करना चाहते हैं, उनको तो सविशेष. तो श्रीगुसांईजी आज्ञा करते हैं:

भक्तिमार्गे प्रवृत्तस्य दाढ्‌र्यार्थम् इदम् उच्यते।
अन्धस्य सूर्यइव तद्वविमुखस्य न अत्र अर्थिता।।
(श्रीगुसांईजी कृत नवरत्नप्रकाश)

जो पुष्टिमार्गमें प्रवत्त हुआ है, जो पुष्टिमार्गपर चलना चाहता है. **पुष्टिमार्गे प्रवृत्तस्य दाढ्‌र्यार्थम् इदम् उच्यते** यह जो कुछ उपदेश देनेमें आ रहा है वह पुष्टिमार्गपर स्वयं दृढ़तासे कदम भर सके उसके लिये दिया गया है. **अन्धस्य सूर्य इव** अंधे मनुष्यके लिये सूर्य उगे कि न उगे उससे उसे कुछ फरक नहीं पड़ता. अतएव जो पुष्टिमार्गके सिद्धान्तसे विमुख हैं उनके लिये नवरत्नमें चिंता करनी या नहीं करनी उसके बारेमें कुछ भी नहीं कहा गया है. जो पुष्टिमार्गपर चलना चाहते हैं उन्हें जो चिंता हो रही है, उनकी चिंताके निराकरणका यहां उपदेश है. हमारे लड़का नहीं है, पत्नी नहीं मिल रही, परीक्षामें पास होना है, व्यवसाय नहीं चलता अतएव **चिन्ता कापि न कार्या निवेदितात्मभिः कदापीति** करोगे तो भगवान तुम्हारी लौकिक गति ही करने वाले हैं. एक बात ठीकसे समझ लो कि ऐसी चिंताके साथ नवरत्नका कुछ लेना देना नहीं है. **तदविमुखस्य न अत्र अर्थिता.** यहां ऐसे लोगोंको उद्देशित करके कुछ भी नहीं

कहा जा रहा. यह बात हमें सबसे पहले समझ लेनी चाहिये. चाहो तो लिख कर स्पष्ट करलो तुम्हारे हाथ में कागज है, चाहे तो मनमें उतार लो, लेकिन यह बात सबसे पहला विषय है जो कि प्रत्येकको समझना चाहिये. वर्तमानमें ता जमाना ऐसा विचित्र आ गया है कि मुझे डर लगता है कि थोड़े दिनों बाद किसीको चिंता होगी, तो पुरुषोत्तमयागकी तरह नवरत्नमहायाग भी होने लगेगा : **चिंताकापि न कार्या स्वाहा! निवेदितात्मभि: कदापीति स्वाहा!! भगवानपि पुष्टिस्थो स्वाहा!!!**

कर दो इस तरह सबको स्वाहा लेकिन यहां ऐसा तो कुछ भी कहनेमें नहीं आ रहा भाईसाहब! स्वाहाका सिद्धान्त कहनेमें नहीं आ रहा, वैसी चिंताओंके बारेमें दूसरे १५ ग्रन्थोंमें भी कोई भी ऐसा शब्द महाप्रभुजीने नहीं कहा है.

समझ, श्रद्धा एवं निष्ठानुसार पुष्टिमार्गके सिद्धान्तोंका वर्गीकरण :

(१) **बाल्यावस्था** :

षोडशग्रन्थमें दूसरे उपदेशको बालबोध कहा गया है उससे कुछ हमें संकेत या सूचना मिलती हो तो हम उसे ले सकते हैं. जैसे एक बालकका शारीरिक विकास या मानसिक विकास, परिवारमें या समाजमें जिस रीतिसे होता है उन सबको अनुलक्षकरके बाल्यावस्था, कुमारावस्था, किशोरावस्था, यौवनावस्था, प्रौढावस्था एवं वृद्धावस्था; ऐसे लगभग छः प्रकारकी अवस्थाऐं स्वीकारनेमें आती हैं. षोडशग्रन्थमें दूसरा उपदेश बालबोध है इस हिसाबसे भी यमुनाष्टक एवं बालबोध हमारे लिये बालोपदेश हैं. पुष्टिमार्गीय दृष्टिसे बाल्यावस्था अर्थात् पुष्टिमार्गके सिद्धान्तोंकी समझ पुष्टिभक्ति एवं पुष्टिशरणागतिको जीनेके लिये अपने अभिगमके लिये जैसी निष्ठा या श्रद्धा बाल्यावस्थामें आवश्यक होती है, वैसे उपदेश हैं. अतएव बाल्यावस्थाको उद्देशित करके दिये गये यह उपदेश हैं : यमुनाष्टक एवं बालबोध.

(२) **कुमारावस्था** :

उसके बाद आती है कुमारावस्था. कुमारावस्थाका भेद एवं बाल्यावस्थाका भेद हम संक्षेपमें इस प्रकार समझ सकते हैं कि जो अपने पैरोंसे चल न सकता हो वह बाल एवं जो चलने लगे, थोड़े डगमग कदम रखता हो उसमें कोई मुश्किल नहीं है, लेकिन चलने लगे तो वह कुमार. अतएव यमुनाष्टक एवं बालबोध जो अपने बालबोध हों तो सिद्धान्तमुक्तावली एवं पुष्टिप्रवाहमर्यादाको अपनी कुमारावस्थाका बोध अर्थात् कुमारबोध कहा जा सकता है.

(३) **किशोरावस्था** :

तत्पश्चात् सिद्धान्तरहस्य, नवरत्न, अन्त:करणप्रबोध एवं विवेकधैर्याश्रय यह पुष्टिमार्गीय विश्वास, पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तोंकी समझ, पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तोंको जीनेकी निष्ठा, उनका कैशोर्य अर्थात् किशोरावस्था. अतएव इन चारों ग्रंथोंको हम किशोरबोध कह सकते हैं. महाप्रभुजीकी भाषाकी नकल करनी हो तो बालबोधकी तरह सिद्धान्तरहस्य, नवरत्न, अन्त:करणप्रबोध एवं विवेकधैर्याश्रय, यह अपना किशोरबोध है. अपने कैशोर्यका सूचक है.

(४) **युवावस्था** :

फिर आते हैं, कृष्णाश्रय, चतुश्लोकी एवं भक्तिवर्धिनी. इनमें पुष्टिमार्गके यौवनका उपदेश है. श्रीकृष्णकी अनन्य शरणागति, श्रीकृष्णका अनन्य आश्रय एवं श्रीकृष्णमें अनन्यासक्ति उनका वर्णन कृष्णाश्रय, चतुश्लोकी एवं भक्तिवर्धिनीमें किया गया है. अनन्याश्रय एवं अनन्यासक्ति अगर तुम समझ गये, तो तुम पुष्टिमार्गके यौवनको जीनेके लिये तैयार हो गये. बस, तुम पुष्टिमार्गमें युवा हो गये. यंग बाय हो गये. यंग गर्ल हो गई. एकदम यंगऐजमें तुम आ गये. बस इसके सिवाय पुष्टिमार्गका

यौवन दूसरा कुछ नहीं है कि श्रीकृष्णका अनन्याश्रय एवं अनन्यासक्ति तुमको हो गई. इस कारण भक्तिवर्धिनी तुम्हें आगेका दिशानिर्देश करती है कि अच्छे यौवनके बाद भी एक अवस्था आती है. वह है **यथा भक्तिः प्रवृद्ध्या स्यात्.** यह प्रौढताके बारेमें युवाओंका दिया गया बोध है. अतएव इन तीनों ग्रंथोंको मैं ऐसा कहना चाहूंगा कि तीनों ग्रंथ पुष्टिमार्गके युवाबोध हैं.

(५) **<u>प्रौढावस्था</u>** :

अब आते हैं जलभेद, पंचपद्यानि एवं संन्यासनिर्णय. यह पुष्टिमार्गके प्रौढताके सूचक ग्रंथ हैं. प्रौढताके ग्रंथ इसके लिये कि यौवनम जो कुछ पुरुषार्थ तुम कर सकते थे वह तुमने कर लिया. यह पुरुषार्थ तुमने, तुम्हारे परिवार या परिवार एवं समाजके लाभकेलिये किया. तुम्हारे वैसे स्वरूपके दिशानिर्देश करने वाले ग्रंथ हैं. अतएव यह तुम्हारी प्रौढताके सूचक ग्रंथ हैं. इन तीनोंमें पुष्टिमार्गका प्रौढबाध है.

(६) <u>वृद्धावस्था</u> :

निरोधलक्षण एवं सेवाफल यह जो दो ग्रंथ हैं वह पुष्टिमार्गके वृद्धबोध उपदेश ग्रंथ हैं. अर्थात् जो कुछ डेवलपमेन्ट् (उन्नति) हो सकता था, उसकी उच्चतम ऐवरेस्टकी चोटीकी तरह, जहां तुम पहुंच सकते थे वहां तुम पहुंच गये, इस बातके सूचक ग्रंथ हैं. यहां वृद्ध अर्थात् कमजोर, हाथमें लकड़ी और पैर कांपते हों, दांत टूट गये हों उस अर्थमें नहीं. श्रद्धामें वृद्ध, ज्ञानमें वृद्ध, तपोवृद्ध, साधनावृद्ध या स्नेहवृद्ध. स्नेह तुम्हारा इतना वृद्ध हो गया, ऐसे वृद्धबोधके उपदेशक यह ग्रंथ हैं.

<u>नवरत्न ग्रंथ किशोरबोध ह</u> :

इस दृष्टिसे षोडशग्रंथमें नवरत्नका स्थान क्या है? यह हमें स्पेसीफिकलि समझना पड़ेगा कि यह किशोरबोध ग्रंथ है. किशोर अर्थात् जिसे आजकी भाषामें टीनेजर कहते हैं.

यह कौमार्य एवं यौवन अवस्थाओंके बीच आता समय है. साइकोलोजीमें एक सिद्धान्त मान्य है कि टीनेजमें लगभग सबको चिंता होती है कि मेरा क्या होगा? जरा मुझे माफ करना मुझे एक फिल्मी गीत याद आ गया **न जाने इनमें किसके वास्ते हुं मैं, न जाने इनमें कौन है मेरेलिये.** तो टीनएजकी बहुत ही ड्रामेटिक प्रोब्लम् है. और यही टीनेजकी प्रोब्लम पुष्टिमार्गमें भी है. इतने सारे सिद्धान्तोंमें न जाने इनमें किसके वास्ते हुं मैं, और इन सिद्धान्तोंमें न जाने इनमें कौन है मेरे लिये तो ऐसी कुछ टीनेजकी एक स्पेशियल प्रोब्लम् है. यह प्रोब्लम् नवरत्नमें भी रही हुई है. और उस प्रोब्लम्का सोल्युशन् या समाधान नवरत्न, विवेकधैर्याश्रय एवं अन्त:करणप्रबोध देते हैं.

पुष्टिमार्गकी माता श्रीयमुनाजी, मर्यादामार्गकी माता श्रीगायत्री एवं प्रवाह मार्गकी माता श्रीलक्ष्मीजी :

यद्यपि सबसे पहले श्रीमहाप्रभुजीने यमुनाष्टकको बालबोध नहीं कहा बाबजूद इसके ऐसे बालबोध होनेके सारे ही लक्षण महाप्रभुजीने सूचित किये है.

न जातु यमयातना भवति ते पय: पानत:.

बालक अर्थात् क्या? बालककी सबसे प्रथम अवस्था या इसकी बुद्धिका प्रथम व्यापार किसमें होता है? अपनी मांको पहचाननेमें. जो छोटा बच्चा अपनी मांको नहीं पहचान सकता है उसे तुरन्त डाक्टरके पास ले जाते हैं. कुछ बीमारी है इसमें. दूध पी रहा है दुष्ट एवं मांको क्यों नहीं पहचानता? कुछ न कुछ इसके दिमागमें या कुछ न कुछ इसकी आंखमें या कुछ न कुछ इसके कानमें लफड़ा है. अतएव सबसे पहले अपनी मांको पहचाने वह बालक, जो मांको नहीं पहचान सकता है वह बालक

कहलानेके लायक नहीं. अतएव जो अपनी पुष्टिनिष्ठा, पुष्टिश्रद्धा, पुष्टिभक्ति है उसे जन्म देनेवाली अगर कोई मां है तो वह श्रीयमुनाजी हैं. अर्थात् प्रथम जो बोध है, मांको पहचाननेका **न जातु यमयातना भवति ते पय: पानत:** इस अर्थमें यमुनाष्टक भी बालबोध ही है. नाम भले ही महाप्रभुजीने अगले ग्रंथको बालबोध दिया है लेकिन इस अर्थमें यमुनाष्टक भी बालबोध ही है. बालकसे भी छोटा हो तो वह शिशु कहलाता है वैसा शिशुबोध भी यमुनाष्टकको कह सकते हैं.

शास्त्रमें जो मर्यादाके उपदेशका **वचसा वेदमार्गोहि** ऐसा निरूपण करनेमें आया है उस शास्त्रमें गायत्रीके लिये ऐसा कहा गया है कि **गायत्री वेदमातरम्.** तो गायत्री ये मर्यादामार्गकी माता है. जो गायत्रीको नहीं पहचान सकता, वह व्यक्ति किसी भी दिन मर्यादामार्गपर आगे नहीं चल सकता. मर्यादामार्गमें **गायत्री वेदमातरम्** है ऐसी कि जिसके कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यकेलिये शास्त्रमें ऐसे कहा गया है कि **मातु: यद् अग्रे जायन्ते द्वितीयं मौञ्जिबन्धनात्** पहले तो अपनी शारीरिक माताके पेटमें था अत: शरीरसे जन्मा. बहुत अच्छा हुआ कि मनुष्य रूपमें तू जन्मा. लेकिन अब दूसरा जन्म तेरा गायत्री माताके कारण हो रहा है. इसी कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्यको **द्विज** कहा जाता है. **द्विज** अर्थात् दूसरी बार जन्मे उसका नाम द्विज.

जैसे मर्यादामार्गमें गायत्री वेदमाता होनेके कारण प्रत्येक द्विजकी माता है, वैसे ही श्रीयमुनाजी पुष्टिमार्गमें प्रत्येक पुष्टिमार्गीय, जो पुष्टिमार्गपर चलकर पुष्टिप्रभुकी ओर चलना चाहता है, उनकी माता हैं. **दौर करि सोर करि जाय पिय सों कहें अतिहि आनन्द मन में जु भरके. ब्रह्मसंबंध जब होत या जीवको तबही इनकी भुजा वाम फरके.** इस कारण श्रीयमुनाजी अपनी पुष्टिमाता हैं.

मुझे आज एक गुमनाम लेटर मिला है कि तुम प्रवचन करते हो लेकिन तुम्हारी शैली अच्छी नहीं है, तुम्हें क्या अधिकार है किसीको सिद्धान्त कहनेका? भाई! मेरे हिसाबसे तो, ऐसे पूछनेका अधिकार लेटर लिखनेवालेने कहांसे लिया कि मैं सिद्धान्त नहीं बोल सकता? तुम्हें कोई अधिकार हो न हो लेकिन मैं तो बोलूंगा ही. क्योंकि मैं मेरी बात तो कहता नहीं. महाप्रभुजीकी बात कह रहा हूं. अर्थात् बोलूंगा. मैं आया ह् इस पुष्टिमाताके गर्भमें से अतएव मुझे बोलनेकी इच्छा एवं अधिकार दोनों मिल गये हैं.

जैसे पुष्टिमार्गकी माता श्रीयमुनाजी, मर्यादामार्गकी माता गायत्री, वैसे ही प्रवाहमार्गकी माता लक्ष्मी. लक्ष्मी अर्थात् मेरी पत्नी नहीं समझ लेना. वह भी एक लक्ष्मी है. प्रवाहमार्गकी माता लक्ष्मी. यह लक्ष्मी भगवान् विष्णुकी चरणसेवामें परायण लक्ष्मी नहीं लेकिन धनदौलतके अर्थमें. इसकारण प्रवाहमार्ग सबही लक्ष्मीसे ही पैदा होता है. **टका धर्म टकाधर्म टका हि परमेश्वरो यस्य हस्ते टका नास्ति हा! टका! टक्टकायते** टकासे प्रत्येक काम सिद्ध होता है यह प्रवाहमार्गकी लाक्षणिक विशिष्टता है. प्रत्येक काम टकासे सिद्ध होता है. और टका नहीं होता तो टकटक होती रहे कि पुष्टिमार्गके बारेमें श्यामुबाबाको बोलनेका अधिकार किसने दिया? इस कारण यह लक्ष्मी प्रवाहमार्गकी माता है. निश्चित रूपमें ऐसा मातृत्व भी हमें इस अर्थमें स्वीकारना पड़ेगा. इतना ही नहीं आत्ममीमांसा भी करनी पड़ेगी कि हम लक्ष्मीजीके बच्चे हैं कि गायत्रीके बच्चे हैं कि श्रीयमुनाजीके बच्चे हैं. यह बात इस बारेमें समझनेकी बहुत जरूरत है. क्योंकि तीन मार्गोंकी तीन प्रकारकी सृष्टि है और तीन प्रकारकी मातायें हैं और जिनमेंसे तीन प्रकारकी सन्तति पैदा होतो है. इसमें किसी प्रकारकी परेशानी नहीं होनी चाहिये. सभी मार्गोंका सृजन प्रभुने किया है. तो इस मार्गका भी प्रभुने ही सृजन किया है. यह हमें समझना पड़ेगा. क्योंकि लक्ष्मीनाथ भगवान

महाविष्णुने ही सभी मार्गोंका सृजन किया है. तो यह भी एक मार्ग है ही. और जा है उसे रिकॉग्नाइज् करना ही पड़ेगा.

आधुनिक मनोवैज्ञानिक ऐरिक्सनकी दृष्टि एवं नवरत्न ग्रन्थ समझनेमें उसकी उपयोगिता :

खैर यह जो छः अवस्थायें हैं: बाल्यावस्था, कुमारावस्था, किशोरावस्था, यौवनावस्था, प्रौढावस्था, एवं वृद्धावस्था. इन अवस्थाओंमें अपनी बुद्धिका, अपने शरीरका, अपने व्यवहारका अपने परिवारमें एवं समाजमें किसी न किसी प्रकार विकास होता रहता है. वह जो विकास होता है उसे अनुलक्षकरके इन सभी अवस्थाओंका भेद करनेमें आया है. उस प्रकारकी भावनात्मक विकास अनुभूत होता है. संक्षेपमें आज जो एक बात खुलासेके रूपमें तुम्हें समझाना चाहता हूं वह यह है कि ऐरिक्सन् करके एक बहुत बड़ा सायकोलोजिस्ट हुआ है, इसने इस विकासके अलग अलग माइल स्टोन्, आजकी पद्धति अनुसार किलोमीटरके पत्थर, कि अब कितना अन्तर पीछे गया और कितना बाकी है, ऐसे भावनात्मक माईलस्टोन्स्को नोट किया है. क्लासीफिकेशन्/वर्गीकरण किया है. वह हमें नवरत्नको समझनेमें अतिशय सहायक होंगे.

बालकके विकासकेलिये प्रथम सोपान विश्वास :

ऐरिक्सन् एक बात कहता है कि बालकके जन्म लेनेके बाद उसकी सबसे पहली आवश्यकता विश्वासकी होती है. सबसे पहली आवश्यकता जन्मे हुवे बालककी यह कि भूख किस प्रकार मिटानी? वहां मां दूध पिला पिला कर इसमें विश्वास पैदा करती है. मुझे जब भूख लगे तो मेरी भूख यहींसे मिटेगी. मच्छर काटनेकी तकलीफसे बच्चा जब मांके आगे रोता है और मां इस तकलीफको दूर कर देती है तब बच्चेमें एक विश्वास प्रकट होता है. इसे लगता है कि मैं किसी ऐसी दुनियांमें नहीं आ गया कि

जहां सब उलटा सीधा हो रहा है. तात्पर्यत: पहला नियम अगर बालकको समझमें आता है तो वह यह कि मेरी जो कुछ तकलीफ हैं उन मेरी तकलीफोंके कुछ समाधान भी यहां हैं. और वह मेरी मांमें रहे हुये हैं. मेरी तकलीफका समाधान यह विश्वास जो बालकमें होता है तो उसकी बाल्यावस्था स्थिर हो गई जाननी. अगर बालकमें यह विश्वास प्रकट नहीं होता उदाहरणके तौर पर एक बात कहुं कि बहुत समृद्धि हो, जन्म किसीने दिया, पालन किसीने किया हो, सफाई कोई तीसरा ही करता हो, खिलानेके लिये कोई चौथा हो तो फिर बच्चेका दिमाग काम करना बंद कर देता है कि कौनसी तकलीफ कौन दूर करेगा? इतने अधिक व्यक्तियोंसे घिरे हुवे बच्चेको प्रारम्भमें किसके ऊपर किस तकलीफको दूर करनेका विश्वास रखना यह समझमें नहीं आता. अतएव कोई भी नियम इसे समझमें नहीं आता. किसी समय कुछ होता है और दूसरे समय कुछ और होता है. तो जो कुछ भी घटना होती है तो उस घटनाके निराकरणके स्त्रोतकेलिये बालकमें विश्वास उत्पन्न नहीं होता. शारीरिक रीतिसे इस वातावरणके कारण उसका निराकरण जब एकसे होता रहता है तब तो उसमें अनन्य विश्वास जागता है. एक सामान्य उदाहरण देता हूं कि जब हमारे पास हार्न बजा तब गाड़ी निकल रही है ऐसा प्रतीत होता है कि नहीं? कैसे पता चला? ऐसे जब पांच दस बार हम देख लेते हैं तो फिर हमें विश्वास हो जाता है कि होर्न बजा अर्थात् गाड़ी निकल रही है. देखनेकी जरूरत नहीं पड़ती. लेकिन सोचो कि किसी समय टी. वी. में से गाड़ी निकलनेकी आवाज आ रही है और होर्नकी भी आवाज आ रही होती है और जब हम देखते हैं तो गाड़ी तो नहीं निकल रही होती. दो तीन बार ऐसी घटना हो तो फिर अपना विश्वास डगमगा जाता है कि सुनाई तो दे रहा है पर गाड़ी जा रही है कि नहीं कैसे पता चले? क्योंकि जब जब ऐसी आवाज आती है तब तब गाड़ी निकल रही होती है और दो चार बार दिखे भी तो विश्वास प्रकट हो जाता है. लेकिन कभी सुनाई

दे और देखने जाओ तो कुछ नहीं मिले तो अपना विश्वास डगमगा जाता है.

अब एक सामान्य उदाहरण देता हूं कि हमें कोई पुकार रहा हो और हमें कोई दिखाई नहीं देता हो, तो अपना विश्वास डगमगा जाता है कि नहीं. कहीं भूत/प्रेतकी बाधा तो नहीं हो गई! भागो भागो हो जाय कि नहीं? किस कारण हो जाती है? क्योंकि हमें विश्वास हो गया है कि मेरा नाम लेकर कोई अगर मुझे पुकार रहा है तो कोई मनुष्य आसपासमें होना चाहिये. अब सोचो कि मेरा नाम लेकर कोई पुकारे कि श्याममनोहरजी. मैं बाहर जाकर देखूं कि कोई गधा खड़ा है तो मुझे चिंता हो जाय कि यह मैं हूं कि तू? क्योंकि गधा कभी मेरा नाम लेकर पुकार नहीं सकता. पुकारता हो तो फिर मुझे चिंता हो जाय अथवा तो मेरा विश्वास टूट जाय कि मैं गधा हूं कि तू गधा है! तेरेमें से ऐसी आवाज मुझे कैसे सुनाई दे रही है? विश्वास टूट जाता है. अर्थात् विश्वास प्रकट हो किस प्रकार? किसीभी घटनाके पुनरावर्तनके द्वारा.

<u>श्रीयमुनाजी द्वारा पुष्टिमार्गीय विश्वासकी प्राप्ति</u> :

तवाष्टकम् इदं मुदा पठति सूरसूते सदा, समस्त दुरित क्षयो भवति वै मुकुन्दे रतिः। तया सकल सिद्धयो मुररिपुः च सन्तुष्यति, स्वभाव विजयो भवेद् वदति वल्लभः श्रीहरेः।।

ऐसा कहकर महाप्रभुजी पुष्टिमार्गीय जीवोंकेलिये यमुनाजीके मां होनेका सम्बन्ध दिखा रहे हैं. इसकी रिपीटेशन् द्वारा श्रीमहाप्रभुजी हमारे भीतर वह विश्वास पैदा करना चाह रहें हैं कि **न जातु यम यातना भवति ते पयःपानतः मुररिपुः च सन्तुष्यति** प्रत्येक प्रकारका विश्वास हमारे हृदयमें भर रहे हैं कि पुष्टिमार्गपर चलना हो तो घबरानेकी क्या जरूरत है जबकि

यमुनाजी जैसी हमारी मां हैं तो. इससे एक नियम हमें समझमें आ रहा है. **तव अष्टकम् इदं मुदा पठति सूरसूते सदा समस्त दुरितक्षयो** सदा अर्थात् आवर्तन समझे! अगर मांके साथ बच्चेके व्यवहारमें ऐसा आवर्तन हो कि जब जब भूखके कारण मैं रोता होऊं तब तब मेरी मां मुझे दूध पिलायेगी. ऐसी सब तकलीफ दूर हो जाती हों. क्योंकि कोई है मां नामका पदार्थ जो मेरे साथ है. ऐसा विश्वास बालकमें प्रकट हो जाये तो वह है बालबोध. बालबोधका ये पहला कदम इस विश्वासकी उपलब्धि कि जहां मैं आया हूं वहां कुछ अविश्वास करने जैसा वातावरण नहीं है. जिसमें विश्वास प्रकट नहीं होता, वह बालक किसी भी दिन बड़े होकर चाहे कुमारावस्थामें हो, चाहे किशोरावस्थामें हो, चाहे यौवनावस्थामें हो, विश्वासहीन बालक समाजमें भली प्रकार जी नहीं सकता. इसे हर जगह अविश्वास ही नजर आयेगा. विश्वासका अनुभव नहीं किया तो विश्वास नहीं कर सकता. जो विश्वास नहीं कर सकता तो वह किसीका विश्वास भी प्राप्त नहीं कर सकता. यह बात समझ लेनी चाहिये. अर्थात् पुष्टिमार्गमें हम विश्वसनीय हों महाप्रभुजीके जिससे कि महाप्रभुजी हमारे ऊपर विश्वास रख सकें. हम पुष्टिमार्गपर विश्वास रख सकें उसकेलिये सबसे पहले अपना इंटरऐक्शन् अर्थात् अपने भावोंका लेन देन करें और श्रीयमुनाजी द्वारा अपने भावोंके समाधानकी आवश्यकता है. इस अर्थमें यमुनाष्टक अपना प्रथमजात बोध है. बालबोध अर्थात् बालक भी इस जन्मे हुवे बालकका बोध है कि नहीं मेरी मां है. जो मेरी हरेक प्रकारकी सावधानी ले रही है. वैसा विश्वास प्रकट करना है.

विश्वासका उल्टा अविश्वास :

जिस विश्वासको तुम्हारे सामने ऐरिक्सन् कह रहा है कि एक फेक्टर अविश्वासका भी हो सकता है. तो विश्वास और अविश्वास. जैसे वर्तमानमें हमको, वैष्णवोंको, अविश्वास हो गया कि अगर हम सेवा करेंगे तो प्रभु हमारी सेवा अंगीकार करेंगे कि

नहीं? सेवा तो गो.बालकोंकी ही अंगीकार होती है. सेवा तो बहुत नेग, भोग, राग, अपरसका वैभव हो तो ही प्रभुसुख कहलाता है, मेरे घरमें तो नलका पानी उपयोगमें आता है तो प्रभु सेवा किस पकार अंगीकार करेंगे? हमें अविश्वास हो गया है, ऐसे अविश्वासके कारण हम पुष्टिमार्गपर भली प्रकार चल नहीं सकते. उसमें भी गोस्वामी बालकोंके ठाकुरजी पुरुषोत्तम हैं, हमारे ठाकुरजी तो चालू खातेके रखड़पट्टू (आवारा) हैं. ऐसा अविश्वास हो गया है. उस कारण वैष्णवोंके कोई स्वरूप मिश्रीके ठाकुरजी होते हैं तो कोई झारी भरवानेके ठाकुरजी होते हैं. अब इन ठाकुरजीमें पुरुषोत्तमता कहांसे आ सकती है! ऐसा अविश्वास ठाकुरजीके बारेमें हम लोगोंमें घुस गया है. हम श्रीयमुनाजीको भूल गये हैं. यमुनाजीको याद करो कि **तव अष्टकम् इदं मुदा पठति सूरसूते सदा समस्त दुरित क्षयो भवति वै मुकुन्दे रतिः तया सकलसिद्धयो मुररिपुः च सन्तुष्यति** मुररिपु तुम्हारेसे सन्तुष्ट हैं. तुम क्यों अविश्वास करते हो कि तुम्हारे घरमें बिराजते ठाकुरजी साक्षात् पुष्टिपुरुषोत्तम नहीं हैं. ऐसा अविश्वास क्यों करते हो? यह तुम्हारेसे सन्तुष्ट हो गया अगर तुमने तुम्हारी मांको ठीकसे पहचान लिया हो तो. मांको पहचाननेके बाद ही पिताके सामने जानेका अपना अधिकार बनता है. मांको नहीं पहचाना तो पिताके सामने क्या मुंह लेकर जाओगे? मांको पहचानना अर्थात् तुम्हारेमें विश्वासका जागना. हमें अविश्वास है अपने प्रभुके ऊपर, उसका मूल कारण यह है कि हम अपनी मांको नहीं पहचान रहे. हम चुंदड़ीके मनोरथ कर रहे हैं लेकिन यमुनाष्टकके भावको नहीं समझ सके कि **तव अष्टकम् इदं मुदा पठति सूरसूते सदा समस्त दुरित क्षयो भवति.** हम जैसे हैं वैसे हैं ठाकुरजी भी यह विचारते होंगे कि जैसे हैं वैसे हैं लेकिन अन्तमें हैं तो श्रीयमुनाजीके बच्चे ही! हैं तो यमुनाजीकी संतति ही. **निवेदितात्मभिः कदापीति भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीं च गतिम्** ऐसा अनोखा विश्वास तुम्हारेमें जाग जायेगा. अगर तुम तुम्हारी मांको पहचानोगे तो पुष्टिप्रभु

तुम्हारे ऊपर संतुष्ट हो गये हैं. यह बात तुम्हें सबसे पहले समझनी पड़ेगी.

विकासका दूसरा सोपान आरम्भ :

इसके बाद ऐरिक्सन् एक बहुत सुन्दर बात कहता है अगर तुममें विश्वास पैदा हो गया तो अब तुम आरम्भ कर सकते हो. अर्थात् अपने पुष्टिमार्गके सन्दर्भमें ऐसा अविश्वास कि तुम्हारे माथे बिराजते ठाकुरजी साक्षात् पुरुषोत्तम नहीं हैं ऐसा अविश्वास तुम्हारे भीतर न हो तो तुम आरम्भ कर सकते हो. बालकके विकासकेलिये विश्वासके बाद दूसरा चरण ऐरिक्सन्के अनुसार आरम्भका है. अर्थात् किसी बातको बालक अपनी इच्छानुसार प्रयोगमें ला सके. आरम्भ अर्थात् इनीशियेटिव जिसे कहा जाता है. अर्थात् मुझे कुछ करना है तो किसी न किसी प्रकार इसे शुरु तो करना ही पड़ेगा! अब मुझे अगर विश्वास है तो मैं कुछ शुरु कर सकता हूं. उदाहरणके लिये सड़क पार करनी हा तो हम इसका आरम्भ किस प्रकार करते हैं? सिग्नल हुवा कि नहीं, सड़क पार करनेका सिग्नल हुआ तो मैं सड़क पार करना आरम्भ करुंगा. सिग्नल नहीं हुवा तो मैं सड़क पार नहीं करुंगा खड़ा ही रहूंगा. तो आरम्भ या इनिशियेटिवका पहला टेस्ट स्वयं लेना पड़ेगा. यह इनिशियेटिव कौन ले सकता है? जिसमें विश्वास हो वह. गांवके आदमी मुम्बईमें अचानक आ जाते हैं और इनको सड़कके ऊपर खड़ा करो तो इनमें विश्वास नहीं जागता कि इतनी सारी गाड़ियां आ जा रही हैं तो सड़क पार करनी कि नहीं. सिग्नलकी जानकारी न हो तो सड़क पार करनेका जो आरम्भ है वह नहीं कर सकता.

विश्वासके अभावके कारण क्या होता है वह भी ऐरिक्सन्ने बहुत अच्छी तरहसे विश्लेषण करके बताया है कि लज्जासे अनिश्चय हो जाता है. जिसे बहुत शर्म आती हो उसे हम लोग लज्जालु कहते हैं. जिसे विश्वास होता है उसे शरम

नहीं आती. जिस बालककी मां उसमें विश्वास भर देती है, जैसे शिवाजीकी माताने शिवाजीमें विश्वास भर दिया था. अरे! मुट्ठी भर सेना थी शिवाजीके पास, वह था क्या? वह एक क्षुद्र गढ़के कोतवालका लड़का था. लेकिन सारे मुगल साम्राज्यको इसने हिला कर रख दिया. विश्वास भरने वाली कौन थी? शिवाजीकी मां जीजाबाई. तो एक बात समझो कोई हमारे भीतर विश्वास भर दे तो हम इनिशियेटिव ले सकते हैं. उस समय भी कितने सारे राजा थे, कोई शिवाजीने हिन्दुओंको बचानेका एकाधिकार नहीं लिया था! दूसरे राजा किस कारण इनिशियेटिव नहीं ले सके? क्योंकि बहुत सारे मुगल दरबारमें **सलाम वालेकुम् वालेकुम अस्सलाम्** करते थे. ऐसा कैसे बना? क्योंकि विश्वास नहीं भर सकी इनकी मातायें इनमें. इनमें हिन्दुत्व नहीं था, ऐसी कोई बात तो नहीं थी. हिन्दुत्व था. शायद शिवाजीकी तुलनामें अच्छे हिन्दु थे लेकिन इनमें विश्वासकी कमी थी. उस कारण लज्जा आती थी, पराजित हो गये तो बदनामी होगी! अतएव औरंगजेबके सामने हम क्या कर सकते हैं? हम सब क्षुद्र जीव कलिकालके, हमारी सेवा प्रभु कैसे अंगीकार कर सकते हैं? यह तो गोस्वामी बालक करें तो ही सेवाको अंगीकार करें! कोई अधिक धनवान हो तो मनोरथ कर छप्पनभोगके, तो प्रभु अंगीकार करें. हम क्या धर सकते हैं, दो मिश्रीके कणिका अथवा नागरी, इन्हें क्या उत्तम वस्तुके भोक्ता पुरुषोत्तम अंगीकार करेंगे! लज्जा आ गई ना तुम्हें? बोलो सगे पिताके सामने जाते लज्जा आ गई तुम्हें, अरे मूर्खों. दो थप्पड़ नहीं मारें तुम्हें कि पिताके सामने जाते हुये शर्माते हो! लेकिन लज्जासे अनिश्चय हो जाता है. हमारेसे जाया जाये कि नहीं जाया जाये? ऐसे अनिश्चयके कारण सगे पिताके पास जाना आरम्भ ही नहीं कर सकते. लज्जा और अनिश्चय हुवा नहीं कि सारा खेल खत्म. ऐसे तो मैं फिर पाठ करता होऊ, **चिन्ता कापि न कार्या निवेदितात्मभिः कदापीति भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीं च गतिम्** लेकिन पुष्टि प्रभुके पास जानेकी हिम्मत

नहीं पड़ती! यह लौकिक गति न हुवी तो और दूसरा क्या हुवा? बात हो गई और सारी कथा समाप्त. अनिश्चय हो गया. तो ऐसी चिंता अनिश्चयके कारण होती है. लज्जाके कारण होती है. उसका उल्टा ऐरिक्सन्‌ने बहुत सुंदर बताता है कि जिसमें विश्वास होगा वह आरम्भ कर सकेगा. डेशिंग केरेक्टर्‌ इसमें खिलेगा. क्योंकि विश्वास आ गया ना! विश्वास नहीं आया तो अनिश्चय हो जायेगा.

<u>लज्जा, अनिश्चय दूर करनेकेलिये बालबोध एवं सिद्धान्तमुक्तावलीमें श्रीमहाप्रभुजीका उपदेश</u> :

यह विश्वास महाप्रभुजीने हमारे अनिश्चय एवं लज्जाकी मनोवृत्तिको दूर करनेकेलिये बालबोध एवं सिद्धान्तमुक्तावलीमें कितने सुंदर तरीकेसे योजित किया है! **समर्पणेन आत्मनो हि तदीयत्वं भवेद्‌ ध्रुवम्‌ अतदीयतया चापि केवलः चेत्‌ समाश्रितः तदाश्रयतदीयत्वबुद्ध्यै किञ्चित्‌ समाचरेत्‌ स्वधर्मम्‌ अनुतिष्ठन्‌ वै भारद्वैगुण्यम्‌ अन्यथा. इत्येवं कथितं सर्वं नैतज्ज्ञाने भ्रमः पुनः – नत्वा हरिं प्रवक्ष्यामि स्वसिद्धान्त विनिश्चयं चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा. ततः संसार दुःखस्य निवृत्तिः ब्रह्मबोधनम्‌** देखो सारा अनिश्चय दूर कर दिया है तुम्हारा. किसी प्रकारका संशय मनमें मत रखो. अपने घरमें बिराजती भगवत्सेवामें अनन्याश्रयी बनकर तुम तुम्हारे तन, तुम्हारे धन और तुम्हारे मनको समर्पण करो. तो **भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीं च गतिम्‌.** किस कारण वह तुम्हारी लौकिक गति करेंगे? कैसे निश्चयसे भर दिया है तुम्हें. तुम्हें आरम्भ बता दिया है कि भगवानकी ओर जाना हो तो किस प्रकार आगे बढ़ना. किस रीतिसे चलना? **तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा** तुम्हारेमें विश्वास ठूंस ठूंस कर भर दिया है **ततः संसार दुःखस्य निवृत्तिः ब्रह्मबोधनम्‌.**

अरे! तुम्हारो दुर्गति कैसे हो सकती है? तुम्हारा संसार तब निवृत्त होगा जबकि तुम तुम्हारे तनुवित्तका विनियोग करोगे. चित्त तुम्हारा भगवानमें पुर जायेगा, ऐसा निश्चय श्रीमहाप्रभुजी सिद्धान्तमुक्तावलीमें दे रहे हैं. तो एक बात ध्यानसे समझो कि जो दूसरा कदम है आरम्भका वह बहुत ही ड्रास्टिक् स्टेप् है. वह आरम्भ महाप्रभुजीने अपने पुष्टिसिद्धान्तके बालबोधसे नहीं किया है. सिद्धान्तमुक्तावलीसे किया है क्योंकि बालबोध ग्रंथके उपदेशसे विश्वास पैदा करना चाहते हैं. कैसी खूबसूरती इस विश्वास और आरम्भके बातकी अपने यहां है! जो लज्जा अथवा जो अनिश्चय तुम्हें सता रहा है, उसे तुम प्रभुको समर्पो, तुम मर्यादी हो, अपरस पालते हो तो उस अपरसको तुम समर्पो, अपरस नहीं पालते हो तो ताजबीबी जैसे होगे, अलीखान जैसे होगे लेकिन तुम्हारा तन, तुम्हारा वित्त, तुम प्रभुको समर्पित करो. लज्जा नहीं करो इसके बारेमें कि इतने बड़े भगवान मेरेसे कैसे प्रसन्न होंगे? यह तो छोलोंसे भी प्रसन्न हो जाते हैं और छप्पन भोगसे भी प्रसन्न हो जाते हैं. प्रश्न छोले या छप्पनभोगका नहीं है, प्रश्न है तुम्हारा तन, तुम्हारा धन, तुम्हारा मन, तुम लज्जा अनिश्चय रहित होकर प्रभुको समर्पित करो. **चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा** (सिद्धान्तमुक्तावली-२) तुम्हारे तनुवित्तके निश्छल विनियोग उपरान्त तुम्हारी सेवा सिद्ध हो जायेगी. ऐसा महाप्रभुजीने हमें आरम्भ करनेका इनिशियेटिव लेनेका उपदेश दिया है.

आरम्भका अपोजिट अपराधबोध :

अब आरम्भकी जो विपरीत अवस्था है उस मानसिक दुरवस्थाको ऐरिक्सन अपराधबोध कहता है. गिल्टीफीलिंग. जब भी बालकमें लज्जा एवं अनिश्चयकी स्थिति बढ़ती है तो वह बड़े लोगोंकी अच्छी तरहसे नकल नहीं कर सकता. तब उसके भीतर अपराधकी भावना जाग जाती है. हमारेसे अपरस किस प्रकार पल सकेगी? हमारे यहांतो नलका पानी है. तुम्हारे यहांतो

कुवाका पानी है. तुम्हारे यहां तो मुखिया भीतरीया हैं, जलघरिया है नहलानेकेलिये. हमारे यहां यह सब कहां है? ऐसे हम प्रभुको क्या सुख दे सकते हैं? सेवा तो आपही करना जानते हैं हम क्या जानें सेवा करना? हम कितनी सेवा कर सकते हैं? हमें तो आफिस जाना होता है. आजकल ऐसे सब अपराधोंसे वैष्णवोंको ग्रस्त कर देनेमें आ रहा है.

श्रीमहाप्रभुजीने अपनी सामर्थ्यसे हमें अपराधबोधरहित बनाया :

एक महाप्रभुजी ही हमें ऐसे अपराधबोधसे उबार सकते हैं. ऐसे कह कर **सूर व्हेके काहे घिघियात है, कछ भगवल्लीला गा!** क्यों घिघिया रहे हो तुम पुष्टिमार्गीयों! तुम्हारेमें अगर आत्मनिर्भरताका विकास अच्छी तरहसे हुवा होता तो घबरानेकी कोई जरूरत नहीं पड़ती. अपराधबोधकी कोई जरूरत नहीं थी. महाप्रभुजी कहते हैं कि यह सब जो कुछ अपराधोंकी भावना तुम्हारे भीतर जागती है, किसलिये जागती है? **देश, काल, कर्म, कर्ता, मन्त्र, स्वभावत:** यह सब फ्लोप हो गये हों तो भी मैं तुम्हें कह रहा हूं कि **कृष्णएव गतिर्मम:, कृष्णएव गतिर्मम, कृष्णएव गतिर्मम:.** तुम अपराधबोधसे व्यर्थमें क्यों घबरा रहे हो? महाप्रभुजीके समयमें क्या देश-काल कम खराब था? जब देखो तब आकर मुसलमान हमारे स्वरूपोंको लूट लेते थे, खंडित कर देते थे. उस समय महाप्रभुजीने गृहसेवाका सिद्धान्त स्थापित करके कहा कि प्रत्येक व्यक्ति गृहसेवा करे. और उनके घरोंमें से ही नहीं लूटते थे ऐसा भी नहीं था. श्रीपद्मनाभदासजीके पासस लूट कर ले गये थे. यह हमारी वार्ताओंमें स्पष्ट उदाहरण मिलता है. तो देश-काल तो आजकी तुलनामें उस समय अधिक खराब था. आज कोई जबरदस्ती मुसलमान नहीं बनाता या तुम्हारे ठाकुरजीको लूट कर ले नहीं जाता या खंडित कर देता. इतनी सुविधा तो आजके समयमें है ही. लेकिन उल्टी रीतिसे वर्तमानमें गोस्वामी बालकोंने ही मुसलमानोंसे उत्तराधिकार ले

लिया दिखता है कि तुम तुम्हारे ठाकुरजीकी अपरस या नेगभोग बिना सेवा नहीं कर सकते; और ऐसा बहाना बनाकर वह लोग तुम्हारे ठाकुरजीको हथिया लेते हैं! यह बात अनोखी है. प्रश्न यहां यह है कि हम अपराधबोधसे ग्रस्त हो रहे हैं. हमने कृष्णबोधको, सिद्धान्तबोधको नहीं जगाया अपने भीतर. यह उसका दुष्परिणाम है.

महाप्रभुजी कहते हैं **विवेकधैर्यभक्त्यादिरहितस्य विशेषतः पापासक्तस्य दीनस्य कृष्णएव गतिर्मम्** (कृष्णाश्रय : ९) बिगड़ बिगड़ कर तुम्हारा कितना बिगड़ सकता है? यह तो औडिटेड् खाते हैं ध्यानमें रखना समझे. तुम कितना घाटा दिखा सकते हो, सामने आओ. खुला चैलेन्ज महाप्रभुजी दे रहे हैं कि तुम तुम्हारी भक्तिका खाता दिखाओ. कितना घाटा है वह दिखाओ, कितना दिखाओगे? श्रीमहाप्रभुजी पूछ रहे हैं कि तुम्हारे अन्दर विवेक नहीं है? वह चलेगा! धैर्य नहीं है? वह भी चलेगा! क्या कहा भक्ति भी नहीं है? तो वहां भी कहते हैं चलेगा! महाप्रभुजी आज्ञा करते हैं कि सारे घाटेके खातेको मैं सिमटवानेको (राइटऑफ) तैयार हूं, शर्त एक ही है कि तुम्हारे कृष्णाश्रयके लाभका खाता तुम्हारी किताबोंमें साफ सुथरा दीखना चाहिये. जो बात माननेवाली नहीं है वह है यह कि कृष्णके आश्रयको तुम्हें छोड़ना नहीं है, कृष्णके आश्रयको तुम नहीं छोड़ो तो हरेक बात चलेगी और कृष्णके आश्रयको छोड़नेके बाद तुम्हारी किताबोंमें जमाखाता बोलता हरेक आंकड़ा वास्तवमें घाटेमें बदल जानेवाला है. तुम्हें विवेक होगा, धैर्य होगा, आश्रय होगा, भक्ति होगी, तुम्हारे मेंड-मरजाद या नेग भोग रागके वैभव भी कृष्णाश्रय बिना बेकार! मेरे मार्गमें अन्य कुछ भी नहीं चलेगा **विवेकधैर्यभक्त्यादिरहितस्य विशेषतः पापासक्तस्य दीनस्य कृष्णएव गतिर्मम्.**

महाप्रभुजी कहते हैं: सर्व सामर्थ्यवान् कृष्णको मैं तुम्हारे साथ एग्रीमेंटमें बांध रहा हूं. अतएव इसकी शरणागतिमें आओ और यह तुम्हारा उद्धार करेगा, करेगा और करेगा ही. किस तरह अपराधबोधसे हमको रहित बना दिया है! एक बार अपराधबोधरहित बनानेकी महाप्रभुजीकी इस सामर्थ्यका हमें विचार करना चाहिये कि नहीं? तुम कर करके अपराध कितने अपराध करोगे? नलका पानी प्रयोगमें लाते हो, क्या होगा नलके पानीका प्रयोग करनेसे! पाप लगेगा ना? **पापासक्तस्य दीनस्य कृष्णएव गतिर्मम्.** कृष्णाश्रय तुम्हारा दृढ़ है कि नहीं! यह सब कुछ जो तुम्हारी किताबोंमें डेबिट एकाउन्ट बोल रहा है उसमें यहां इस तरफ प्रोफिटका एकाउन्ट है कि नहीं कृष्णाश्रयका? **कृष्णएव गतिर्मम**का भाव दृढ़ है कि नहीं? यह है तो महाप्रभुजी कहते हैं सब चलेगा, कुछ चिंता करनेकी जरूरत नहीं है. अर्थात् दृढ़ मनोबल करके बैठो कि कृष्णाश्रयके पाठ कराकर श्रीमहाप्रभुजी हमें अपराधबोधरहित बना रहे हैं.

तीसरा सोपान: उद्योग/पुरुषार्थ :

अब एक बार अच्छी तरह समझलो किसी छोटे बच्चेसे कहा जाये नवरत्न बोल. तो यदि इसे लज्जा आ जाये, या अनिश्चय हो जाये कि अगर गलत बोलूं और कोई मुझे थप्पड़ मारे तो? सेवा करें और कोई अपराध हो जाये तो? और अपराध हो जाये अर्थात् ऐसे गलत काममें पड़ना ही नहीं. सेवा करेंगे तो अपराध तो पड़ेंगे ही ना! अर्थात् ऐसे अपराध तो गोस्वामी बालकोंको ही करने दो, अपन क्यों ऐसे गलत काममें पड़ें. गो.बालकोंको ही अपराध करने दो, ऐसे अनिश्चयसे तुम कभी भी पुष्टिमार्गपर आगे नहीं बढ़ सकते, यह बात हमें साफ तौर पर समझ लेनी चाहिये. तो हमने विश्वास एवं निश्चयके साथ कुछ आरम्भ किया, तो उसके बाद ऐरिक्सन जो बात कहता है वह है उद्योगकी.

उद्योग अर्थात् क्या? आरम्भकी तलनामें उद्योगका एक अलग अभिप्राय है. उद्योग अर्थात् अपने एफर्टस्का एप्लीकेशन्. तो उद्योग अर्थात् किसी बारेमें प्रयास करना. अर्थात् आरम्भ तो कर दिया. संस्कृतभाषामें एक कहावत है **आरम्भशूरा: खलु दाक्षिणात्या:** हरेक बातका आरम्भ कर दें परन्तु तत्पश्चात् भाईसाहब कहां गायब हो गये पता ही नहीं चलता. ऐसा भी होता है. तो ऐसा आरम्भ यह अलग तरहका है और उद्योग, अर्थात् **उद्योगिनं पुरुषसिंहम् उपेति लक्ष्मी** ऐसा कहा जाता है. आरम्भ करो और उद्योग न करो तो तुम्हारा कुछ भी विकास नहीं हो सकता. विश्वास आरम्भ और इनके बाद तीसरा कदम है उद्योगका.

उद्योगका प्रतिबंधक लघुताग्रंथि/इन्फीरियारीटि कॉम्प्लेक्स :

ऐरिक्सनने उद्योगका अपोजिट् बहुत सुंदर समझाया है कि जिसे उद्योग नहीं सुहाता उसमें इन्फीरियारीटि कॉम्प्लेक्स विकसित हो जाता है. जिसमें हीनपना होता है वह क्या सेवा कर सकेगा, सेवा तो सब मरजादी लोग करते हैं, सेठ लोग करते हैं, अपने घरमें प्रभु क्या पधरायें? इस प्रकारकी हीनता, आत्मग्लानीकी जड़ मान्यता विकसित हो जाती है. महाप्रभुजीने यह हीनता, तुम्हारा ये इन्फीरियारीटि कॉम्प्लेक्स सब दूर कर दिया है. अतएव महाप्रभुजी निश्चयसे आज्ञा करते हैं **निवदिभि: समर्प्यैव सर्वं कुर्याद् इति स्थिति: सेवकानां यथा लोके व्यवहार: प्रसिद्धयति तथा कार्यं समर्प्यैव सर्वेषां ब्रह्मता तत:. गंगात्वं सर्वदोषाणां गुणदोषादिवर्णना गंगात्वेन निरूप्या स्यात् तद्वदत्रापि चैव हि** (सिद्धान्तरहस्य २,७,८)

तुम कैसी लघुग्रन्थि या हीनता रखते हा? तुमने प्रभुको समपर्ण किया कि नहीं? अगर पुष्टिप्रभुको समर्पण किया है तो प्रभु जैसे अलौकिक हैं वैसा तुम्हारा सारा प्रयास अलौकिक हो गया. अब उद्योग शुरु कर दो, समर्पण कर दो. उद्योग करते ही

गंगात्वं सर्वदोषाणां गुणदोषादिवर्णना गंगात्वे न निरूप्या स्यात् तुम्हारी सारी हीनता धुल जायेगी. गंदा पानी भी गंगामें मिलकर गंगा बन जाता है. इस प्रकार अपनी अहंता-ममताका गंदा संसार भी प्रभुको समर्पित होनेके कारण भक्तिकी उत्तमोत्तम उपलब्धि बन जाता है. मुझे मेरी अहन्ता ऐसे लगती है कि **दासो अहं** मुझे मेरी ममता ऐसे लगती है **श्रीकृष्णः शरणं मम** तो मेरी अहंता-ममताका ऐसा जो विकास है, ऐसा जो उत्कर्ष है, यह मेरी सारी हीनभावनाको दूर कर देता है. जीव दोषोंसे भरा हुवा है और रहेगा परन्तु निर्दोष पुष्टिप्रभु मेरी सेवा स्वीकारनेकेलिये बंधे हुवे हों तो दोष बिचारे क्या कर पायेगे? श्रीगुसांईजी ने कहा है **बलिष्ठापि मद्दोषाः त्वत्क्षमाग्रे अतिदुर्बलाः तस्याः ईश्वरधर्मत्वाद् दोषाणां जीवधर्मतः** (विज्ञप्ति : ३-१९) इस कारण भय बिना ऐसा उद्योग हमें करना चाहिये. हमें यह उद्योग श्रीमहाप्रभुजीने सिद्धान्तरहस्य ग्रन्थमें कितनी खूबसूरतीसे समझाया है!

विकासका चौथा सोपान आत्मनिर्धार/सेल्फ आइडेन्टिफिकेशन :

ऐरिक्सनने चाइल्ड डेवलपमेन्टके जो प्रोसेस दिखाये हैं उनकी रोशनीमें जरा देखो तो तुम्हें पता चलेगा कितना सिस्टमेटिक उपदेश हमारे श्रीमहाप्रभुजीने दिया है. वह कितना मनोवैज्ञानिक है. मनोविज्ञान तो अब उत्पन्न हुवा है. महाप्रभुजीने उस समय अपने उपदेशोंमें यह सब सावधानियां ली थीं कि नहीं, यह निर्णय तुम खुद ही करो. खैर, उद्योग करनेवालेको ऐरिक्सन एक बहुत सुंदर बात कहता है, आत्मनिर्धार. आत्मनिर्धार होता है सेल्फ आइडेन्टिफिकेशन. यह अपने बारेमें जान सकता है कि म हूं कौन? किस प्रकार पता चले कि मैं कौन हूं? खत्म हो गई ना बात, तुम्हें पता ही नहीं कि तुम कौन हो?

मेरा एक जान पहचान वाला था उसने बताया कि उसके यहां दो भाई काम करने आते थे. एक दिन इसने अपने यहां काम करनेवाले एकसे पूछा कि तुम्हारे कितने बच्चे है? उसने अपने भाईसे पूछा क्यों भाई! कितने बच्चे हैं मेरे? दूसरे भाईने कहा कि चार. वह पहला भाई बोला हां हां मेरे चार बच्चे हैं! अब विचारो कि स्वयं स्वयंके पिता होनेकी वास्तविकता कि तेरे कितने बच्चे हैं तो किसी दूसरेसे पूछकर कहना पड़ता है **हैं भाई अपने कितने बच्चे**. और दूसरा कहे कि चार ही तो. बादमें अपनेको ध्यानमें आये कि हां हां चार ही तो. अतएव आत्मनिर्धारके विषयका अभाव जानना कि नहीं?

तो आत्मनिर्धार यह बहुत ड्रास्टिक स्टेप है कि तुम स्वयंको पहचानो कि तुम पुष्टिजीव हो. तुम अपने आपको तो पहचान नही सकते कि तुम पुष्टिजीव हो तो तुम्हें आत्म-अनिर्धार हो गया कहलायेगा. अगर तुम अपने आपको पहचान नहीं सकते तो किस कारण नहीं पहचान सकते? उसका एक कारण समझो बहुत महत्वपूर्ण कारण है कि तुम जो काम करते हो उस रीतिसे तुम अपने आपको पहचानते हो कि नहीं? जो काम ही तुम नहीं करते तो तुम अपने आपको उस साधनसे किस प्रकार पहचान सकते हो? जैसे कपड़े बेचने वाला हो तो कापड़िया, सुखड़ (चन्दन) बेचता हो तो सुखड़िया, गायोंका स्वामी हो तो गोस्वामी. इस प्रकार जो जो व्यवसाय होगा वह उद्योग होगा. उससे मनुष्य अपनी पहचान बनाता है, निर्धारण करता है. गुजरातमें रहते हो तो गुजराती, महाराष्ट्रमें रहते हो तो मराठी, हिन्दुस्तानमें रहते हो तो हिन्दुस्तानी, यह अपना आत्मनिर्धार है कि मैं कौन हूं? यह तो अपना उद्योग अपन करते हों तभी होगा ना! उद्योग अर्थात् धंधेके अर्थमें यह नहीं है. उद्योग अर्थात् पुरुषार्थ. कोई पुरुषार्थ करता होगा तो हमें हमारी पहचानको उस पुरुषार्थके आधारपर पहचाननेका अवसर खड़ा होगा. जब हम पुरुषार्थहीन हो जायेंगे तब अपने आपकी

पहचानको पहचाननेकेलिये कोई पहचानपत्र टांग नहीं सकते कि मैं मेरी पहचान कैसे पहचानूं? अतएव सबसे पहले अपने आपको पहचानना है जैसे ***नो दाइसेल्फ*** सोक्रेटिस कहता था, वैसे ही अगर तुम्हें अपने आपको पहचानना है तो कुछ उद्योग तो करना पड़ेगा. ऐसे ही पुष्टिमार्गमें भी तुम्हें अपने आपको पहचानना है तो कुछ उद्योग करना पड़ेगा. वह उद्योग महाप्रभुजोने अच्छे शब्दोंमें आज्ञारूपमें अथवा और्डररूपमें नहीं किया. वैसे तो हमारा उद्योग क्या है उसे तो महाप्रभुजी पुष्टिप्रवाहमर्यादा ग्रंथमें हमें बता ही चुके हैं कि **भगवद्रूपसेवार्थं तत्सृष्टिः न अन्यथा भवेत्** (पुष्टिप्रवाहमर्यादा : १२) इस प्रकार तुम्हें अपनी पहचानको पहचानना पड़ेगा कि मैं भगवदरूपसेवार्थ प्रकट हुवा हुं और **तत्सृष्टिः न अन्यथा भवेत्** इसके अतिरिक्त मेरी दूसरी कोई अन्य पहचान नहीं हो सकती. मैं सेवा करता होऊं तो ही मेरी पहचान है. सेवा नहीं करता होऊं तो भी मेरी बीमारीवाली पहचान तो यही है कि **स्वरूपेण अवतारेण लिंगेन च गुणेन च तारतम्यं न स्वरूपे देहे वा तत्क्रियासु वा तथापि यावता कार्यं तावत् तस्य करोति हि** (पुष्टिप्रवाहमर्यादा : १३)

इस बातको जरा ध्यानसे समझो कि तुम्हारे पास अपने आपको पहचाननेका एक उद्योग होगा तो तुम तुम्हारी पहचानको पहचान सकते हो. ऐसा आत्मनिर्धारक उद्योग अर्थात् पुष्टिजीवोंको अवश्य करनेका उद्योग. और वह उद्योग तुम्हें समझानेमें आ रहा है **भगवद्रूपसेवार्थं तत्सृष्टिः न अन्यथा भवेत्** यह तुम्हारा आत्मनिर्धारक उद्योग है.

आत्मनिर्धारका अभाव पालनकी कमीके कारण :

जब तुम्हारा आत्मनिर्धार डगमगा जायेगा तो तुम्हें अनिर्धार होगा, तब कुछ न कुछ तुम्हारे पालनमें प्रोब्लम् होगी उसका अनुमान कर लो.

तुम्हारे पुष्टिमार्गीय मां बापने या तो तुम्हें अच्छी तरहसे सिखाया पढ़ाया नहीं या हम गोस्वामियोंने तुमको इस मार्गपर अच्छी तरहसे चलाया नहीं. पुष्टिमार्गमें आते हुवे अनुगामियोंमें पुष्टिमार्गीय शिक्षाकी खासी कमी है. पुष्टिमार्गमें जन्मा बच्चा अपनी आत्माको उस रीतिसे पहचान ही नहीं सकता. यह पहचान तो प्रत्येक पुष्टिमार्गीयमें होनी ही चाहिये. एक बहुत ही मजे की बात बताता हूं, ध्यान दोगे तो समझोगे. प्रत्येक परिवारमें जो छोटे बच्चे होते हैं उनस पूछो कि तुम बड़े होकर क्या बनना चाहोगे? लगभग साठ सत्तर प्रतिशत ऐसा अभिगम बतायेंगे, पिता जो काम करता हो तदनुसार ये कहेंगे कि मैं बड़ा होकर डाक्टर, टीचर वगैरह बनूंगा. डाक्टरका बच्चा खेलमें ही स्टेथोस्कोप या थर्मामीटर लगाकर खेलता मिलेगा. जिसका पिता ऑफिस जाता होगा तो वह बच्चेपनसे कहना शुरु करेगा कि मैं बड़ा होकर ऑफिस जाऊंगा. जो पढ़ाता होगा उसका बच्चा बड़ा होकर मैं पढ़ाऊंगा ऐसा कहेगा.

मुझे ठीकसे याद है कि द्रुमिलबाबा बहुत छोटे थे, सात या आठ सालके होंगे. हमारे बड़े मंदिरमें आते और बैठ जात मथुरेशजीकी अदामें और फिर प्रवचन देना चालू करते कि पुष्टिमार्गीय भाइयों और बहनों अब मैं तुम्हें पुष्टिमार्ग समझाता हूं. ऐसे कहकर प्रवचन चालू कर देते थे. आत्मबोध था कि मुझे क्या करना है. इतने छोटे थे द्रुमिल तबकी बात कह रहा हूं. क्योंकि मथुरेशजीका देखा था प्रवचन करते हुवे. इसका नाम आत्मनिर्धारक उद्योग. उद्योग आरम्भ ना करे तो आत्मनिर्धार ही नहीं हो सकता. तुम्हें क्या करना है इसका पक्का निर्धारण नहीं हो सकता. अतएव आत्मनिर्धार बहुत जरूरी है.

<u>विकासका पांचवां सोपान घनिष्ठता/इन्टिमेसी</u> :

आत्मनिर्धारके बाद एक विकास ऐरिक्सन बहुत सुंदर बताता है, जिस व्यक्तिका आत्मनिर्धार हो गया उसे क्या मिलता है? उसे बहुत घनिष्ठता मिलती है. इन्टिमेसी प्राप्त होती है.

बहुत सुंदर नाम दिया है कि जिसे अपनी पहचानके साथ पहचान हो जाती है वह अपने जैसे दूसरोंको खोजकर उनका इन्टिमेट हो सकता है. जो अपनेको ही नहीं पहचानता कि मैं कौन हूं, तो किसके साथ मैं मिलूं यह पता ही नहीं चलेगा. यह जो प्रोब्लम है उसका समाधान देखो **निवेदनम् तु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशैः जनैः** (नवरत्न : २). हम तादृशीको किस प्रकार खोज सकेंगे? तादृशीको किस रीतिस खोजना? हाथमें गौमुखी ली हुई हो वह तादृशी? माथेपर मोटा तिलक लगाता हो वह तादृशी? प्रवचन करता हो वह तादृशी? नहीं नहीं, तो तादृशीको किस प्रकार खोजोगे? तादृशीको हम तबही खोज सकते हैं कि जब हमारी अपनी आत्माके भीतर तादृशी भाव भरा हुवा हो! अगर निज आत्माके भीतर तादृश भावकी भावना नहीं है तो तादृशी भगवदीयको खोज नहीं सकते. अतएव आत्मनिवेदनके द्वारा सबसे पहले तुम्हें अपने आपको ही खोजना पड़ेगा. अपनी पहचानको खोजना पड़ेगा. अगर ये तुम्हें मिल गई तो तुम्हें पता चलेगा कि तुम कौन हो? तत्पश्चात् तुम्हें तादृशी मिलेंगे. तुम्हारे अधिकारके अनुरूप. इसकेलिये संस्कृतमें एक बहुत सुन्दर श्लोक है: **मृगाः मृगैः संगम् अनुव्रजन्ति गावोश्च गोभिः तुंरगास्तुरंगैः। मूर्खाश्च मूर्खैः सुधियो सुधीभिः समानशीलव्यसेनषु सख्यम्।।**

घोड़ेको छोड़ो तो वह गायोंक बाड़ेमें नहीं घुसेगा. घोड़े जहां खड़े होंगे वहां ही हिनहिनाता घुस जायेगा. गायोंको छोड़ो तो ये घोड़ोंके तबेलोंमें नहीं घुसेंगी, गायोंमें ही जाकर मिलेंगी. **गावोश्च गोभिः तुरंगाः तुरंगैः मूर्खाः च मूर्खैः** जो स्वयंमें मूर्ख होगा वह तो खाज खोज कर मूर्खोंको ही खड़ा करेगा. क्योंकि दोस्ती उन्हींके साथ निभेगी. जो कोई समझदारीकी बात करेगा तो यह कहेगा, यह तो सब सिद्धान्तोंकी बातें हैं और पुष्टिमार्ग तो प्रमेयका मार्ग है! लो हो गया न काम अब कहां जाना? यहां तो सब प्रमेयकी बात होनी चाहिय, सिद्धान्तकी चर्चा क्यों?. पुष्टिमार्गमें सिद्धान्तका क्या लेना देना यह तो प्रमेय मार्ग है. तब तो **मूर्खाः च मूर्खैः** समझ लेना चाहिये. ऐसे तो बहुतसे भगवदीय

तुम्हें भारतमें मिल ही जायेंगे. एक ढूंढो तो दस मिलेंगे क्योंकि तुम मूर्ख हो तो तब ही ना! **सुधियो सुधीभि: समानशीलव्यसनेषु सख्यम्** क्योंकि समानशील समानव्यसन होता है तबही सख्य होता और निभता है. अतएव **निवेदनम् तु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशै: जनै:** (नवरत्न : २) तुम्हें तुरन्त इन्टिमेसी प्राप्त हो जायेगी तुम्हारे अधिकारानुरूप और यह बहुत बड़ी उपलब्धि कहलाती है.

<u>घनिष्ठताके अभावमें अकेलेपनका दोष और उसे दूर करनेके उपाय</u> :

ऐरिक्सनने इसका भी अपोज़िट बहुत खूबसूरत दिया है. जिनमें इन्टिमेसीकी कैपेसिटी नहीं होती, घनिष्ठताकी सामर्थ्य प्राप्त नहीं होती, उस बच्चेकी क्या दुर्गति होती है? यह कहता है कि वह अकेला पड़ जाता है. उसे अकेलापन अच्छा लगता है. वह कोनेमें बैठे रह कर दुनियांको देखता रहता है कि यह क्या है? यहां कौन अपना है! कौन अपना नहीं है? सब पाखंडी हैं. कोई सिद्धान्तकी चर्चा करता है, कुछ भी बिकता प्रसाद नहीं लेता. कोई स्वाध्यायी है. ठीक है परन्तु तू कौन है? यह तो बात बता. **अन्यनुं तो एक बांकु आपना अढार है**. वह मनुष्य अकेला पड़ जाता है. **ऊंट कहे सभामें सभी बांके अंगवाले भूंडा भूतलमें पशुओंने पक्षीयो अपार हैं.** यह अकेला पड़ जाता है, सब पशु पक्षीयोंसे अपनी पहचानको छोटा मान लो. अकेला बैठा सबके गुणदोषोंका चिंतन करता रहता है. यह अकेलापन ऐसा होता है. जबकि जो अपना घनिष्ठ आत्मनिर्धार करता है तो उसे तत्काल अपने अनुरूप ग्रुप मिल ही जाता है. तो नवरत्नमें हम देख चुके हैं कि **निवेदनम् तु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशै: जनै:** संन्यासनिर्णय ग्रंथमें भी तुम देखोगे आगे जाकर तो इस बातका महाप्रभुजीने बहुत स्फुटतर प्रतिपादन किया है कि अन्य तादृशीयोंका संग हमें करना पड़ेगा. भक्तिवर्धिनीमें भी इस बारेमें उपदेश देनेमें आया है **अत: स्थेयं हरिस्थाने तदीयै: सह तत्परै...**

सेवायां वा कथायां वा यस्य आसक्ति दृढ़ा भवेत् (भक्तिवर्धिनी - ९)

उसी प्रकार जलभेद, पञ्चपद्यानि इत्यादि ग्रंथोंमें संग किसका करना? किस प्रकार करना? किसे अपना मानना? किसे अपना नहीं मानना? अर्थात् अकेलापन किस प्रकार दूर करना ये दिखलानेमें आया है. भक्तिवर्धिनीमें भी महाप्रभुजीने इन प्रश्नोंका समाधान दिया है, **बाधसम्भावनायान्तु नैकान्ते वास इष्यते. हरिस्तु सर्वतो रक्षां करिष्यति न संशयः** (भक्तिवर्धिनी - १०) एकान्तवासकी जल्दबाजी मत करो मिलजुल कर रहो.

हम सब पुष्टिमार्गीय हैं. किस कारण एकांतमें चर्चा करनी चाहिये? सिद्धान्तचर्चा सार्वजनिक क्यों न हो? तो कहा जाता है कि यह तो एकान्तमें बंद दरवाजोंमें ही होनी चाहिये. अरे तुम साइकोलोजिकल् प्रोब्लमसे पीड़ित हो रहे हो. क्योंकि तुम्हें अकेलापन खा रहा है. पुष्टिमार्गमें सिद्धान्तचर्चा जो कोई भी पुष्टिमार्गीय हों वह सब मिलकर साथ साथ क्यों नहीं कर सकते? तुम्हारेमें घनिष्ठता नहीं है इसलिये नहीं कर सकते. सोधा सादा इसका जबाब यह है. डरनेकी क्या बात है? तुम वैष्णवोंके सामने सिद्धान्तचर्चा किस कारण नहीं हो सकती? लेकिन अगर इन्टिमेसी न हो तो कुछ न कुछ गड़बड़ है. दूसरी सभी चर्चाऐं हम सार्वजनिक रूपमें करेंगे परन्तु यह करनेमें कुछ दिक्कत आ जाती है. क्योंकि हम अकेले पड गये हैं. सिद्धान्तचर्चा तो बंद दरवाजोंमें ही होती है. सार्वजनिक रूपमें नहीं क्योंकि अगर वैसे किया जायेगा तो वैष्णव कहीं सिद्धान्तोंको समझ न जायें? फिर तो प्रलय, अर्थात् यह सब गड़बड़ ही है समझे. इस गड़बड़पर अपनेको काबू पाना पड़ेगा **चिन्ता कापि न कार्या निवेदितात्मभिः कदापीति भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीञ्च गतिम्** (नवरत्न : १) इसलिये नवरत्न जैसे ग्रंथको अच्छी तरहसे समझनेके लिये अकेलापन दूर करना पड़ेगा.

विकासका छट्ठा सोपान सृजनशीलता/प्रोडक्टिविटी :

अकेलेपनके बाद ऐरिक्सन अब एक बहुत सुंदर बात कहता है कि जब तुम्हारा अकेलापन दूर हो जायेगा तब क्या होगा? तो वह कहता है कि तब तुम्हारेमें प्रोडक्टिविटी आयेगी. अर्थात् तुम प्रोडक्टिव, सृजनशील, बनोगे. मनुष्य कभी भी अकेला रह कर सृजन नहीं कर सकता. सृजनकी पहली शर्त है कि हम अच्छी तरहसे हिलमिलकर रहें तो कुछ काम हो सकता ह. अच्छी तरह हिलमिल कर काम नहीं करेंगे तो प्रोडक्टिविटी खत्म हो जायेगी. कोइ भी पुरुष अकेला पिता नहीं बन सकता. कोई भी स्त्री अकेली माता नहीं बन सकती. कहीं तो इक्ट्ठा होना पड़ेगा, किसी न किसीके साथ तो सख्य अपने भीतर खिलाना पड़ेगा. फिर अपनेमें सृजनशीलता आयेगी. ऐरिक्सनने प्रोडक्टिविटीका अपोज़िट भी बताया है. श्रीमहाप्रभुजीने हमें यह बताया है कि प्रोडक्टिविटी वास्तवमें क्या है कि जिसे हम प्रोड्यूस कर सकते हैं?

क्या इस पुष्टिमार्गमें खाली मठडी, लड्डू, मोहनथाल ही प्रोड्यूस करने होते हैं? क्योंकि हम बहुत प्रोडक्टिव हैं, मनोरथी हैं, पैसा लेकर भीतरियाओंको, भंडारीयोंको ऑर्डर दे दूंगा कि आज मोहनथालकी चक्कीकी सामग्री आनी चाहिये. बादमें उसका प्रोडक्शन करके उस मोहनथाल, बुंदी, मठडीको बेच दूंगा. ऐसी प्रोडक्टिविटीकी बात नहीं चल रही भाईसाहब! यह तो लक्ष्मीके जो बच्चे हैं जो होटेल कि रेस्टोरेंटके व्यापारमें अटके हुवे हैं उनकी बात है. यमुनाजीके बच्चे ऐसा प्रोडक्शन नहीं करते, यमुनाजीके बच्चोंका प्रोडक्शन कुछ दूसरे प्रकारका होना चाहिये. तो इस प्रोडक्शनकी प्रकृति क्या है? प्रभुने हमें किस कारण प्रोड्यूस किया है? किस प्रकार प्रोड्यूस किया है? इसे समझोगे तो समझमें आयेगा कि प्रभुके हम किस प्रकारके प्रोडक्शन हैं. संक्षेपमें पुष्टिमार्गीय प्रोडक्शनका स्वरूप समझना हो तो हम

इतना समझ सकते हैं कि पुष्टि अर्थात् जो सर्वमें आसक्त हो और सर्वासक्तिको भगवदासक्तिके रूपमें प्रोड्यूस कर सकता हो तो वह पुष्टिमार्गीय या पुष्टिका प्रोडक्शन है. जिस जीवकी **या प्रीतिः अविवेकानां विषयेषु अनपायिनी त्वाम् अनुस्मरतः सा मे हृदयाद् मा अपसर्पतु** सर्व विषयोंमें रही हुवी अर्थात् दारा, आगार, पुत्र, आप्त, इत्यादि विविध विषयोंमें रही हुवी जो अपनी आसक्ति इसे पभुकी पुष्टिकी शक्तिसे, पुष्टिकी शक्तिका साक्षात् आधिदैविक स्वरूप श्रीयमुनाजी, यह पुष्टिकी शक्तिसे प्रोड्यूस करती हैं भगवदासक्तिरूपमें **तया सकल सिद्धियो मुररिपुः च सन्तुष्यति स्वभाव विजयो भवेद् वदति वल्लभः श्रीहरेः** (यमुनाष्टक : ९) अब स्वभावविजय अर्थात् क्या? प्रत्येक विषयोंमें हमारी जो आसक्तिका स्वभाव है उसके ऊपर हमारी विजय प्राप्त होनेकेलिये भगवदासक्ति हो वह. आसक्ति छोड़नेकी हमें जरूरत नहीं पड़ती, विषयोंमें रही हुवी आसक्तिको ही, श्रीमहाप्रभुजी विवेकधैर्याश्रय एवं निरोधलक्षण ग्रन्थोंमें समझाते हैं **एवं चित्ते सदा भाव्य वाचा च परिकीर्तयेत्** (विवेकधैर्याश्रय : १३) **हरिमूर्तिः सदा ध्येया संकल्पादपि तत्र हि दर्शनं स्पर्शनं स्पष्टं तथा कृतिगती सदा श्रवणं कीर्तनं स्पष्टं पुत्रे कृष्णप्रिये रतिः** (निरोधलक्षण : १७-१८) तदानुसार पुष्टिप्रभुके साथ जोड़ देनेके लिये होता है.

इस प्रकार प्रत्येक विषयमें रही हुई हमारी आसक्ति एक मिट्टी जैसी है. विषयोंमें रही आसक्ति खानमें पड़े सोने या चांदी जैसी या हीरेके पत्थर जैसी है. इसे परन्तु हमें खोदकर बाहर निकालना पड़ता है और साफ करके घड़ कर प्रोड्यूस करना पड़ता है. जैसी मिट्टीका घड़ा बनाते हैं वैसे ही अपनी विषयासक्तिको अपनी भगवदासक्तिमें कौन घड़ेगा? भगवानकी पुष्टि या पुष्टिशक्ति. और यह पुष्टिशक्ति जब हमारी विषयासक्तिको भगवदासक्तिमें घड़ देगी तब हम, पुष्टिभक्तके तौरपर क्या घड़ते हैं? जो सर्वोद्धारक परमात्मा है उसे अपने

भक्तोद्धारक तौरपर अथवा तो स्वात्माद्धारक तौरपर घड़कर निकालते हैं. होगा तू गामका या ब्रह्माण्डका भगवान मेरे लिये तो तू मेरा ही है. मेरे माथेपर बिराजते हुवे मेरे ठाकुरजी हो. ना कि पब्लिक ट्रस्टके या गामकेलिये बिराजते ठाकुरजी. इस सर्वोद्धारकको स्वात्मोद्धारक तौरपर घड़नेकी प्रोडक्टिविटी अपने यहां है.

ये सृजनशक्ति या प्रोडक्टिव पावर् हमारी कब सफल होती कि जब हमारे ऊपर पुष्टिवृष्टि हुवी हो. ऐसी कि जिससे अपनी विषयासक्ति भवदासक्तिमें बदल जाये.

इससे सर्वोद्धारक परमात्मा हमारे माथे ऊपर ऐसी रीतिसे बिराज जाता है कि इसे हम भोग धरें तबतो खाता है, हम इस जगायें तब जागता है, हम इसे सुलायें तो सोता है, हम इसे श्रृंगार धरायें तो यह शोभायमान होता है, ऐसा भगवान हम बना सकते हैं. यह अपनी वास्तविक प्रोडक्टिविटी है. यह अगर हम प्रोड्यूस नहीं कर सकते तो कहीं न कहीं कुछ गड़बड़ है. कहीं न कहीं तुम्हारे पालन पाषनमें प्रोब्लम हो गई लगती है. या तो भगवानकी पुष्टि तुम्हारेमें काम नहीं करती, या फिर प्रभुकी पुष्टिशक्ति द्वारा तुम्हारी विषयाशक्ति भगवदासक्तिमें बदली नहीं, या फिर यहां वहां भटक कर तुम पाखंड कर रहे हो. भगवानने अपनी पुष्टिशक्ति प्रयोग करके तुम्हारी विषयासक्तिको भगवदासक्तिमें रिप्रोड्यूस किया हो तो तुम सर्वोद्धारकको भक्तोद्धारक अर्थात् तुम्हारे स्वयंके उद्धारक स्वयंके माथे बिराजते ठाकुरजी बना सकते हो. यह ही पुष्टिमार्गमें सबसे बड़ी प्रोडक्शनकी रीतिभांति है. यह बात अगर हम अच्छी तरहसे समझ जायें तो **बीजदार्ढ्यप्रकारस्तु गृहे स्थित्वा स्वधर्मतो अव्यावृत्तो भजेत् कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः** (भक्तिवर्धिनी : २) वचनमें कहे हुवे ये जगद्व्यापी परमात्माको, जो कण कणमें व्याप रहा है, उसे तुम अपने घरमें पधरा सकते हो. उसे तुम कह सकते हो कि तू यहां आ जा और हमारे पास बैठ जा. **दर**

खेलन जाओ लला रे! वनमें बैठे हाउ बिलाउ. तुम उसे डरा सकते हो. ऐसे कि वह डरके मारे कभी भी तुम्हारा घर छोड़कर बाहर न भटके. तुम उसे ऐसा बना सकते हो रिप्रोड्यूस कर सकते हो. यह कहता है कि मैं सर्वव्यापक हूं **नह्यस्यास्ति प्रिय: कश्चित् नाप्रियो वास्त्यमानिनो... नात्मीयो न परश्चापि ... समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितम् ईश्वरं न हिनस्ति आत्मना आत्मानं...** हूं तो तुम भी यह कह सकते हो कि जो कुछ घढ़ने लायक आपने हमको घढ़ा है वैसे ही हमने आपको घढ़ा है. तुम कहते हो वैसे तुम मिट्टीके रूपमें कदाचित होगे लेकिन गढ़ेक रूपमें जैसे तुम्हें घड़कर निकाला है कि अब आपको हमारे ही घरमें बिराजना पड़ेगा. **रहिये मेरे ही महल अनत न जइये शैया सामिग्री वसन आभूषण सब विध कर राखोंगी पहल.** किस कारण दूसरी जगह जाते हो? ऐसी रीतिसे हम अपने सेव्य प्रभुको घड़ सकते हैं. इससे समझोगे कि अपने पुष्टिमार्गका प्रोडक्टिव कोर्स कैसा है. यह जितनी है उतनी प्रोडक्शन लाइन बिल्कुल ठीक है. जहां कुछ खराबी है वहां समझो कुछ न कुछ घोटाला हो गया. या तो मैनेजमेन्टमें खराबी है, या मजदूर जो हैं वह कामचोर हो गये दीखते हैं, अथवा तो तुम्हारी पूंजी समाप्त हो गई. कहीं न कहीं नुक्सानमें जा रही है तुम्हारी कम्पनी इस बातको समझो, जब तुम ऐसा प्रोडक्शन कर नहीं सकते, तुम्हारी प्रोडक्शन लाईनको तुम जान नहीं सकते. यह अपने पुष्टिमार्गकी बहुत महत्वपूर्ण बात है.

विकासका सातवां सोपान आत्मस्वरूपबोध/ईगो-आईडेन्टिफिकशन :

इसके बाद आखिरी स्टेप् ऐरिक्सन बताता है कि जब तुम सृजनशील बन गये तब तुम्हारे लिये ईगो-आईडेन्टिफिकेशन, तुम्हारी आत्माका जो कुछ वास्तविक स्वरूप है उसे तुम पहचान सकते हो. आत्मतादात्म्यका बोध, इसके अपोज़िट रूपमें ऐरिक्सनके मत अनुसार तुम्हारा ईगो

स्प्लिट् हो जाता है. ईगो स्प्लिट् होनेका ऐक्जेट उदाहरण हमें समझना हो तो वह इस प्रकार कि **सिद्धान्त तो सब ठीक हैं लेकिन व्यवहारमें कैसे लायें? इसमें थोड़ी व्यवहारिक परेशानी हैं!** ऐसे कहनेवालोंका ईगो स्प्लिट हो गया ना! वास्तविक सिद्धान्त व्यवहारमें ला सकते नहीं अर्थात् ईगो स्प्लिट हो गया. वास्तविक सिद्धान्त कहेंगे तो लोग हमें मानना ही छोड़ देंगे. क्योंकि लोगोंकी श्रद्धा सिद्धान्तोंमें नहीं परम्परामें है. ईगो स्प्लिट हो गया. ऐसे ही जब हम प्रोडक्टिव नहीं हो सकते तब हमारी ईगो स्प्लिट हो जाती है. आत्माका वास्तविक रूपके साथ तादात्म्य हम प्राप्त नहीं कर सकते. सागर नामके एक शायरने कहा है: **दश्ते-वहशतका सफर लगता है. इश्क भी कारे हुनर लगता है. एक अजब शख्श भरा है मुझमें. आइना देखुं तो डर लगता है. आदमी खुदसे बिछुड़ जाये अगर. अजनबी अपना ही घर लगता है.** यह अक्षरश: आज पुष्टिमार्गपर लागू पड़ता है. सिद्धान्तोंके शीशेमें अपना मुख देखनेसे मोटे तौरपर पुष्टिमार्गीयोंको आज डर लगता है. क्योंकि आज हम वास्तविक पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तोंके घटादार वृक्षोंकी छायावाले पुष्टिमार्गसे बहुत दूर छिटक कर अपसिद्धान्तोंके उजाड़ रेगिस्तानमें भटक रहे हैं. वह अपसिद्धान्त अर्थात् पुष्टिभक्तिका व्यापारीकरण खुलेमें नौटंकी. अतएव पुष्टिप्रभुके इश्कको हमने पैसोंके खेलका, हुनरका, कौशल तो बना दिया है लेकिन उसमेंसे पुष्टिप्रभु तो नदारद हो गये यह भी जान लेना चाहिये. इस कारण आत्मस्वरूपबोधके अभावमें होता ऐसा आत्मविभाजन बहुत ही भयंकर होता है. टु बी और नॉट टू बी!

<u>आत्मस्वरूपबोधका विरुद्ध आत्मविभाजन/ईगोस्प्लिट्</u> :

जिसे अंग्रेजीमें स्प्लिट् पर्सनालिटि कहते हैं. एक बार बच्चेका लालन पोषन इस प्रकार करो कि इसकी पर्सनालिटि स्प्लिट हो जाये तो वह कभी भी कोई काम ठीकसे नहीं कर सकेगा. वर्तमानमें हम पुष्टिमार्गीय भी समाजमें कोई उल्लेखनीय

रिजल्ट नहीं दे सकते इसका मुख्य कारण यह है कि हमारी (हमारे पू.पा.गो.बा. लोगोंकी और तुम्हारे प.भ.बापा-बापी लोगोंकी) पर्सनालिटि स्प्लिट हो गई है. उसका कारण आत्मस्वरूपके साथ तादात्म्यबोध हम लोग नहीं करते कि हमारी ईगो आईडेन्टिटी कैसी? **मैं कैसा** इसका बोध होना चाहिये. जो भी काम करूं, दस काम करूं लेकिन मेरी यह सेन्स् ऑफ ईगो सबके साथ मिलकर कहीं खंडित न हो जाये. तुम्हारी ईगो तुम्हारे व्यक्तित्वका एक पहलू अगर तुम्हारे व्यक्तित्वके दूसरे पहलूसे अलग है तो आत्मविभाजन हो गया. मोटे तौरपर क्या होता है कि जब ट्रैफिकमें हम आते जाते हों और अगर ज्यादा ट्रैफिकके कारण हमारी कार जाममें फंस गई तो तुरन्त हमारी ईगो स्प्लिट हो जाती है. हम कहते हैं **देखो कितना ट्रैफिक बढ़ गया है? कार चलानेकी भी जगह नहीं है.** अरे यार! तू भी तो ट्रैफिकको बढ़ा रहा है यह भूल कैसे भूल गया? इसमें तुम्हें कष्ट हुवा तो तुम्हारा ईगो स्प्लिट हो गया. अब तुम अपनेको ट्रैफिकका हिस्सा समझनेको तैयार नहीं हो. तकलीफ तो होगी ही. मनुष्यको तकलीफ न हो यह तो हो ही नहीं सकता लेकिन इन छोटी मोटी किसी भी तकलीफमें ईगो स्प्लिट नहीं होना चाहिये. देश, काल बदल जाते हैं, कानून बदल जाते हैं, ऐसे ही बहुत सारी वस्तुयें बदल जाती हैं, इनमें कोई दिक्कत नहीं. इस बदलावमें, बदले हुये देशकाल और कानूनमें या तो तुम्हारे ईगोको तुम पूर्णतासे निभा सकते हो अथवा तो देशकालके अनुसार अपने ईगोको ही बदल सकते हो तो ईगो स्प्लिट नहीं होगा. लेकिन निरंतर बदलते देशकालमें तुम भी निरंतर **गंगा गये गंगादास और जमुना गये जमुनादास,** बनते रहो तो फिर तो हो गया. तुम्हें पता ही नहीं चलेगा कि कब कौन आ जायेगा और उसके कारण तुम्हें क्या बनना पड़ेगा!

जैनोंमें इस बातके बारेमें एक बहुत अच्छा प्रसंग है. हजार वर्ष पहले दो भाई जैन धर्मके थे. इनको बौद्ध धर्म

समझनेके लिये बौद्धोंके मठमें एडमिशन लेना पड़ा. अब एक समय बौद्ध मठमें बौद्ध गुरु कुछ जैन धर्मके बारेमें समझा रहे थे लेकिन इनको जैन धर्मकी बारीकी पता नहीं थी, इस कारण एक दो दिन पाठ बंद हो गया. पाठ कैसे आगे चले! खुद ही न समझ आ रहा हो तो पढ़ाये कैसे? अतएव एक दो दिन पाठ बंद रहा. उन दिनों बौद्ध अपने मठोंमें जैनोंको एडमिशन देकर नहीं पढ़ाते थे. इस कारण जैन भाईयोंको बौद्ध बनकर एडमिशन लेना पड़ा. उनमें एकका नाम **अकलंक** और दूसरेका नाम **निष्कलंक** था. अब बौद्ध बनकर धर्म पढ़ते थे तो तीन दिन पाठ नहीं चला अतएव **अकलंक**का धीरज टूट गया. उस पाठमें जो कोई विसंगति थी वह उसने पुस्तक में सुधार दी. इस प्रकार पढ़नेपर यह बात समझमें आ जायेगी. अब बौद्ध गुरुको ऐसा लगा कि कोई दुष्ट जैन अपने मठमें घुस गया लगता है. अब किस प्रकार उसको तलाशा जाये? जिसे जिसे पूछा गया कि तुम कौन? हरेक व्यक्ति बोला मैं बौद्ध. सबने बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि बोलनेके लिये कहा गया तो वह सब बोल ही गये. अब पहचानना किस प्रकार? बहुत मजेदार प्रसंग है सुनने लायक ईगोका. ध्यानसे सुनना. अब इनने कहा चलो एक काम करो, महावीरका चित्र भूमिपर धरा और सबसे कहा कि इसके ऊपर पैर रखो. उस जमानेमें श्वेतांबर बहुत थोड़े थे, अधिकतर दिगम्बर ही थे. बुद्ध और महावीर दोनोंकी बैठने की रीति तो एक जैसी ही ध्यानमुद्राकी लेकिन बुद्ध वस्त्रधारी और महावीर निर्वस्त्र. अतएव अकलंकने विचार किया कि पैर धरनेसे पहले एक झीना सूत्रका डोरा डाल दूं तो वह अपने निर्वस्त्र भगवान महावीर मिटकर बुद्ध बन जायेंगे. सूत्रका डोरा डाला अर्थात् रेखाचित्र अब सवस्त्र बुद्धका बन गया. उसके ऊपर पैर रखनेमें अकलंकको क्या परेशानी थी? उसने पैर रख दिया. अर्थात् बौद्ध गुरुने जो टेस्ट लिया वह फिरसे फेल हो गया. अब किस प्रकार पता लगाना कि वास्तवमें कौन जैन यहां घुस आया है? जैन बिना तो कोइ और इस

बातको जान नहीं सकता. कोई कबूल करता नहीं कि मैंने पाठ सुधारा है. अब गुरुने कहा कि अचानक रातको धूमधड़ाका करो. सब सोते हों तो सबके ऊपर दृष्टि रखो. ऐसे जोरका धमाका किया कि पहले जितने बौद्ध विद्यार्थी सो रहे थे वह तो वैसेके वैसे उठकर बैठ गये. और अकलंक जैन होनेके कारण नवकार मंत्र बोले बिना उठा नहीं अतएव पकड़ा गया. बौद्ध होकर बौद्ध मठमें पढ़ रहा था परन्तु जैन होनेका ईगो कितना कि **ण्मो अरिहंताणं, णमो जिनाणं/सिद्धाणं, णमो आयरिआणं, णमो उवज्झाणं, णमो सव्व लोएसु साहूणं** बोले बगर उठे तो उठे कैसे? अर्थात् नींदमें था इसलिये पकड़ाईमें आ गया. बहुत दंगे हुवे इस बात पर. सातसौ आठसौ जैन बौद्ध आपसमें लड़कर मर गये. ऐसा दंगा हो गया था इस घटनाके कारण. खैर, एक बात समझो अब तो देशकाल बदल गये हैं. उस जमानेमें अकलंकका जो ईगो था कि मैं महावीरका अनुयायी हूं. नवकार मंत्र बोले बिना मैं खड़ा नहीं होउंगा. इतना काम कर ही रहा था कि नहीं? ईगो उसकी स्प्लिट नहीं हुवी. वेश बदल गया, दिनचर्या बदल गई, लेकिन ईगो वहांकी वहां ही रही.

हमें लगता है कि सरकारने कानून बदल दिया तो अब हम ऐसे कैसे कहें कि ठाकुरजी हमारे माथे बिराजते हैं. कहेंगे तो सरकार ठाकुरजीके कारण होती कमाईपर टैक्स लगा देगी. इस डरके कारण पर्सनालिटि स्प्लिट हो गई. सरकारने कानून बदला लेकिन तुम कैसे बदल गये? अतएव तुम्हारी पर्सनालिटि स्प्लिट हो गई. तुम्हारा ईगो स्प्लिट हो गया. अर्थात् सेल्फ/ईगो आईडेन्टिफिकेशनकी तुम्हारेमें कमी रही है. यह भली प्रकार पालन पोषण न करनेकी कमी है.

<u>आत्माके अविभाजनके लिये श्रीमहाप्रभुजी द्वारा ली गई सावधानी</u> :

ऐरिक्सनने यह जो बात बताई है उसी प्रकार महाप्रभुजीने भी षोडशग्रंथोंमें अपनी ईगो कहीं स्प्लिट न हो जाये उसके लिये अच्छी सावधानी ली है. यह तो बहुत विस्तारका विषय है. लेकिन फिर भी जैसे तुम्हारे पुष्टिमार्गमें आनेके बाद तुमसे सेवा नहीं निभती तो कथा करो, कथा नहीं निभती तो तीर्थयात्रा करो, तीर्थयात्रा ठीक नहीं पड़ती तो मर्यादामार्गीय वैष्णव मन्दिरोंमें दर्शन-पूजापरायण होवो, शरणागति करो, शरणागति नहीं रुचती तो विवेक करो, अगर और कुछ नहीं होता तो **श्रीकृष्ण:शरणंमम** बोलते रहो. यह बोलनेमें तुम्हारा क्या जाता है? बोलते रहो. इसमें हेतु श्रीमहाप्रभुजीका एक ही कि तुम्हारी ईगो आईडेन्टिफिकेशन पर कहीं कभी चोट न लग जाये - तुम्हारा ईगो जागरूक रहे. मैं कौन हूं और मुझे क्या करना है और मुझसे क्या होना चाहिये?

बच्चोंके विकासमें यह मनोवैज्ञानिक पहलू हैं जो ऐरिक्सनने बताये हैं उनकी इतनी अतिशय सावधानी शायद ही किसी धर्मोपदेशकने ली है. इतनी डीटेलवाइस् सावधानी शायद ही किसी धर्माचार्यने अपने धर्मोपदेशमें ली हो कि न ली हो लेकिन महाप्रभुजीने यह सब सावधानियां ले रखी हैं. अपनी मानसिक जटिलताओंकी, इतनी अधिक सावधानी हमारे श्रीमहाप्रभुजी नहीं लेंगे तो कौन लेगा?

अतएव श्रीमहाप्रभुजी हमें नवरत्नमें भी इसी सावधानीका उपदेश दे रहे हैं कि क्या करो कि जिससे निवेदनके बाद तुम्हारा ईगो स्प्लिट नहीं हो. क्या करो अगर तुम विनियोग नहीं कर सकते तो तुम्हारा ईगो स्प्लिट न हो, क्या करो कि जब तुम्हारे बच्चे बच्चियां बहु बेटे बेटियां तुम्हारी भक्तिकी रीति-भांति कि मेंड नहीं पालते. **मैं तो मरजाद लेकर सेवा करता हूं लेकिन वह मासिक धर्म नहीं पालती. कौन? जो नई बहू आई है न वह.** ऐसे क्षुद्र हेतुओंसे तुम्हारा ईगो स्प्लिट हो

जाता है. अतएव घरमें सेवा करनी ही नहीं. व्यापारिक हेतुओंसे चलती हवेलियोंमें सेवाके ग्राहक बनकर पैसा चढ़ा आओ. इस प्रकारका ईगो स्प्लिट हो गया है. एक बार नवरत्न जैसे जैसे तुम सुनोगे वैसे वैसे समझते जाओगे, पुष्टिमार्गमें प्रवृत्त होनेके बाद **पुष्टिमार्गे प्रवृत्तस्य दाढ्यार्थम् उच्यते, अन्धस्य सूर्यदेव तद्विमुखस्य ने अत्र अर्थिता** ऐसा कहकर पुष्टिमार्गमें प्रवृत्त होनेके बाद तुम्हारी जो पुष्टिमार्गीय होनेकी अस्मिता है उसे प्रभुचरण दृढ़ करना चाह रहे हैं. महाप्रभुजी नवरत्नमें तुम्हारी ईगो स्प्लिट न हो जाये ऐसी रीतिसे पुष्टिमार्गपर चलनेमें जैसा मौसम हो बरसात का कि तूफानका, ठण्डीका कि गरमीका, कच्चा रास्ता हो कि पक्का, शेर चीते भी आ गये हों तो भी मार्ग परसे तुम्हारा ईगो कभी भी स्प्लिट न हो. इस बातकी अतिशय सावधानी नवरत्नमें श्रीमहाप्रभुजीने रखी है.

तुम अपने आपको किस प्रकार समझ रहे हो इसमें किसी भी दिन ऐसी टूटन, ऐसी दरार कि फाट नहीं आये कि **सिद्धान्त तो ठीक हैं लेकिन खुलेमें चर्चाकरने जैसे नहीं हैं. मोटे तौरपर मानते हुवे भी कुछ हमें मान्य नहीं हैं.** ऐसे सब उद्गार आज ईगो स्प्लिट होनेके उदाहरण, हम गोस्वामी बालकोंके मुखारविन्दोंमें भर गये हैं. नवरत्न पढ़ो तुम्हारी समस्त चिंताओंका निराकरण हो जायेगा. हम अपनी पुष्टिमार्गीय होनेकी अस्मिताको इस नवरत्न ग्रंथके सहारे जान पायेंगे . इस भावनासे प्रारम्भ करते हैं हम लोग. और यह सावधानी श्रीमहाप्रभुजीने ली है.

<u>उद्वेग और चिंताके बीच रहे हुवे संबंधका विचार</u> :

सेवाफलमें महाप्रभुजी हमें सेवाकी फलरूपताके साथ पुष्टिमार्गमें बाधक क्या है वह भी समझाते हैं. भगवत्सेवा करनेपर भी भोग, उद्वेग और प्रतिबंध बाधक होते हैं. उनको

तुम किस तरहसे ओवरकम् करोगे? महाप्रभुजी कहते हैं: **निवेदिभिः समर्प्यैव कुर्याद्** (सिद्धान्तरहस्य : ४)

समर्पण करनेके बाद जो भोग तुम करते हो उसमें तुम घबराओ नहीं. **अलौकिकस्तु भोगः प्रथमे प्रविशति** यह तो तुम्हारी अलौकिक साम्र्थ्य है कि तुम समर्पितका उपभोग कर रहे हो. यह तुम्हारे भोगकेलिये नहीं, यह तुम्हारे आत्मसमर्पणके आधारपर करे हुवे विनियोगका भगवत्प्रसाद है. तुम्हारा अहं=आत्मबोध घायल नहीं हो जाये उसके लिये भोगका निराकरण श्रीमहाप्रभुजीने सिद्धान्तरहस्य ग्रंथमें किया है. उद्वेगकेलिये महाप्रभुजी कहते हैं कि उद्वेग भी भगवत्सेवामें प्रतिबंधकरूप होता है.

उद्वेगको अच्छी तरहसे समझो. उद्वेग अर्थात् क्या? उद्वेग अर्थात् किसी भी प्रकारका शारीरिक या मानसिक आवेग ही अपन भीतर उभरता रहता है. जैसे अपनेको उल्टी होती हो तो यह एक प्रकारका पेटका उद्वेग है. हमारी पाचनशक्तिका जो नोर्मल प्रोसेस है वह उद्विग्न हो गया है. **ओवीजी=भय-सञ्चलनयोः** जो मानसिक या शारीरिक या बाह्य वेग तुम्हें डरायें अथवा जो तुम्हें चलायमान कर दे. तुम्हारे रास्तेसे तुम्हें डिगा दे उसका नाम **वीजी=वेग** जो तुम्हें एकसे दूसरे रास्तेपर चला दे. अब **उद्+वेग=उद्वेग** अर्थात् ऊपर उठता जो वेग जिसे हम काबूमें न ला सकते हों उसका नाम **उद्वेग.** श्रीपुरुषोत्तमजी बहुत अच्छी तरहसे समझाते हैं कि इस नवरत्नमें एक प्रकारकी चिंता नहीं है. तीन प्रकारकी चिंताओंका निराकरण श्रीमहाप्रभुजीने किया है: [१]उद्वेगसे उत्पन्न होती चिंता, [२] उद्वेगरूपा चिंता और [३]उद्वेग उत्पन्न करनेवाली चिंता. ऐसे त्रिविध चिंताओंका यहां निराकरण करनेमें आया है.

(१) <u>उद्वेगसे उत्पन्न होती चिंता</u> :

कितनी चिंतायें अपनी ऐसी होती हैं कि जो उद्वेगके कारण उत्पन्न होती हैं. हम लोग जब समाजमें रह रहे हैं तो किसी न किसी भयकी परिस्थिति उत्पन्न होगी ही, तब हमें उद्वेग हो जाता है. उद्वेग होना यह बहुत ही स्वाभाविक वस्तु है. प्रत्येक जीवित मनुष्यको, जिसे गालिब बहुत ही अच्छी तरहसे कहता है: **दिलही तो है ना संगोखिश्त दर्दसे भर न आये क्यों?** यह दिल है कोई ईंट पत्थर तो नहीं है. दिल है तो इसमें कुछ न कुछ दु:ख तो अनुभव होगा ही लेकिन इस दु:खको तान तान कर कितना तानोगे? चिंताकी सीमा तक तानना? तो श्रीमहाप्रभुजी कहते हैं : तानो नहीं भाईसाहब जो उद्वेग होता है तो उसे उद्वेग ही रहने दो. इसे तानकर चिंताके रूपमें मत पलटो.

(२) <u>उद्वेगरूपा चिंता</u> :

किसीको उद्वेगरूपा चिंता हो जाती है कि **नित्य ही उद्वेग**. मेरे पास एक बहन आती है. कमसे कम मेरे पास सौ-डेढ़सौ बार तो आई ही होगी. लेकिन जब भी आये तब ही मुझे एक ही बात कहे कि **गुरुजी बहुत उद्वेग है.** अब जब भी मेरे पास यह आये तो मैं कैसियो बजाने बैठ जाऊं, तबला बजाने लगूं. तो यह मेरेसे कहे कि **आप सुनते क्यों नहीं कि मुझे बहुत ही उद्वेग है.** अतएव मुझे भी उद्वेग होने लगा! यह आये इसकी मैं चिंता नहीं करता लेकिन उद्वेग तो हो ही जाये. मैंने उसे एक दिन कहा **उद्वेग है तो अब उसे सहो, मैं भी तो सह रहा हूं कि नहीं?** मनमें तो मैं सोच रहा था **तुम जो पैदा करती हो वह.** अर्थात् जब भी आये तब एक ही रट कि बहुत उद्वेग है गुरुजी. अरे कोई दिन तो मेरे घर इस प्रकार आवो और हंस कर कहो **आज कोई उद्वेग नहीं है.** उससे मैं भी आश्वस्त होऊं. यह आये अतएव मैं जो न करता होऊं तो भी कुछ न कुछ करना पड़े जिससे कि उसका उद्वेग मेरी चिंतामें कहीं परिणत न हो जाये. मूल हेतु इतना ही. कुछ होगी उसकी भी तकलीफ

अतएव अपने उद्वेगको आउटलैट देती होगी. मैं भी लाचार होकर कभी संगीत प्रोडक्टिव करने लगूं. लेकिन फिर भी न करने दे. कैसियो बजाता हूं तो रोक कर कहे **आप सुनते क्यों नहीं बहुत उद्वेग है.** अरे अच्छा फंसा, क्या समुद्रमें डूब कर मर जाऊं! मुझे तब ऐसा लगे कि महाराज बहुत ही समझदार होते हैं कि एक द्वारपाल रखते हैं. जो अवांछनीय व्यक्तिको घुसने ही न दे. लेकिन मैं क्या करूं, मैं वैष्णवोंको इतना अलग नहीं मानता. इसे उद्वेग है तो हमें भी थोड़ा शेयर करना चाहिये. तो थोड़ी अपनी सामर्थ्य अनुसार शेयर करता भी हूं. मेरी सामर्थ्य जब समाप्त हो जाती, तब कुछ न कुछ ऐसा उपद्रव भी करना पड़ता है. तबला बजाऊं, कैसियो बजाऊं, पुस्तक पढ़ने लगूं, कौम्प्युटरपर बैठ जाऊं, किसी भी प्रकार यह उद्वेग चिंतामें न बदले. अतएव कितनी ही चिंतायें स्वयं उद्वेगरूपा होती हैं.

(३) <u>उद्वेग उत्पन्न करनेवाली चिंता</u> :

कितनी चिंतायें उद्वेगजनिका होती हैं. अर्थात् उद्वेग उत्पन्न करने वाली होती हैं, चिंता पहले शुरु होती है और उसके कारण तुम्हारेमें उद्वेग होना प्रारम्भ हो जाता है. उद्विग्न हो जाते हो.

<u>चिंताके स्वरूपका विचार</u> :

एक मुख्य प्रश्न यहां खड़ा होता है कि तब चिंता अर्थात् क्या? यह बात अपनेको अच्छी तरहसे समझनी पड़ेगी. चिंता यह वास्तवमें जीवनमें एक समस्या है. जबकि हम **समस्या** शब्दका अर्थ भी बहुत अच्छी तरहसे नहीं समझते हैं. **समस्या** शब्द बहुत जगह प्रयोग करते हैं. **समस्या** शब्द संस्कृतका बहुत मजेदार शब्द है. **सम्+अस्या = समस्या.** अर्थात् जो फैंक देनी जैसी बात हो वह **अस्या** कहलाती है. **समस्या** अर्थात् सम्पूर्णतया या अच्छी तरह जो फैंक देने जैसी हो वह. अब बौद्धिक रीतिसे, व्यवहारिक रीतिसे, भावना कि प्रेम रूपमें जिस प्रकारकी समस्या हो वह

अल्टिमेटली वह फैंक देनेकेलिये ही होती है. संग्रह करनेकेलिये नहीं होती. कितनेही राजनीतिके विद्वानोंका ऐसा स्पष्ट अभिप्राय है कि कांग्रेसने प्रशासन तो बहुत अच्छी तरहसे किया लेकिन बहुत सी समस्याओंको संचित करके रखा. समस्याओंको निबटा नहीं दिया. उनका रोना हमको आज तक रोना पड़ रहा है. समस्या बेसिकली सुलझा देनी चाहिये. निबटा देनी चाहिये. अस्या अर्थात् असु=क्षेपणे फैंकनेकी, निबटानेकी क्रिया. जैसे हम कूड़ा घरमेंसे निकालकर बाहर फेंक देते हैं उसे समस्या कहते हैं. और इसका अपोज़िट शब्द है **समाधान.** समस्याका समाधान अर्थात् क्या? कि जिसे अच्छी तरहसे संचित करना चाहिये वह. ऐसी रीतिसे रखो कि वह हमेशा संग्रहित रहे. उसका नाम समाधान. उद्वेगसे जनित चिंता यह एक समस्या है. उद्वेग रूपा चिंता यह भी एक हमारी समस्या है. उद्वेगजनिका चिंता यह फिर अपनी समस्या है. और उसका समाधान रहा हुवा है चिंताके चिंतनमें -

चिन्ताकापि न कार्या निवेदितात्मभि: कदापीति।
भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीं च गतिम्।।

(नवरत्न : १)

वास्तवमें तो यह चिंता न करनेका उपदेश नहीं है बल्कि चिंतन करनेका उपदेश है. चिंतन और चिंतामें एक ही मानसिक क्रिया होती है. लेकिन जो मानसिक क्रिया, समस्या हो तो वह चिंता बनती है और समाधान हो तो वह चिंतन बनता है. एक उद्वेगजनिका है और दूसरी उद्वेगनिवारक. एक उद्वेगरूपा है तो दूसरी अनुद्वेगरूपा. एक तुम्हें अशांत बनायेगी जबकि दूसरी शान्त. अतएव चिंतन विचार विवेक कि धैर्य कि आश्रयसे जनित होता है. चिंतन समाधानरूप होता है. जैसे हम अपने छोटे बच्चेका वजन उठा सकते है अत: वह सुखद रूप लगता है लेकिन जब उठा नहीं सकते तो वह दु:ख कि समस्या बन जाता है. अतएव श्रीमहाप्रभुजी चिंतनका उपदेश देते हैं कि कोई भी

चिंता तुम्हे होती हो तो उस समय किस प्रकारके चिंतनसे तुम्हारी समस्याका समाधान होगा. यह समाधान फेंक देनेका नहीं होता. हम **चिन्ताकापि न कार्या**को रट लें तोतेकी तरह और जब चिंता हो तब नवरत्नके नौ पाठ करो और बादमें नौ पाठोंसे चिंता दूर न होती हो तो ९० पाठ करो और ९० पाठोंसे चिंता निवृत्त न हो तो ९९० पाठ करो! क्योंकि नौ तो पूर्ण संख्या है और चिंता अपूर्णताके कारण होती है. अतएव **चिन्ताकापि न कार्या** उपदेशका इस प्रकार ढिंढोरा पिटता है. अरे! यह तो सबसे बड़ी चिंता हो गई. इतने सारे पाठ क्यों कर रहे हो? इसके बजाय एक बार अच्छी तरहसे उपदेशका मर्म क्यों नहीं समझ लेते कि किस प्रकारके चिंतनका उपदेश इसमें देनेमें आ रहा है, तो तुम्हारी चिंता दूर हो जायेगी. क्योंकि चिंतन यह समाधान है और चिंता यह समस्या है. चिंतनको अच्छी तरहसे संभाल लेना चाहिये. ऐसे तोतेकी तरह पाठ करके केवल समय बरबाद मत करो. बरबाद करनेकेलिये नहीं है. अतएव इस नवरत्नका विचार हम आगे जाकर करेंगे. इन्ट्रोडक्शनमें अभी मुझे थोड़ा और अधिक बोलना है और बाकीके श्लोक भी कल लूंगा ऐसा मुझे विश्वास है.

नवरत्न, अन्त:करणप्रबोध, विवेकधैर्याश्रय ग्रंथोंमें वर्णित चिंताके विषयकी आन्तरिक संगति :

नवरत्न, अन्त:करणप्रबोध और विवेकधैर्याश्रय किशोरबोधके ग्रन्थ हैं. एक बात ध्यानसे समझो इन तीनों ग्रंथोंमें मूलत: चिंताके ऊपर काबू कैसे पाया जाये उसके ही उपाय उपदेशित किये गये हैं. नवरत्न अगर सूत्र हो तो विवेकधैर्याश्रय उसका भाष्य है. नवरत्न अगर एक नियम हो तो अन्त:करणप्रबोध इसका उदाहरण है. जैसे अपने कहने में आता है **यत्र यत्र धूम: तत्र तत्र व◊** जहां जहां धुआं होता है वहां वहां आग होती है. तो फिर अपनेको लगता है कि देखो तो जरा धुआं कहां है और उसके साथ अग्निका साहचर्य कहां होता है?

इसका कोई उदाहरण तो हमें बताओ. फिर कोई हमें दो चार दृष्टांत कि उदाहरण दे कि रसोईघरमें धुआं होता है वहां आग होती है. अतएव जहां जहां धुआं होता है वहां आग होती है. तदानुसार श्रीमहाप्रभुजीने **चित्तोद्वेगं विधायापि हरिः यद्यत् करिष्यति तथैव तस्य लीलेति मत्वा चिन्तां द्रुतं त्यजेत** (नवरत्नः८) यह उपदेश दिया है.

महाप्रभुजी ऐसी आज्ञा नहीं करते कि तुम पुष्टिमार्गीय हो गये इसलिये उद्वेग मत करो. क्योंकि उद्वेग तुम नहीं करते हो परन्तु उद्वेग हो जाता है. तुम जो करते हो उसकी मनाहीकी जा सकती है. तुम बैठे हुवे हो तो मैं तुम्हें खड़ा होनेकी बात कह सकता हूं. तुम खड़े हो तो तुम्हें बैठनेके लिये कहा जा सकता है. लेकिन जो तुम कर ही नहीं सकते और उसे करनेका उपदेश तुम्हें दिया जाये तो उसका कोई अर्थ ही नहीं है. जो स्वाभाविक रीतिसे हो सकता हो उसे करना हो कि न करना हो किसीको, किसी भी प्रकार विधि-निषेधात्मक उपदेश सार्थक नहीं होता. अतएव उद्वेग जो हो रहा है वह तो होगा ही. जो बात महाप्रभुजी इसमें कहना चाह रहे हैं वह यह कि उद्वेगसे प्रकट होती चिंताओंको छोड़ दो, अथवा उद्वेगको इतना मत तानो कि यह चिंताका रूप धारण करले अथवा चिंता इतनी अधिक भी मत करो जिससे कि तुम्हें अंतमें उद्विग्न होना पड़े. यह बात महाप्रभुजी नवरत्नमें समझाना चाह रहे हैं. तब उसका उदाहरण क्या? **चढ़ जा बेटा सूलीपे भली करेंगे राम.** ऐसा श्रीमहाप्रभुजीने नहीं किया. महाप्रभुजी कहते हैं कि जिस कामको करनेके लिये मैं भूतलपर अवतीर्ण हुवा हूं, जिस कामको करनेकी प्रभुने मुझे आज्ञा दी है उस कामको करनेकेलिये नहीं करनेके लिये प्रभु अगर मुझे ना करते हैं जिससे कि मेरे अवतारका सारा प्रयोजन फाल्सीफाई होता हो, बेकार होता हो, और प्रभु मुझे आज्ञा करें कि **देहदेशपरित्यागः तृतीयो लोकगोचरः** (अन्तःकरणप्रबोध : ६) तो मुझे चिंता करनी अथवा

नहीं? कहते हैं कि नहीं **अन्तःकरण मद् वाक्यं साधनतया श्रणु! कृष्णात् परम् नास्ति दैवं वस्तुतो दोषवर्जितं समर्पणाद् अहं पूर्वम् उत्तमः किं सदा स्थितः! का ममाधमता भाव्या पश्चात्तापो यतो भवेत्** (अन्तःकरणप्रबोध : १-३)

महाप्रभुजी डिमोन्स्ट्रेट् करके बता रहे हैं कि इस प्रकार चिंता छोड़ सकते हैं **लौकिकप्रभुवत् कृष्णो न द्रष्टव्यः कदाचन आज्ञैव कार्या सततं स्वामिद्रोहो अन्यथा भवेत्** (अन्तःकरणप्रबोध : ४)

देखो फिरसे यही सिच्युअेशन् क्रियेट् हो रही है. जो कुछ तुम्हारे अपराध हुवे **अज्ञानाद् अथवा ज्ञानात्** वे फिरसे न हों उसकी सावधानी रखना अच्छा या हुवे अपराधकी चिंता करते रहना अच्छा? अतएव श्रीमहाप्रभुजीके अपने सन्दर्भमें देखें तो आपश्री कहना चाह रहे हैं कि मैंने पुष्टिप्रभुकी आज्ञा मानी नहीं. क्योंकि प्रभुने मुझे आज्ञा दी थी कि तुम भूतलपर स्वयंको प्रकट करो और भागवतका अर्थ प्रकट करो. और इस अर्थको पकट करनेकेलिये मैं प्रकट होकर भागवतका वास्तविक अर्थ प्रकट कर रहा था तो वहां प्रभुने अचानक आज्ञा दी **अब बस करो, अब अधिक प्रकट मत करो, वापिस आ जाओ.** मैंने आज्ञाका उल्लंघन किया, सिद्धान्तकी दृष्टिसे प्रभुकी आज्ञाका उल्लंघन कितना बड़ा दोष. अब उल्लंघन तो कर दिया अतएव अब प्रभुने अधिक स्ट्रोंग-वर्डेड् आज्ञा दी **लोकगोचरो देह-देश परित्यागः** देह और देशका परित्याग करो. अब जब लोकगोचर देह देशका परित्याग करना है तो उसकेलिये चिंता करनी कि नहीं ? प्रभु स्वयं कभी तो एक आज्ञा करते हैं तो कभी दूसरी आज्ञा किस कारण करते हैं? अतएव किसी प्रकारकी चिंता अन्तर्द्वन्दवाणी इस परिस्थितिमें खड़ी हो रही है.

ये ही प्रकार नवरत्नमें भी आगे आयेगा कि **सेवाकृतिर् गुरोः आज्ञा बाधनं वा हरीच्छया** सेवा करनी है तुम्हारे गुरुकी आज्ञानुसार और हरि जो इच्छा करें तो तुम गुरु आज्ञाका बाध भी कर सकते हो. अब प्रभुने जब प्रथम आज्ञा दी कि तुम भागवतका अर्थ प्रकट करो तो ये गुरुभावसे दी गई आज्ञा थी. उस गुरुभावसे आज्ञा प्राप्त करके भागवतका मुख्य तात्पर्य प्रभुसेवामें और भागवतका अर्थ मैं प्रकट कर रहा हूं. उसमें अचानक दूसरी आज्ञा आ पड़ी **नहीं, समेटो, सब बंद करो.** अब यह गुरुभावकी आज्ञा कि प्रभुभावकी आज्ञा है? किस प्रकार निर्णय करना? कौनसी आज्ञा पालनी? कौनसी आज्ञा नहीं पालनी? अतएव प्रारम्भमें महाप्रभुजीने नहीं पाली. अन्तमें महाप्रभुजीने निर्णय लिया **प्रौढापि दुहिता यद्वत् स्नेहाद् न प्रेष्यते वरे तथा देहे न कर्तव्यं वरः तुष्यति नान्यथा.** (अन्तःकरणप्रबोध : ८) प्रभु आज्ञा दे रहे हैं तो चलो **देह देश परित्यागः तृतीयो लोकगोचरः** भी मैं कर दूंगा.

अतएव नवरत्नमें नियम केवल उपदेश देनेके लिये कहे नियम नहीं हैं. महाप्रभुजीने स्वयं इन नियमोंको जी कर एवं पालकर दिखाया हैं. अब तुमको किसकी चिंता होती है? षोडशग्रंथमें इनको जुड़वानेका मुख्य हेतु यह है कि महाप्रभुजी इन नियमोंको तुमको भी समझाना चाहते हैं.

मेरे दिमागमें थोड़ी खराबी है अतएव फिरसे मुझे एक बात याद आ गई. किसीके साथ मेरी चर्चा हो रही थी कि भाई! सिद्धान्त तो इतने सारे हैं. तो उसने कहा कि सिद्धान्त इतने सारे हैं लेकिन अब सारी परिस्थिति बदल गई तो करना तो क्या करना? मैंने कहा करना कुछ नहीं लेकिन कमसेकम कह तो सकते हैं कि वास्तविक सिद्धान्त क्या हैं. तो उन पू.पा.गो. बालकने मुझे कहा **अच्छा! अच्छा! अब मैं बिल्कुल ठीकसे समझा कि अपने सिद्धान्त केवल कहने भरकेलिये हैं. मैं तो ऐसा समझ कर दुखी हो रहा था कि वास्तविक सिद्धान्त**

कबूल लेंगे तो उन्हें पालनेकी जिम्मेदारी भी हमारे गले पड़ेगी. तो एक बात समझो सिद्धान्त महाप्रभुजीने खाली कहने भरकेलिये नहीं कहे परन्तु व्यवहारमें लानेकेलिये दिये हैं. इससे अधिक विडम्बना जीवनमें और क्या हो सकती है कि जो काम लेकर कोई आये उसे कामकी आज्ञा देने वाला ना कर दे कि अब तुम्हें यह काम नहीं करना. चलो बंद करो यह सब और यहां वापिस आ जाओ. ऐसी आज्ञाको भी झेलनेका माद्दा श्रीमहाप्रभुजीने करके दिखाया है. जबकि आज हमलोग ऐसे कह रहे हैं कि बड़े लोगोंके समयसे आती हुई जनतामें व्यापारिक हवेलीयोंकी परम्परा हम लोग कैसे छोड़ सकते हैं? इसका अर्थ ऐसा कि चाहे तो ठाकुरजी परसे अपना हक जाता हो तो जाओ उसमें कोई कष्ट नहीं. यह तो ऐसी बात हो गई कि जैसे कोई स्त्री ऐसा कहे कि जिस घरमें मुझे मेरे माता पिताने कन्यादान करके रहनेको कहा तो वह घर मैं क्यों छोड़ूं? पति छूटता हो तो छूट जाये! लेकिन श्रीमहाप्रभुजी इससे विपरीत आदर्श प्रकट कर रहे हैं **प्रौढापि दुहिता यद्वत् स्नेहाद् न प्रेष्यते वरे तथा देहे न कर्तव्यः** यह देह मुझ प्रभुने सौंपी है. जिस कामकेलिये दी है, जितने समय काम लेना था लिया. अब जब ना कर रहे हो कि नहीं चाहिये यह कामकाज. उस कामको बंद करनेकी भी तैयारी अपनी होनी चाहिये.

महाप्रभुजीने इसके लिये कितनी स्ट्रगल करी है. घरमें ठाकुरजी बिराजते हों तो सन्यास लेने जैसा है? गुसांईजीके प्रसंगमें इसका बहुत सुंदर मधुर प्रसंग आता है. ठाकुरजीकी सामिग्रीमें कुछ गड़बड़ होनेके कारण श्रीगुसांईजीको इतनी अधिक ग्लानि हो गई कि आपश्रीको घरके प्रति वैराग्य उत्पन्न हो गया. स्वयं संन्यास लेनेको तैयार हो गये. ऐसे गार्हस्थ्यको निभानेसे क्या फायदा जिसमें प्रभुका सुख न निभता हो. गिरधरजीको आज्ञा दी **तुम मेरे कपड़े भगवे रंगमें रंग दो और मैं संन्यास लेकर जाता हूं.** तब श्रीनवनीतप्रियाजीने कहा **लो मेरे तनिया भी**

भगवा रंगमें रंग दो. क्योंकि तुम्हारे भरोसे तो मैं घरमें आकर रहा और तुम छोड़ कर जा रहे हो तो मैं कहां जाऊं? अतएव गिरधरजीने गुसांईजी के वस्त्र और श्रीनवनीतप्रियाजीकी तनिया दोनों भगवा रंगमें रंग कर सूखनेके लिये रख दी. तब इसे देखकर श्रीगुसांईजी ने कहा **नहीं! ऐसा त्याग मेरेसे नहीं हो सकता.** विदूड़ा किया विचार. नहीं! अब त्याग नहीं करना. क्योंकि नवनीतप्रियाजीको मेरे कारण संन्यास लेना पड़ रहा है!

परमेश्वर संन्यास नहीं लेता अतएव यह सारी धांधलेबाजी चल रही है. भूलेचूके यह अगर संन्यास ले ले तो **अच्युतं केशवं श्रीरामनारायणं कृष्णदामोदरम्** हो जाये सब. लिहाजा श्रीगुसांईजीको अपना निर्णय बदलना पड़ा. महाप्रभुजीके चरित्रमें एक अलग सिच्युएशन खड़ी हुई है कि घरमें ठाकुरजी बिराज रहे हैं, एक नहीं पांच पांच ठाकुरजी बिराज रहे हैं, और संन्यासका कोई प्रसंग भी नहीं था वहां. तो भी अचानक लोकत्यागकी आज्ञा हो गई. गृहस्थको देहत्यागकी आज्ञा नहीं है और गृहस्थ देहत्याग करे तो आत्मघात कहलाता है. देहत्याग बिना लोकत्याग भी कैसे सम्भव है? लेकिन संन्यासीको देहत्यागकी छूट शास्त्रने दी है. संन्यासी देहत्याग कर सकता है. इसकारण महाप्रभुजीने सबसे पहले संन्यास लिया. संन्यास लेनेके बाद आपने अन्नजलका त्याग किया. अन्नजलक त्यागके बादभी लोकगोचर देह नहीं छूटी तो गंगाप्रवाहमें जाकर आपने जलसमाधि लेली. दिखाकर बताया कि किस प्रकार आप नियमोंका अनुसरण करते थे. उदाहरणके द्वारा सिद्ध करनेकी आपकी निष्ठा, इसका एक बार विचार करोगे ना तो तुम्हारेमें भी हिम्मत आयेगी कि अपने आदर्श आचार्य कैसे हैं. हमारे आदर्श आचार्यचरण कैसे हैं वह इन नियमोंको समझा रहे हैं.

इतनी कठोर आज्ञा प्रभु हमें कोई देनेवाले नहीं हैं भाई! घबराओ नहीं! यह तो महाप्रभुजीको ऐसी आज्ञा दी है. प्रभुको

हमारी ऐसी गरज नहीं है कि हमें ऐसी आज्ञा दें. और आज्ञा दें तो वास्तवमें हमतो निहाल हो जायें. किसी दिन प्रभु हमें कहें कि इस देहको छोड़कर मेरे पास आ जावो. हम जायें कि न जायें वह अपनी विडम्बना होयगी कि **हे प्रभो! मैंने अपना सर्वस्व निवेदन आपको कर रखा है – सर्वस्वं कृष्णसात् कृतं– लेकिन ऐसी आज्ञा हमें न दो तो ही अच्छा है. क्योंकि इस घरमें बच्चोंकी सावधानी फिर कौन लेगा? आपको तो परिश्रम नहीं देना ना!** हम लोग ऐसे चालाक हैं यह बात तो प्रभु समझते ही हैं. अतएव ऐसी आज्ञा देनेमें प्रभु भी कोई रिस्क् नहीं लेंगे. अतएव **चिन्ताकापि न कार्या!**

हमें ऐसी कुछ आज्ञा प्रभु नहीं देंगे. शांतिसे रहो यह तो महाप्रभुजीने नियमको सिद्ध करनेकेलिये उस सीमा तक जाकर आज्ञा अनुसरी और तुम्हारे लिये आदर्श स्थापित कर दिया. **पश्चातापः कथं तत्र** (अन्तकरणप्रबोध : ६) अतएव महाप्रभुजीका अन्तःकरण जो समझ रहा है उसे आप कह रहे हैं **चित्तं प्रति यद् आकर्ण्य भक्तो निश्चिन्तां व्रजेत** (अन्तकरणप्रबोध : १०) अन्तःकरण प्रबोध ग्रंथमें भी अन्ततः चिंताका ही कोई प्रकरण चल रहा है. विवेकधैर्याश्रयमें भी निरंतर इस चिंताका ही प्रकरण चल रहा है. जो बात मैंने कल तुम्हें समझानेका प्रयास किया था कि जो टिपिकल टीनएजकी प्रोब्लम कि डायलेमा होता है क्या करें और क्या ना करें? मेरा क्या होगा कि नहीं होगा? क्योंकि टीनएजमें यह डायलेमा प्रत्येकको फेस करना ही पड़ता है. हमें निश्चय नहीं होता कि हमें क्या बनना है? मुझे क्या करना है? यह तीन ग्रंथ इस कारण किशोरबोधरूप ग्रंथ हैं. यह किस रीतिसे गूंथे गये हैं. एक सिस्टमरूपमें नवरत्न सूत्र है. अन्तःकरणप्रबोध इसका उदाहरण है. नवरत्नमें जो कुछ सूत्रात्मक आज्ञायें देनेमें आई हैं उसका विस्तृत भाष्य विवेकधैर्याश्रयमें किया गया है. इन किशोरबोधके तीन ग्रंथोंकी आन्तरिक संगति हमें सबसे पहले समझनी लेनी चाहियें.

बालकके स्वस्थ मानसिक विकासका सोपान [१]विश्वास फिर [२]आत्मनिर्भरता और उसके बादमें [३]आरम्भ :

उसके बाद कल बालकके स्वस्थ मानसिक विकासमें किस रीतिसे उत्तरोत्तर विकास होता है, उसकेलिये ऐरिक्सन द्वारा वर्णित गुणधर्ममें एक महत्वपूर्ण मुद्दा मैं कहना भूल गया. अब सच्ची बात कहूं कि मैं पुरुषोत्तम नहीं हूं अतएव मुझे लगा कि आज फिर कहीं भूल ना जाऊं! इसलिये आज सब लिखकर लाया हूं. पुरुषोत्तम ना होनेके कारण कल अपूर्णता रह गई थी उसकेलिये एक बार थोड़ासा संक्षेपमें फिरसे देख लेते हैं. इसमें थोड़ा समय लगेगा परन्तु लाचार हूं क्योंकि कल छूट गया था. ऐरिक्सनने जो बात बताई थी उसमेंसे कल एक बहुत मुख्य गुण कहना भूल गया था समयके कारण. सबसे पहले था विश्वास या अविश्वास; उसके बारेमें कल तुम्हें अच्छी तरहसे समझाया था कि यमुनाष्टकमें अपनी मांके साथ पहचान कराकर महाप्रभुजीने हमें जगतमें जीनेकेलिये जो कुछ अविश्वासका फेक्टर है वह सब दूर कर दिया है **यमोऽपि भगिनी सुतान् कथमुहन्ति दुष्टानपि प्रियो भवति सेवनात् तव हरेः यथा गोपिकाः... तवाष्टकम् इदं मुदा पठति सूरसूते सदा समस्तदुरितक्षयो भवति वै मुकुन्दे रतिः तया सकल सिद्धियो मुररिपुश्च सन्तुष्यति** (यमुनाष्टकम् : ६-९) यह वचन, विश्वासके उद्बोधन द्वारा अविश्वासकी हमारी कमजोरीको दूर करनेके लिये हैं. बालबोधमें भी फिरसे आप स्वयंको पहचानना बताते हैं. औब्जेक्टिवली उसके लिये कोई ऐसा स्वरूप दिखाया. छोटा बच्चा जैसे औब्सर्व कर सकता है वैसे. इसके बाद ऐरिक्सनने एक बहुत सुंदर बात बताई है, जब बच्चेमें विश्वास पैदा हो जाता है तब विश्वासके बाद आत्मनिर्भरता प्राप्त करनेके लिये आगे बढ़ता है. आत्मनिर्भरताका अर्थ तुम समझो. जैसे हरेक घरमें, हरेक परिवारने यह बात ऑब्सर्व करी होगी कि जन्मनेके बाद बच्चा सबसे पहली वस्तुके तौरपर अपनी मांको पहचानने का प्रयास

करता है. और वैसा विश्वास प्राप्त करनेके बाद दूसरा स्टेप आत्मनिर्भरताका कहा गया था अतएव बच्चा अपनी गरदन ऊंची करके देखनेका प्रयास करता है. उलटा होकर पलटनेका अभ्यास करता है, जब इसे पलटना आ जाता है तो फिर चलनेका, घिसटनेका अभ्यास करेगा, हरेक बातमें यह अपनी आत्मनिर्भरताका प्रयास और उपाय करेगा. चलनेमें भी यह एकदम चल नहीं सकता लेकिन घुटनोंपर चलेगा और फिर किसी वस्तुका सहारा लेकर खड़े होनेका प्रयास करेगा. जो बात एक बच्चा अपने प्रयासपूर्वक निरंतर डेवलप् करता है वह है उसकी आत्मनिर्भरता. बोलनेकी प्रक्रिया भी बच्चा आत्मनिर्भरताके रूपमें ही प्रकट करता है. तुम जैसे बोलते हो वैसा नहीं बोल सकता लेकिन आत्मनिर्भरताका प्रयास तोतला बोलकर अगडं बगडं शब्दोमें बोलकर बच्चा निरंतर अपनी आत्मनिर्भरताका प्रयास करता है.

आत्मनिर्भरताका प्रयास सफल न होनेपर लज्जा और अनिश्चय :

कल हमने इतना तो देख ही लिया था कि जो ऐरिक्सनने कहा कि जब कोई बच्चा विश्वास प्राप्त न कर सके तब आत्मनिर्भर भी नहीं हो सकता. मैंने कल तुम्हें कहा था कि जिस बच्चेमें आत्मनिर्भरता नहीं होती वह बच्चा कहीं न कहीं लज्जा अथवा अनिश्चयकी स्थितिमें जीता होता है. कैसे? उदाहरणके तौरपर एक बात समझो कोई बालक फिसीकली इतना कमजोर है कि शारीरिक दृष्टिसे यह गरदन नहीं उठा सकता अथवा पैरोंसे चल नहीं सकता, घुटनोंसे भी नहीं चल सकता अथवा बोल भी नहीं सकता. तब इसमें आत्मनिर्भरता प्रकट नहीं होती. किसी भी प्रकारकी शारीरिक या मानसिक खराबीके कारण कोई बच्चा आत्मनिर्भरता प्राप्त नहीं कर सकता. तब यह किसी प्रकारकी लज्जा या किसी प्रकारका अनिश्चय अनुभव करता है. सब तो ऐसे कर रहे हैं मैं ऐसा

क्यों नहीं कर सकता! स्वाभाविक रीतिसे बच्चेको लज्जा आ जाती है. और स्वाभाविक रीतिसे जगतको देखनेकी इसकी दृष्टिमें भी अनिश्चय हो जाता है. जिस बच्चेमें आत्मनिर्भरता नहीं खिलती वह बालक कोई भी शारीरिक मानसिक खराबी कि गलत ढंगसे पनपनेके कारण ऐसी तकलीफ पाता है. इस कारण लज्जा और अनिश्चय आत्मनिर्भरताके विपरीत है.

मेरी बड़ी लड़की चि. दिवाके दूसरे बाबाको बोलनेमें कोई तकलीफ है. वह हमारे यहां आया. घंटी बजे और मैं पूछूं **कौन?** तो इसे बोलनेमें अपनी आत्मनिर्भरताके प्रयासरूपमें बोलनेमें कुछ तकलीफ थी तो भी जब भी घंटी बजे तब जोरसे बोले **तुम तौन?** मैंन दो तीन बार सुना कि तुम तौन? तुम तौन? करता है अतएव मैंने भी इसे चिढ़ानेके लिये पूछा **तुम तौन?** तो इसने मुझसे पूछ ही लिया **तुम कोई बत्ते हो?** अब मुझे लज्जा आ गई. मैंने कहा **यह तो लफड़ा हो गया.** यह बोल नहीं सकता इसका इसे भान है. लेकिन इसे आत्मनिश्चय ह कि मुझे बोलना है और दूसरेको ऐसी रीतिसे नहीं बोलना. कोई ऐसी चूं चां करे तो फिर पूछ लेनेकी हिम्मत भी है **तुम क्या बच्चे हो?** अतएव इसे पता है कि मैं बच्चा हूं इसलिये बोल नहीं सकता तो कोई बात नहीं. कभी बोल लूंगा लेकिन तुम बड़े होकर इस प्रकार कैसे बोल रहे हो? समझमें आई कि बच्चेमें आत्मविश्वासकी क्वालिटी कैसी होती है. मैं तो उसे लज्जित करना चाह रहा था लेकिन मेरे दोहित्रने मुझे ही लज्जित कर दिया! इसका तात्पर्य यह गॉरन्टी कि इसमें आत्मविश्वास भरा पड़ा है. इसे शब्दका उच्चारण ठीकसे पता है तुम कौन? इसका बिल्कुल निश्चय है. निश्चय पक्का है कि जब भी घंटी बजे तब तुम कौन? पूछना चाहिये. यह खुद तुम कौन? बोल नहीं सकता, बच्चा होनेके कारण, लेकिन इसका इसे भली भांति ज्ञान है. अतएव यह अपने नानाको कह देनेकी हिम्मत भी रखता है कि तुम कोई बच्चे हो? मैंने कहा अब मैं समझ गया.

पुष्टिमार्गीयोंकी लज्जा और अनिश्चयको श्रीमहाप्रभुजीने सिद्धान्तमुक्तावलीमें दूर किया :

यह दूसरी क्वालिटी है और यह क्वालिटी महाप्रभुजीने हमें सिद्धान्तमुक्तावली ग्रंथमें दी है **तत्सिद्धयै तनुवित्तजा** तुम्हारा तन, तुम्हारा वित्त, तुम्हारा मन भी जैसे जैसे सरल प्रकारसे प्रयोगमें लाया जा सके वैसे वैसे, चाहे वह तोतली बोली ही क्यों न हो, जैसी हो वैसी निवेदन करते जाओ. तुम तौन करने लगो और काम चालू हो गया. कोई तुम्हें ऐसे लज्जित करना चाहता हो कि तुम अपरस नहीं पालते तो तुम्हारी सेवा पुष्टिप्रभु किस प्रकार अंगीकार करेंगे? तुम्हारे पास इतने पैसे कहां है, तुम तुम्हारे ठाकुरजीको मठड़ी भोग धर सको; तो फिर तुम भी उनसे यह पूछलो कि तुम क्या बत्ते हो? फिर सब बात सुधर जायेगी. और अपनेको भी समझमें आ जायेगी कि यह समझ गया कि मैं गो.बा. हूं. बालकको बालकतया मूर्ख होनकी वास्तविकता रियलाईज् करा देनी चाहिये कि तुम तोई बत्ते हो? अतएव ऐसे क्यों बोल रहे हो? फिर तुम्हारा लज्जाका भाव, अनिश्चयका भाव दूर हो जायेगा. उसे सिद्धान्तमुक्तावली ग्रंथमें श्रीमहाप्रभुजीने कैसे दूर किया है : **तत्सिद्धयै तनुवित्तजा... ततः संसार दुःखस्य निवृत्तिः ब्रह्मबोधनम्.** महाप्रभुजी यह नहीं कहते कि तुम तुम्हारे घरमें जिसकी सेवा करते हो वह परब्रह्म पुरुषोत्तम नहीं है. यह तो हमारे ही घरमें बिराज सकते हैं कि मेरे वंशज केवल गोस्वामी बालकोंकी मोनोपोली है. महाप्रभुजी जब **परं ब्रह्मतु कृष्णोहि** कह रहे हैं तो प्रत्यक सेवाकरने वालेकेलिये कह रहे हैं.

पुष्टिमार्गीयका स्वस्थ विकास (आत्मस्वरूपबोध) केलिये जरूरी [४]उद्योग, [५]आत्मनिर्धार, [६]घनिष्ठता, [७]सृजनशीलताका षोडशग्रंथोंमें विचार :

(४) **उद्योग** :

अब उसके बाद जो बात आई वह थी उद्योग या उद्यमकी. उद्यम अर्थात् प्रयास करना. जिस बातको हम शुरु ही नहीं करते उसकेलिये अपराधबोधसे ग्रस्त हो जाते हैं. आज ध्यानसे समझो पुष्टिमार्गकी कोई समस्या है, अथवा हम पुष्टिमार्गीयोंकी जो कुछ समस्या है वह है आरम्भ करनेकी. जैसे गाड़ीको चलानेकेलिये पहले गियरमें डालना पड़ता है तो उस पहले गियरको ही ताड़ डाला है. इसके दांतोंको ठीक तरहसे नहीं फंसायेंगे तो गाड़ी आरम्भ ही नहीं हो सकेगी. पहले गियरमें आयेगी तबही तो टौप् गियरमें जाकर भागेगी.

कोई एक वैष्णव होगा पाखंडी. मैं ना नहीं कहता. क्योंकि कोई भी मनुष्य पाखंडी हो सकता है. मैं भी पाखंडी हो सकता हूं. पाखंडी होना यह कोई बड़ी उपलब्धिकी बात नहीं है. यह तो सहज बात है. सांस लेते हैं उस प्रकार मनुष्य भी पाखंडी हो सकता है. तो एक वैष्णवको ऐसी आदत थी कि प्रसंग-अप्रसंग, आवश्यक-अनावश्यक, निरंतर भगवद्‌चर्चा करता रहे. तो कोई गोस्वामी बालक इसके घर पधारे. इसने भगवद्‌चर्चा छेड़ी. गोस्वामी बालकने तुरन्त यह मान लिया कि यह मनुष्य महान पाखंडी है. व्यर्थमें भगवद्‌चर्चा करता है. अब पाखंडीका पाखंड निवृत्त कैसे करना तो किसीने कोई एक गेम इसके सामने रख दिया. इसकी भगवदचर्चा छुड़ाकर अपने साथ खेलमें शामिल कर लिया. अब एक बात समझो कि भगवदचर्चा आरम्भ करनेका जो माद्दा था वह कदाचित पाखंडसे होगा लेकिन तोड़ तो दिया ही कि नहीं. आज हम गोस्वामी बालक इस बारेमें गौरव समझते हैं कि फलाने भाईको भगवदचर्चासे छुड़ाकर खेलमें शामिल हमनें कर दिया. हम इसमें गर्व ले रहे हैं और महाप्रभुजीके सूरदासजीकी वार्ता पढ़ो तो तुम्हें ध्यान आयेगा कि जो ऐसी चर्चा कर रहे थे, उन्हें महाप्रभुजीने भगवदचर्चा करते हुवे किया कि नहीं? जो चौपड़का गेम खेल रहे थे उन्हें, सूरदासजीने भगवत्सेवा करते हुवे किया कि नहीं? किया इसलिये

कि यह एक दूसरे प्रकारका आरम्भ था. हम वैष्णवोंसे एक दूसरे प्रकारका अभिगम रखते हैं. कोई कुछ करना चाहता है तो उसे तोड़ डालो. प्रवचन करता हो तो उसे कहो कि यह पाखंडी है, भगवदीय बनना चाहता है, प.भ. बनना चाहता है. घरमें सेवा करता है तो ऐसे कह दो कि तू क्या अपने आपको दामोदरदासजी संभलवाले समझता है? दामोदरदासजी हरसानीने भी तो सेवा नहीं करी तो भाई तू सेवा क्यों करने लगा? बात हो गई न कि किसीको आरम्भ ही मत करने दो. आरम्भ करेगा तो ही तो आखिर तक पहुंचेगा! आरम्भमें ही तोड़ दो. कुऐंके जल बिना सेवा हो ही नहीं सकती, कुऐंके जल बिना सेवा करो तो ऐसे ठाकुरजी पुरुषोत्तम ही नहीं कहलाते! तो अब आरम्भ करोगे ही कैसे? तुम आरम्भ नहीं करोगे अतएव सारी जिन्दगी तुम्हें अपराधबोधसे ग्रस्त रहना पड़ेगा. **भगवद्सेवार्थ तत्सृष्टि: नान्यथा भवेत्** यह सृष्टि तो भगवद्रूपसेवाके लिये है और मैं तो सेवा कर नहीं सकता. क्योंकि कुआ तो खुदवा नहीं सकता. कुआ खोदें तो भी इसमें गटरका पानी ही मिलता है. अरे गटरका पानी क्या वैष्णवोंके घरमें ही फूटता है, हमारे व्यापारिक मंदिरोंमें नहीं फूटते क्या? हमारे मंदिरोंम भी गटर फूटते हैं. गटर सब जगहोंपर फूटते हैं. कहां नहीं फूटते और उस गटरके पानीसे झारी भरते हैं लेकिन सेवा करते हुवे हम कभी पीनेके जलकी तरह झारीके जलका प्रयोग नहीं करते. नलमें कमसे कम गटरका पानी तो नहीं फूटता. लेकिन आरम्भ ही मत करने दो, पहले गीयरम गाड़ी जाये ही नहीं. कोई न कोई खराबी बता दो. तुम्हारे घरमें बिराजते ठाकुरजी पुरुषोत्तम नहीं हैं इसलिये जो तुम सेवा कर रहे हो वह पुरुषोत्तमकी सेवा ही नहीं है. पहले ही गीयरमें लफड़ा हो गया ना! अब किस प्रकार करोगे यह महाप्रभुजी तुम्हें आश्वासन देते हैं. **तथा निवेदने चिन्ता त्याज्या श्रीपुरुषोत्तमे। विनियोगऽपि सा त्याज्या समर्थोहि हरिः स्वतः।।** (नवरत्न : ५)

हम लोगोंको सावधानीके तौर पर ऐसा कहना चाहते हैं कि पुरुषोत्तम तुम्हारे यहां हो तो **चिंता त्याज्या**! तुम्हारे यहां तो पुरुषोत्तम ही नहीं हैं. तो फिर तम्हारे अर्थात् वैष्णवोंके यहां कौन है? पुतला है, पत्थरका, धातुका? एक बार बोलकर तो बताओ ना यह बात. अब ऐसे बोल भी नहीं सकते कि तुम्हारे यहां क्या है कहते हैं ना, ना, वैष्णवोंके घरमें पुरुषोत्तम नहीं बिराजते गुरुस्वरूप ठाकुरजी बिराजते हैं. यह तो बहुत आनन्दकी बात हो गई. क्योंकि सब वैष्णवोंको ऐसा समझानेमें आता है कि गुरुको साक्षात् पुरुषोत्तम मानना चाहिये. तो ऐ=बी, बी=सी, तो ऐ=सी, हो गया ना फिर. अर्थात् ऐ=तुम्हारे घर बिराजते स्वरूप, बी=पुरुषोत्तमरूप गुरु, और सी=साक्षात् पुरुषोत्तम. तो बात समझमें आई कि नहीं? वैष्णवोंको कह देनेमें आता है कि तुम्हारे यहां तो पुरुषोत्तम नहीं हैं. पुतला कह सकते नहीं. क्योंकि ऐसी बात कहनेके लिये हिम्मत चाहिये समझे! जैसे कबीरमें हिम्मत थी अतएव उसने कह दिया: **पाथर पूजे हरि मिले तो हों पूजों पहार। ताते तो चाकी भली जो पीस खाये संसार।।**

अर्थात् पत्थर पूजनेसे अगर हरि मिलते हों तो मैं पहाड़को जाकर पूजूंगा. लेकिन मैं तो यह समझता हूं कि युटिलिटिवाईस् अर्थात् उपयोगिताके सिद्धांतकी तुलनामें पत्थरके बजाय गेहुं पीसनेकी जो चक्की है वह अच्छी. कुछ काम तो आती है. यह पत्थरकी मूर्ति तो कुछ काम आती नहीं. यह सिद्धान्त हो तो फिर समझमें आ जाता है कि पुरुषोत्तम घरमें नहीं हैं. ऐसे कह नहीं सकते क्योंकि यह तो अपने ठाकुरजीके ऊपर भी लागू पड़ेगा. अतएव एक बीचका मार्ग ढूंढ निकाला गया कि वैष्णवोंके घरमें पुरुषोत्तम नहीं बिराजते परन्तु गुरुभावसे ठाकुरजी बिराजते हैं. मैं तो कहता हूं कि वैष्णवों ! इस बातको ठीकसे पकड़ लो कि हां सच्ची बात कही. परन्तु गुरु पुरुषोत्तम होता है कि नहीं! अतएव एक बात समझो, ग्रंथोंको पढ़ोगे तो तुम्हें हरेक बात समझमें आ जायेगी. नहीं तो तुम्हें उल्टा ही

पढ़ा दिया जायेगा. और तुम इसे रट लोगे. ग्रंथ पढ़ो. श्रीमहाप्रभुजीने क्या आज्ञा करी है उसे पढ़ो. हरेक वस्तु हाथमें धरी वस्तुके समान स्पष्ट हो जायेगी. और जो गुरुभाव स्वीकार किया तो फिसल जाओगे. क्योंकि हम गो.बालकोंमें **हम पुरुषोत्तम नहीं हैं** यह माननेकी भो हिम्मत नहीं है. स्वयंको तो फिर पुरुषोत्तमके तौर पर खपाना है. फिर चिंताकी बात ही कहां रही?

बालकोंको अपने घर पधरावनीका लालच देकर बुलाओ. फिर पूछो कि आप हमारे यहां तो दूधघर तो आरोगोगे कि नहीं? आरोगानेके बाद धीरेसे उस बालकसे पूछो कि आप केवल दूधघर ही आरोगते हो तो आपको पुरुषोत्तम मानना कि नहीं? अगर नहीं, तो ऐसा कह सकते हो कि सखड़ी आरोगे वह ही पुरुषोत्तम और दूधघर आरोगे तो वह पुरुषोत्तम नहीं. तो इनसे विनतीं करो कि कृपानाथ! आप सखड़ी आरोगो, आप तो साक्षात् पुरुषोत्तम हो. कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथा कर्तुम् समर्थ हो. अरे आपको क्या बंधन आ गया हमारे घरमें सखड़ी आरोगनेमें. फिर तो सारी बात लाईन ऊपर आ जायेगी. क्योंकि स्वयं सखड़ी आरोगे तो स्वयंकी हवेलीयोंमें बिराजते ठाकुरजीको सखड़ी आरोगवानेकी छूट वैष्णवोंको देनी पड़ेगी. अर्थात् भीतर घुसने ही न दे केवल झांकी कराकर ही तुम्हें ललचाते रहते हैं उसका परदा खुल जायेगा.

ठीक ट्रेकपर तुम्हें यात्रा आरम्भ ही नहीं करने देते इसलिये दिक्कत आती है. आरम्भके बाद उद्यमका जो पहलू है वह तुम्हारेमें भरी हुई हरेक प्रकारकी लघुग्रंथिताको दूर कर देगा.

(५) <u>आत्मनिर्धार</u> :

तुम्हारेमें आत्मनिर्धारका मतलब कि तुम कौन हो? जिस प्रकारका तुम उद्यम करोगे उस रूपमें तुम अपने व्यक्तित्वको पहचानोगे. गांवमें तुम्हारी कैसी पहचान है गरज उसकी नहीं है. श्रीमहाप्रभुजीने पुष्टिप्रवाहमर्यादा ग्रंथमें स्पष्ट आज्ञा करी है **लौकिकत्वं वैदिकत्वं कापट्यात् तेषु नान्यथा वैष्णवत्वंहि सहजम् ततो अन्यत्र विपर्यय:** (पुष्टिप्रवाहमर्यादा : २०)

अतएव गांवमें तुम कदाचित वैष्णवके तौर पर न पहचाने जाते हो तो इसमें कोई तकलीफ नहीं है. कोई जरूरत नहीं है कि हम अपने गांवमें अपनी पहचान वैष्णवके तौरपर ही करवावें. लौकिक वैदिक हैं ना उनके द्वारा अपनी पहचान बनाओ. लेकिन तुम तुम्हारी पहचान वैष्णवके तौरपर करवा रहे हो या नहीं यह मुख्य मुद्दा है. **वैष्णवत्वं हि सहजं** तुम जो सांस ले रहे हो ये विष्णुकी सांस ले रहे हो कि नहीं? विष्णुकी व्यापकताका सांस ले रहे हो कि नहीं? **को ह्येव अन्यात् क: प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्** ऐसे विष्णुकी व्यापकतामें तुम सांस ले रहे हो कि नहीं? ले रहे हो तो तुम सहज वैष्णव हो, हो और हो, ऐसा तुम्हें आत्मनिर्धार होगा. यह आत्मनिर्धार महाप्रभुजीने पुष्टिप्रवाहमर्यादा ग्रंथमें हमको उपदेशित किया है. कल मैंने जो तुमको बताया था कि जब तुम्हारा आत्मनिर्धार होगा तब तुम्हें तुम्हारा आत्मीय कौन है उसे पहचाननेमें देर नहीं लगेगी. कल मैंने एक श्लोक सुनाया था तुम्हें याद हो तो **मृगा: मृगै: संगम् अनुव्रजन्ति गावोश्च गोभि:** ऐसे तुम तुम्हारी पहचानको पहचानोगे तो तुम्हें अपने आत्मीयोंको पहचाननेमें जरा भी कष्ट नहीं होगा. लेकिन अगर तुम अपने आपको ही नहीं पहचान सके तो तुम्हारा आत्मीय कौन है उसे कैसे पहचान पाओगे? फिर **निवेदनन्तु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशै: जनै:** जब तुम अपने आपको ही नहीं पहचान पा रहे तो कौन तादृशी भगवदीय हैं, उन्हें कैसे पहचान पाओगे?

(६) <u>घनिष्ठता</u> :

पुष्टिप्रभुके साथ तुम्हारी घनिष्ठता करवानेकेलिये सिद्धान्तरहस्य कृष्णाश्रय और चतु:श्लोकी जैसे ग्रंथ हैं वैसे ही पुष्टिभक्तोंके साथ घनिष्ठता करनेकेलिये भक्तिवर्धिनी और संन्यास निर्णय ग्रंथ हैं उस कारण उन ग्रंथोंमें यह घनिष्ठता दिखानेमें आई है उसे देखो **बाधसम्भावनायन्तु नैकान्ते वास इष्यते हरिस्तु सर्वतो रक्षां करिष्यति न संशयः** (भक्तिवर्धिनी). तुम्हारी घनिष्ठता करानेकेलिये संन्यासनिर्णयका उपदेश इस बातके ऊपर केन्द्रित हुवा है. जब तलक भक्तिकी हन्ड्रेड टेन् पर्सेन्ट् तुम्हें गारण्टी न हो जाय तब तलक व्यक्तिको व्यसन दशामें पहुंचनेसे पहले व्यर्थमें एकान्तसेवनकी, संन्यासकी, त्यागकी या वैराग्यकी गलत जल्दबाजी नहीं करनी चाहिये. हेस्ट् इज् वेस्ट्! यह बात ध्यानसे समझ लो. उतावला सो बाबरा, धीरा सो गंभीर इस बातका सेन्ट्रल आइडिया महाप्रभुजीने समझाया है, भक्तिवर्धिनी और संन्यासनिर्णयमें. घनिष्ठता और उसका विपरीत एकलता. मनुष्यका अकेलापन, मुझे किसीके साथ क्या लेना देना है?

हमारे जिस भाईने मुझे पत्र लिखा है उसमें उसने मुझे ये ही लिखा है. कितने चतुर भाई ह अपने पुष्टिमार्गमें. पत्र आया है दिल्ली से, हालांकि भेजनेवाला मुंबईसे मेरा पड़ोसी ही है. मुझे वास्तवमें किसी समय विश्वास ही उड़ जाता है कि मैं बेवकूफ हूं कि भेजने वाला? मैं क्यों नहीं इतना समझ सकता कि दिल्लीसे आनेवाला पत्र मेरे पड़ोसीका कैसे हो सकता है? पड़ोसीके नामसे दिल्लीसे पत्र भिजवा दिया. **तुम कौन हो सिद्धान्त कहनेवाले? तुम्हें क्या अधिकार है सिद्धान्त कहनेका? तुम तुम्हारी रीतिसे एकान्तमें सेवा करो. दूसरोंको सिद्धान्त कहनेकी गलत जल्दबाजी मत करो. तुम मानते हो कि नहीं कि यह सृष्टि भगवानने बनाई है. तो जिन्हें तम वंचक या ठग कह रहे हो ये भी भगवानके ही बनाये हुये हैं. और ऐसे भगवानके द्वारा बनाये हुओंको तुम ठग या वंचककी जब तुम**

गाली दे रहे हो, तब तुम भगवानकी सृष्टिकी निंदा कर रहे हो, और जब तुम भगवानकी सृष्टिकी निंदा कर रहे हो तब तुम भगवानकी निंदा कर रह हो. वाह भाई वाह! लेकिन भेजनेवाला, इसने मेरे पड़ोसीको बना दिया. दिल्लीसे जहांसे पत्र आया है उसमें भेजने वालेका पता होता तो मैं लिखता कि भाई मैं भी तो भगवानकी सृष्टिका हूं कि नहीं, मेरी निंदा तुम क्यों कर रहे हो? तो तुम भी तो भगवानकी सृष्टिकी निंदा कर रहे हो कि नहीं? और जब तुम खुद भगवानकी सृष्टिकी निंदा कर रहे हो तो मुझे ना क्यों कह रहे हो? मेहरबानी करके तुम पहले बंद करो, फिर मैं भी बंद कर दूंगा. तुम बंद करते नहीं और मुझे कह रहे हो! क्योंकि हमें आज, पुष्टिमार्गमें जो कोई आड़े आ रहा है वह एक ही बात है. लिख लेना सब, तुम्हारे घरमें जैसे सूक्ति टांगते हैं ऐसे ही एक सूक्ति टांग लो कि पुष्टिमार्गीओंको सिद्धान्तके सिवाय दूसरी कोई चीज अब आड़े नहीं आती. जो कुछ आड़े आ रहे हैं वह हैं खाली महाप्रभुजीके सिद्धान्त. कदम कदमपर पुष्टिमार्गमे कोई न कोई सिद्धान्त आड़े आ जाता है स्पीडब्रेकरकी तरह. परिस्थिति हमारी ऐसी हो गई है. किस कारण? क्योंकि हम लोग एकलताके पोकेटस् तैयार करना चाहते हैं. घनिष्टाका माद्दा हमारे भीतर खत्म हो गया है.

(७) <u>सृजनशीलता</u> :

अब इसके बाद आती है सृजनशीलताकी बात. सृजनशीलताका विपरीत ऐरिक्सनने कुंठा = फर्स्ट्रेशन दिया है. जो मनुष्य सृजन नहीं कर सकता वह फर्स्ट्रेट हो जाता है. एक बात ध्यानसे समझो, लगभग मैं अगर भूलता न होउं तो बीस या बाईस साल पहले मेरी आंखमें कुछ समस्या हो गई अतएव आंखके एक बड़े डाक्टर अशोक श्राफके पास आंखे दिखाने गया. उसने मेरी दाईं आंखको देखकर कहा ऐसे कहा **तुमने आंखका प्रयोग ही नहीं किया, इसलिये यह आंख देखती ही नहीं, परन्तु आंखमें कोई समस्या नहीं है.** अब आज तक इस सूत्रका भाष्य मैं नहीं कर पाया कि किस कारण मैंने

आंखका प्रयोग नही किया? लेकिन वास्तविकता यह है कि प्रभुने मुझे एक ही आंख दी है, शुद्धाद्वैत देखनेकेलिये, दो आंख नहीं दी. अतएव इस आंखसे मुझे दिखाई नहीं देता यह बात ठीक ही है. डाक्टरने इसका कारण यह बताया कि तुमने इस आंखका प्रयोग ही नहीं किया. इस कारण पहली आंखने फर्सट्रेटेड होकर देखना ही बंद कर दिया. तब जो कोई सामने आता है तो आने दो ना. चोर बनो कि मोर यहां सब चलता है तो जब हम सृजन नहीं कर सकते तब अपनेमें फर्सट्रेशन आनी स्वाभाविक है. एक साधारण बात समझो, दुकानमें बैठा मनुष्य जब अपना माल नहीं बेच पाता तो वह फर्स्ट्रेटेड हो जाता है. एक आर्टिस्ट जब चित्र नहीं बना सकता किसी भी कारणसे तो उसके भीतर फर्स्ट्रेशन आ जाती है. तुम सबने सुना ही होगा कि आजकल पिछले पांच दस सालोंमें इस फिनोमिनाके ऊपर डाक्टर लोग बहुत बड़ी चर्चा कर रहे हैं कि जब स्त्रीयोंका मासिकधर्म बंद होता है तब मेनोपोज् आता है. मूलतः क्या है यह? बायोलोजिकल फर्स्ट्रेशन है. यह मेनोपोजका मूल आंतरिक रहस्य है. यह बायोलोजिकल फिनोमिना किसी समय मन तलक पहुंच गया तो चिन्ताका विकृत रूप ले लेता है, बीमार हो जाती हैं स्त्रियां. जिनका मन तलक नहीं पहुंचता उनको कोई अन्तर नहीं पड़ता. जब भी हम सृजन नहीं कर सकते तब फर्स्ट्रेशन आनी अत्यंत स्वाभाविक बात है. जो गाड़ी चलनेके लिये है वह चल नहीं सकती अतएव कहीं न कहीं फर्स्ट्रेट हो जाती है, धुआं छोड़ती है गरम हो जाती है, पचास मुसीबतें खड़ी हो जाती हैं फर्स्ट्रेशनके कारण. यह प्रिन्सिपल् मेकेनिकली भी इतना ही सच्चा है, बायोलोजिकली भी सच्चा है और सायकोलोजिकली भी सच्चा है.

उसी प्रकार अपने भक्तिमार्गमें भी ऐसा ही सच है. जब हम अपने पुष्टिप्रभुको या अपनी विषयासक्तिको अपनी भगवदासक्तिके सृजन करनेमें सक्षम नहीं होते, किसी भी

कारणसे, तब हम पहले सर्वोद्धारक परमात्माको अपना निज उद्धारक नहीं बना सकते. तो उद्धारकके तौरपर इसका सृजन भी नहीं कर सकते. अतएव हमारा मन फर्स्ट्रेट हो जाता है कि अब हम क्या करें? इस प्रकार फर्स्ट्रेशनमें हमारा भक्तिमार्गके प्रति जो अभिगम है वह बेकार हो जाता है. जैसे हाथीके पैरके नीचे कोई खरगोश आ जाये. इस प्रकारकी दुर्गति अथवा तो बसके नीचे किसी मनुष्यका सिर आ जाये इस प्रकारकी आज अपनी स्थिति हो गई है. क्योंकि हमारा एक सर्वव्यापी परमात्मा जो सर्वत्र उपलब्ध है उसे भी हम अपना नहीं बना सके.

चिंताकी अप्रासगिकता भजनीय या आश्रयणीय श्रीकृष्णके स्वरूपविचारके आधारपर :

कृष्ण अर्थात् कौन? कृष्ण अर्थात् निरवधि-सच्चिदानंद. तो निरवधि - सच्चिदानंदका अर्थ तो बहुत अच्छा लेकिन इसका स्वरूप समझो. निरवधि अर्थात् जिसकी कोई अवधि नहीं हो. कोई अवधि नहीं अर्थात् खाली मंदिरमें ही नहीं रहता, तीर्थमें ही नहीं रहता, किसी प.भ.के घरमें बंध कर नहीं रहता; न ही वह किसी पू.पा.महाराजश्रीकी हवेलीमें भी बंध कर रहता. जिसकी सत्ता प्रत्येक स्थानपर अवेलेवल हो वह निरवधि सत्. तो निरवधि चित् अर्थात् क्या? वह यह जो तुम्हारी बातको सुनने, तुम्हारे भावोंको जाननेकेलिये किसी एक स्थानपर ही बंधा हुवा नहीं रहता. यह हरेक कोनेमें तुम्हारी बातको सुन सकता है, जहां तुम ऐसा कहना चाहते हो वहां यह सुन सकता है. जो तुम विचारो, जो कुछ इसका चिंतन, ध्यान, कीर्तन, मनन करो वहां भगवान प्रकट कि अप्रकट बिराजते ही हैं: **मदभक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद** भगवान कहते हैं कि तुम मेरा गान शुरु करो तो सही मैं तुम्हारी बगलमें खड़ा हूं. क्योंकि इसका जो चित् या चैतन्य है वह निरवधि है. अतएव निरवधि-आनन्द भी किसी ठिकाने केसरके हिंडोलेमें बंधा हुवा नहीं और न ही छप्पनभोगके कुंडाओंमें भरा हुवा, भाईसाहब.

तुम्हारे घरमें छोलोंमें भी इसका आनन्द प्रकट हो सकता है. तुम्हारे घरके कोनेमें भी इसका इतना निरवधि आनन्द प्रकट हो सकता है. अगर ये इस प्रकार प्रकट नहीं हो सकता तो फिर श्रीकृष्ण निरवधि-सच्चिदानंद नहीं है और अगर श्रीकृष्ण निरवधि-सच्चिदानंद नहीं है तो **कृष्णसेवा कदापि न कार्या** ऐसा श्रीमहाप्रभुजी कहते. **कृष्णसेवा सदा कार्या** अगर महाप्रभुजी कह रहे हैं तो इसके पीछेका मुख्य हेतु महाप्रभुजीका यह ही है कि श्रीकृष्ण निरवधि सच्चिानंद हैं. हरेक जगहपर हैं, हरेकके साथ इन्टिमेट कम्युनिकेशनमें इन्वोल्व हुवे हुये हैं. और हरेकको अपनी पुष्टिका आनन्द प्रदान करके हरेकसे भक्तिका आनन्द लेनेमें समर्थ स्वरूप है. इस अर्थमें निरवधि सच्चिदानंद होनेके कारण श्रीकृष्णका सृजन करना है. यह निरवधि है उस कारण अपने घरकी अवधिको यह स्वीकार सकता है.

हमारी भक्ति अवधि या मर्यादासे उद्भवित नहीं है बल्कि अवधि स्वयं पुष्टिभक्तिसे गढ़ी अवधि है. अवधि तो वह ही बना सकता है जो सर्वशक्ति कि निरवधि हो. ध्यानसे समझो हमारी विषयासक्ति निरवधि है. जैसे परमात्मा निरवधि है. एक ऐसा दोहा है: **मन मरे काया मरे, सब कछ मरि मरी जाय. आशा तृष्णा न मरे.** तो यह हमारी विषयासक्ति निरवधि है. किसी एक विषयसे संतोष पा जाये ऐसी नहीं है. नित्य नया विषय चाहिये. फिल्मी गीतकी तरह तीन महीनेसे अधिक कोई विषय चले ही नहीं, चौथे महीने नया गीत चाहिये ही. कुछ भी अपनेको परमानेन्ट नहीं चाहिये, रोज नई नई मॉडल चाहिये मारुतीका, रोज नया नया टीवीका मॉडल चाहिये, रोज नये नये कपड़े चाहियें, नये नये खानेके आइटम, रोज नई नई जगह घूमनेको चाहियें. निरवधि हमारी आसक्ति है विषयोमें. उस निरवधि आसक्तिको प्रभु पुष्टिसे सावधि बनाते हैं. अपने स्वरूपसे सावधि नहीं बनाते परन्तु अपनी पुष्टिसे सावधि बनाते हैं. ऐसा निरवधि सच्चिदानंद जब तुम्हारे यहां अवेलेबल है उसे

तुम तुम्हारी पुष्टिभक्तिसे सावधि बना सकते हो. अतएव दूसरे किसीके लिये तुम कोई बंधनकारी नहीं हो जाते. एक सामान्य उदाहरणसे बात समझो जो हवा चारों ओर निरवधि प्रसरित है, इस भूतलपर, जिस वक्त तुम कोई गहरा सांस लेते हो, वह तुम्हारे फेफड़ोंमें जाकर सावधि बन जाती है. तुम सांस लोगे तो वह निरवधि बाहर फैली हुई वायु तुम्हारे फेफड़ोंमें जाकर सावधि बनकर आयेगी. यह तुम्हारेलिये इस कारण अवेलेबल है क्योंकि वह निरवधि है. अब तुम अगर ऐसे कहो कि मेरे फेफड़ोंमें आई है इस कारण अब सब मेरे फेफड़ोंमें भरी हुई हवाके आधार जीवें या सांस लेवें. अरे तुम कोई बत्त्ते हो? बस एक ही सवाल! तुम्हारे फेफड़ोंमें आकर सावधि हो गई अतएव तुम ऐसे कहा कि तुम्हारे फेफड़ोंमे से हमें सांस लेनी तो फिर तो तुम कोई गो.बा. ही हो. शुद्ध बालक **बालक सब ब्रह्म जानिये,** कोई दिक्कत नहीं आती, लेकिन कोई भी महाप्रभुजीके गंभीर सिद्धान्तोंका जानकार ऐसा उपदेशक नहीं हो सकता.

आखिरमें हम गो.बालकोंको श्रीकृष्ण किस कारण अवेलेबल होते हैं हमारे अपने घरोंमें? निरवधि सच्चिदानंद होनेके कारण ही ना. अब गो. बालकोंके घरोंमें निरवधि सच्चिदानंद होनेके कारण होते हैं तो तुम्हारे घरमें भी पुरुषोत्तम होने ही चाहिये ना! ना हों तो कुछ न कुछ निरवधि सच्चिदानंदमें गडबड़ है. यह बात अगर तुम जान जाओ तो तुम्हें फर्स्ट्रेशन नहीं होगी. तुम्हारी सृजनशीलतामें कि पुष्टिमार्गीय प्रभुको घड़नेमें तुम्हें किसी प्रकारका फर्स्ट्रेशन नहीं होगा. तुम तुम्हारे घर, तुम्हारे तन, तुम्हारे धन, तुम्हारे परिजनके साथ एक छोटासा ब्रज तुम्हारे घरमें ऐसे घड़ सकते हो कि जिस ब्रजके कारण तुम भी ऐसे कह सको **ब्रज व्हालुं रे, वैकुण्ठ नहीं आवुं त्यां नंदनो कुंवर क्यांथी लावुं?** अर्थात् तुम्हारेमें सृजनशीलता प्रकट होनी चाहिये. जो सृजनशीलता श्रीमहाप्रभुजीने विवेकधैर्याश्रयमें प्रकट करी है. विवेकधैर्याश्रय

सारा ग्रंथ इस पुष्टिमार्गीयभक्तिको, पुष्टिमार्गीयनिष्ठाको, पुष्टिप्रभुको, पुष्टिभक्तको, पुष्टिभक्तोचित वातावरणको, पुष्टिभक्तोचित घनिष्ठताको किस प्रकारसे प्रोड्यूस करना उसका ही ग्रंथ है.

भक्तद्रोहे भक्त्यभावे भक्तैश्चातिक्रमे कृते। अलौकिकमनः सिद्धौ सर्वथा शरणं हरिः।। एवं चित्ते सदा भाव्यं वाचा च परिकीर्तयेत्। (विवेकधैर्याश्रय : ११-१३)

इन श्लोकोंके ऊपर ध्यान दो, सृजनशीलताका एक समस्त मसाला तुम्हारे भीतर विवेकधैर्याश्रिय द्वारा भरनेमें आया है. आज हम इस विवेकको भुलाकर, इस धैर्यको भुलाकर, इस आश्रयको भी भुलाकर, ऐसे बन गये हैं कि **जिस जगहसे ले चला था राहबर, हम वहीं आये हैं फिर घूमके.** हमने जहांसे पुष्टिमार्गकी यात्रा प्रारम्भ करी थी फिर वहीं लौटकर आ गये और पूछना चाह रहे हैं बताओ अब हम कहां जायें?

एक बहुत मजेदार बात बताऊं तुम्हें, मेरे जब दो तीन प्रवचन हुवे तो उसके बाद एक बहनने मुझे कहा : **ओहो हो कितने अच्छे तरीकेसे आप समझाते हो.** यह सुनके मैं तो फूल ही गया. इसने मुझे कहा **आप हमें क्यों नहीं समझाने आते?** तो मैं उन्हें एक बार समझाने गया. इसने भी समझनेके बाद कहा : **ओहो हो आप कांदीवली और पार्लामें ही पुष्टिजीव हैं ऐसे मानते लगते हो. लेकिन अब तो आपको विश्वास आया ना कि हम भी पुष्टिजीव हैं.** मैंने कहा **मुझे तो पहलेसे ही विश्वास था. मैं कांदीवली या पार्लासे ही बंधा हुवा नहीं हूं. जो लोग आयोजन करते हैं वहां पहुंच जाता हूं. हां इतनी सावधानी जरूर रखता हूं कि हरेक जगह नहीं जाता. जहां मुझे समझमें आता है वहां ही जाता हूं.** तो ये बोली : **भले तो आप हमें भी अपना माना करो.** मैंने कहा : **ठीक है अबसे**

ऐसे ही करूंगा. हुवा क्या कि दस पंद्रह दिन बाद मुझे एक फोन आया कि कहीं कोई व्यापारिक बड़ा मनोरथ हो रहा था, उसमें मेरी आज्ञा लेकर वह उसमें शामिल होना चाहती थी. मैंने कहा **मैं तो यह समझ रहा था कि आप समझ गयीं.** वह बोली **आप आज्ञा नहीं दो तो किस प्रकार जाऊं? मैंने तो आपको अपना गुरु माना है. डूबे वंश कबीरका उपजे पूत कमाल.** एक तो मैं समझाने जाऊं और फिर मेरी हो आज्ञा मांगो, गुनाह तुम करो और साक्षी मुझे बनाओ. **साक्षिणो भवताखिला:** मैं घबरा गया. मैंने अपने मनमें कहा कि मैं पुरुषोत्तम नहीं हूं यह उसकी गड़बड़ है. उस समय वास्तवमें बहुत इच्छा हुई काश मैं भी पुरुषोत्तम होता और इसके मनमें कैसा शैतान बैठा है वह समझ गया होता तो ऐसी गड़बड़में तो नहीं फंसता. लेकिन फंस जायें अगर कोई हमें कहे कि आप बिना कौन समझावे? तो मेरा मन भी चलायमान हो जाता है कि चलो वहां समझाने. लेकिन अगला समझना ही नहीं चाहता तो उसका क्या उपाय?

अतएव ऐसी सब कुछ दिक्कतें तो रहनी ही हैं, जीवनमें भी और पुष्टिमार्गमें भी. लेकिन एक बात तो सच्ची है कि हम सब पुष्टिमार्गीय हैं. स्वस्थ हो तो भी पुष्टिमार्गीय और बीमार हों तो भी पुष्टिमार्गीय. एक दूसरेको अपना मानकर चलेंगे तो कुछ तो सृजन हो सकता है. ऐसी मुश्किलें तो जैसे इनमें हैं वैसे ही मेरेमें भी होंगी ही न! मैं कोई ऐसा दावा तो कर नहीं रहा कि मैं तो पूरकस पुष्टिमार्गके हिसाबसे जी रहा हूं. ऐसी कठिनतायें तो सृजनशीलतामें, किसी भी सृजनकी प्रक्रियामें अगर हम इन्वोल्व होते हैं तो उस समय ऐसी प्रोब्लम आती ही हैं. अगर हम काबू पा सकें तो हमें फरस्ट्रेशन नहीं होगा. उस समय मुझे फरस्ट्रेशन हुवा कि मैं कहां फंस गया, लेकिन एक बात समझो कि इस फरस्ट्रेशनके ऊपर काबू पाना चाहिये और फिरसे सृजनशीलतामें जुट जाना चाहिये. जो कुछ हम सृजन कर सकते हैं वह करते रहना चाहिये. भक्तिका

कमल खिलानेकेलिय भक्तिमार्गाब्जमार्तण्डके आश्वासनपर, अगर आपश्रीकी वाणीमें निष्ठा है तो जैसे बच्चनने कहा है:

मैं रखता हूं हर पांव सुदृढ़ विश्वास लिये.
ऊबड़ खाबड़ तमकी ठोकर खाते खाते.
इनमें कोई रक्ताभ किरण फूटेगी ही.

अर्थात् मैं हरेक कदम बहुत सुदृढ़ विश्वासको लेकर रखता हूं. जमीनके ऊपर पड़े पत्थरोंसे ठोकर नहीं लगती ऐसा भी नहीं है, पैर मेरे भी लड़खड़ा जाते है. ऊबड़ खाबड़ तमकी ठोकर खाते खाते भी मेरी निष्ठा है कि कोई रक्ताभ अर्थात् लाल किरण मेरे मार्गमें प्रकट होगी जिससे कि रास्ते को मैं अच्छी तरहसे देख सकूं, ऐसा बना ही देगी.

भक्तिमार्गाब्जमार्तण्ड: स्त्रीशूद्रादिउद्धृतिक्षम: (सर्वोत्तमस्तोत्र : ९) भक्तिमार्गाब्जमार्तण्डकी कोई किरण, कोई वाणी, हमारे हृदयको कभी स्पर्श करेगी कि हम सिद्धान्त कहने लग जायें, सिद्धान्त विचारने लग जायें, इन सिद्धान्तोंको विचारनेका उत्सव मनाते रहे तो संभव है कि कभी **तम कहता है मुझ महानिशिकी दिशा नहीं तुम पाओगे. ज्यादा संभव है भूल भटक कर उसी जगह आ जाओगे. थे चले जहां से मनमें तूफानी जोश लिये.** अंधकार ऐसे मुझे डराता है कि तुम जहां जाना चाहते हो वहां पहुंच नहीं सकते. भटककर फिर वहीं पहुच जाओगे जहांसे यात्रा शुरु करी थी. **पर फिर भी मैं रखता हूं हर पांव सुदृढ़ विश्वास लिये. ऊबड़ खाबड़ तमकी ठोकर खाते खाते. इनमें कोई रक्ताभ किरण फूटेगी ही.** कितने प्रेरक वचन कविने कहे हैं.

भक्तिमार्गाब्जमार्तण्डकी वाणीकी किरण फूटेगी यह हमें विश्वास है कि नहीं, हृदयको टटोलो और पुष्टिमार्गपर चलना प्रारम्भ करो. शर्तिया तुम इस पुष्टिमार्गमें व्यापे हुवे अंधकारपर विजय पा सकोगे. क्योंकि **स्त्रीशूद्रादिउद्धृतिक्षम:** उस समय भी

स्त्रीशूद्रोंका उद्धार करनेकेलिये महाप्रभुजी एक आचार्यके तौरपर हमारे सामने आये तो आज हम क्या हैं? बस ये ही तो हैं. उस जमानेमें स्त्रीशूद्रोंकी जो स्थिति थी वैसी ही आज पुरुषोंकी, ब्राह्मणोंकी, बालकोंकी, महाराजाओंकी, क्षत्रियोंकी, सबकी स्त्रीशूद्रों जैसी स्थिति हो गई है. **सबही भये इकसार अहो हरि होरी है. खरन भये असवार अहो हरि होरी है.** होलीका यही त्यौहार तो चल रहा है. जो चलता हो उसमें कोई खराबी नहीं लेकिन महाप्रभुजीकी वाणीमें निष्ठा रखोगे तो शर्तिया तुम्हारे हृदयमें भक्तिका कमल खिलेगा, खिलेगा और खिलेगाही.

अलौकिकमनः सिद्धौ सर्वथा शरणं हरिः। (विवेकधैर्याश्रय : १३)

तस्मात् सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णःशरणं मम। वदद्भिरेव सततं स्थेयम्....।। (नवरत्न : ९)

महाप्रभुजीने हमें आश्वासन दिया है. इसे कभी भी भूलना नहीं और उसे भूलोगे नहीं तो ही तुम्हें आत्माद्वैतका, आत्मतादात्म्यका बोध होगा. इस आत्मतादात्म्यका बोध महाप्रभुजीने षोडशग्रंथोंसे लेकर अन्य बहुतसे ग्रंथोंमें दिया है. उदाहरणार्थ भक्तिवर्धिनीमें, जलभेदमें, पंचपद्यानिमें, सेवाफलमें, संन्यासनिर्णयमें. यह सारे जो आठ अंग ऐरिक्सनने कहे हैं, एक मनुष्यको मनुष्यके तौरपर विकसित होनेकेलिये जो मानसिकता चाहिये, वैसी मानसिकताके सारे ही पहलूओंको महाप्रभुजीने कितनी सावधानीसे षोडशग्रंथोंमें लिया है. यह तो हम अपने ग्रंथोंका अध्ययन करें तो ही हमें पता चलेगा, नहीं तो पता ही नहीं चलेगा.

<u>प्रमेयबलकी अनुपलब्धिमें श्रीमहाप्रभुजीकी वाणीका प्रमाणबल ही मार्गपर चलनेके लिये प्रज्ज्वलित मशाल</u> :

प्रमेयबल प्रभु प्रयोग करें तो कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथा कर्तुम् सर्व समर्थ हैं परन्तु तुम्हारेसे प्रमेयबल प्रयोगमें नहीं आता

हो तो एटलीस्ट् तुम्हें प्रमाणबलका तो प्रयोग करना चाहिये ना! एक सामान्य बात बताऊं कि प्रमेयबलसे तो परमात्मा विश्वम्भर है. **चौंच दी है तो चुग्गा भो देगा.** अर्थात् चोंच दी है भगवानने तो चने भी देगा ही. फिर भी चिड़िया इतनी समझदार होती है, कबूतर भी इतना समझदार होता है कि उड़ाउड़ तो करता ही रहता है. ऐसे ही बैठा नहीं रहता कि चौंच दी है तो चने आस्मानमें से गिरेंगे. हम ऐसे कैसे प्रमेयवादी हो गय कि अपना चुग्गा भी ढूंढने नहीं जाते और उसे ढूंढनेका प्रयास भी नहीं करते. महाप्रभुजीकी वाणी यह अपना चुग्गा है समझे. अगर महाप्रभुजीने प्रमेयबलकी चौंच दी है लेकिन इसका चुग्गा खोजनेकेलिये थोड़ी तो उड़ाउड़ प्रमाणबलसे करो. थोड़ा तो प्रयास करो. गायको कि गधेको कि कुत्तेको भी गली में देखोगे तो पाओगे कि वो सब यहां वहां फिरते रहते हैं खुराक खोजनेकेलिये. और हम इनसे भी गये गुजरे हैं कि महाप्रभुजीकी वाणीरूप खुराकको भी नहीं ढूंढते. चुग्गा ढूंढो, चुग्गा ढूंढोगे तो तुम्हें दी गई और प्रमेयबलसे मिली हुई चौंच सफल होगी. तुम व्यापारमें ऐसा विश्वास नहीं रखते कि भगवानने जो देना था वह आसमानसे टपका देगा. व्यापारमें तो प्रतिदिन बोरीवलीसे कालबादेवी और कालबादेवीसे कौन जाने कहां कहां पूना सुरत नाशिक तलक तुम जाते होगे. कहां कहां नहीं जाते हो! इसमें तुम प्रमेयबल प्रयोग नहीं करते. लड़की ढूंढनी हो, लड़का ढूंढना हो तो प्रमेयबलका प्रयोग नहीं करते, सब प्रमाणबलका प्रयोग करते हो. खाना हो तब भी कोई प्रमेयबल प्रयोगमें नहीं लाते कि थालीके सामने बैठ कर कहो हां प्रभुका प्रमेयबल होगा तो रोटीके टुकड़ मुंहमें आ जायेंगे. बूंदी, मोहनथालके स्वाद लेने हों तो कोई प्रमेयबल प्रयोगमें नहीं लाता तुरन्त मंदिरमें जाकर पैसा जमा करा देते हो. हमारी ओरसे आज मोहनथालकी एक भेंट सामिग्री आरोगा दो जिससे कि समाधानमें मोहनथाल घरमें बैठे बिठाये आ जाये. उसम प्रमेयबल प्रयोगमें नहीं लाते. प्रत्येक जगह प्रमाणबल प्रयोगमें ला रहे हो. एक भक्तिमें, एक सिद्धान्त

समझनेमें, एक सिद्धान्तशुद्ध जीवन जीनेके अभिगममें केवल प्रमेयबल.. कि सिद्धान्तकी चर्चा मत करो! हमारा पुष्टिमार्ग प्रमेयबलका मार्ग. अरे! क्या प्रमेयबलका मार्ग! कौनसा प्रमेय! क्या तुम्हें प्रमेयबल अवेलेबल है? नहीं है. तुम्हें अवेलेबल होता तो तुम्हारी यह दुर्गति होती ही नहीं. अवेलेबल नहीं है इसलिये तुम प्रमाणबलका प्रयोग करो और प्रमाण क्या? महाप्रभुजीके उपदेश हमारे लिये प्रमाण हैं. इन उपदेशोंके मुताबिक जब तुम अपने जीवनमें भक्तिको स्वीकारोगे, पुष्टिप्रभुको स्वीकारोगे, पुष्टिप्रभुकी शरणागतिको स्वीकारोगे तब प्रमेयबल तुम्हारेमें प्रकट होगा. तुम उलटा करते हो. घोड़ेके पीछे गाड़ीको बांधा जाता है और तुम घोड़ेके आगे गाड़ी बांध रहे हो. और कहते हो कि प्रमेयबल प्रकट हो. अरे, पमाणको तो पहले प्रकट होने दो.

अन्धस्य सूर्यइव तद्विमुखस्य नात्र अर्थिता प्रमेयबल सूर्यमें है जिससे वह प्रत्येक वस्तुको प्रकाशित कर देता है. लेकिन यह प्रकाशित करा हुवा प्रमेयबल कब काम आयेगा कि जब तुम आंखोंको खोल कर देखो. लेकिन तुम्हारी आंखकी पुतली मेरी आंख जैसी ही हो कि देखते हुवे भी नहीं दिखता तो फर्स्ट्रेशनके कारण सूर्य उदित हो तो भी क्या और न भी उगे तो क्या? सब एक जैसा ही रह जायेगा. गलत भ्रमणामें मत जीयो. थोड़ासा प्रमाणबल भी प्रयोगमें लाओ. महाप्रभुजीके ग्रंथ हमारेलिये प्रमाणबल हैं. पुष्टिमार्गपर चलनेकेलिये एक प्रज्ज्वलित मशाल है कि जिससे मार्गमें आते प्रत्येक अंधकारको, प्रत्येक कोनेकुचालेमें आते जो खड्डे हैं, उनसे बचाकर तुम्हें ले जानेकेलिये एक समर्थ प्रमाणबल है. कोई भी जंगली जानवर, यह मशाल अगर तुम्हारे हाथमें है तो तुम्हारी ओर आनेका साहस नहीं करेगा. इतना समर्थ प्रमाणबल है. परन्तु इसे हाथमें तो अपने ही रखना पड़ेगा, बुद्धिमें अपनी इसे डालना पड़ेगा और फिर चलोगे तो पुष्टिमार्ग तुम्हारा है, तुम पुष्टिमार्गके हो.

लेकिन जब तुम्हारेमें यह बल नहीं है तब कहीं न कहीं गड़बड़ होगी ही.

उद्वेगकी धुनाई या जुगालीसे होती चिंताकी मनाही :

अब हम इस मुद्दे पर आते हैं कि जिसमें पुरुषोत्तमजीने तीन प्रकारकी चिन्ताका वर्णन किया है: १. उद्वेगजनित २. उद्वेगरूपा और ३. उद्वेगजनिका जो चिन्ताऐं हैं, उनमें उद्वेग क्या? जैसे मैंने थोड़ी देर पहले तुम्हें कहा कि चिंताको हम समस्यारूपमें लेते हैं, उद्वेग समस्या नहीं है. वास्तवमें उद्वेगतो जीवनकी एक हकीकत है. कल भी मैंने तुम्हें एक बात कही थी कि **दिल ही तो है ना संगोखिस्त, दर्दसे भर ना आये क्युं. रोयेंगे हम हजार बार कोई हमें रुलाये क्युं**? जो हृदय है तो उसमें कभी न कभी कोई न कोई दु:ख तो आयेगा ही. जब दु:ख आयेगा तो उसका अनुभव तो करना ही पड़ेगा, जिसे हम छोड़ नहीं सकते. लेकिन जिस वस्तुको हम छोड़ सकते हैं वह यह कि दु:ख आ ही गया तो उसकी धुनाई या जुगाली मत करो. बस मुख्य मुद्दा यह है कि दु:ख आ गया तो उसको अनुभवो. थोड़ा रोना हो तो रो लो, अथवा इसका प्रतीकार करना हो तो कर लो. विवेकधैर्याश्रयमें ऐसे बहुतसे उपाय समझाये गये हैं. जिसका प्रतीकार कर सकते हो तो करो. प्रतीकार नहीं कर सकते तो सहन कर लो. सहन नहीं होता और न ही प्रतीकार कर सकते हो तो अष्टाक्षरका जप करो, वगैरे वगैरे बहुतसे ऐसे ऑल्टरनेटिव् हैं जिन्हें महाप्रभुजीने सजेस्ट् किया है. जिससे कि तुम्हारी जो ईगोकी आइडेन्टिटी है वह टूट न जाये. किसीने मुझसे प्रश्न पूछा था **ईगोके स्प्लिट होनेका तात्पर्य क्या**? अर्थात् हमारे अहम्का जो बोध है **मैं कौन**? इसमें किसो प्रकारकी टूट फूट हो जाये. जैसे हम दीवार बनाते है इसमें कोई दरार पड़ जाये, टूट जाये, मकानकी नींवमें कोई दरार आ जाये. क्रैक आ जाये. इसी प्रकार अपनी पहचानका जो बोध है उसमें किसी प्रकारका क्रैक आ जाये उसका नाम आत्मद्वैत. अपनेमें किसी भी

प्रकारका द्वैत विचारना कि खाली एकही सिद्धान्त सत्य है लेकिन महद्अंशमें व्यवहारमें लाने लायक नहीं हैं. यह द्वैत. दिमागमें आया ना! सिद्धान्त सिद्धान्तके तौरपर सच्चे हैं लेकिन जनतामें चर्चा करने लायक सच्चे नहीं हैं, यह द्वैत. ऐसे सारे जो द्वैत आ जाते हों इन द्वैतोंको ओवरकम करना पड़ेगा क्योकि यह द्वैत किसी दिन हमें मार्गके ऊपर चलानेमें सक्षम नहीं बनाते. उद्वेग अपने हृदयके कारण होता है. हृदय न हो तो औपरेशन करा लें क्योंकि हम हृदयके बगैर जी नहीं सकते, तो फिर कोई उद्वेग नहीं आयेगा. वैज्ञानिकोंके अनुसार हमारे भीतर ऐसे ग्लेन्ड्स् हैं मस्तिष्कमें कि अगर जिनका औपरेशन कर दिया जाये अथवा मस्तिष्कके किसी हिस्सेको इलेक्ट्रिक शॉक देकर सुला दिया जाये तो वह काम करना बन्द कर देते हैं. जैसे कि चूहेके मस्तिष्कके किसी ऐसे हिस्सेको इलेक्ट्रिक शॉक देकर इनऑपरेटिव बना देते हैं तो फिर बिल्ली आये तो चूहा भागता नहीं है. बैठा ही रहता है. ऐसा कुछ हमारे भीतर भी हो जाये तो ऐसा हो सकता है. जो नहीं हो सकता वह यह कि भयजनक ग्रंथियोंको लगे हुवे बिजलीके झटके जो हमें इनऑपरेटिव कर रहे हैं, उनसे बाहर आओ. तो भय भी निवृत्त हो सकता है, उद्वेग भी निवृत्त हो सकता है. परन्तु साधारणतया अपने शरीरकी, अपने मानसकी, अपने विचारकी, अपने व्यवहारकी जिस प्रकारसे बनावट है, उसमें भय होता ही है, काम उत्पन्न होता ही है, क्रोध उत्पन्न होता ही है. काम उत्पन्न होना यह बनावटका विषय है लेकिन इस कामको तान तानकर इसकी धुनाई या जुगाली कर करके, हमें जिस वस्तुकी कामना है उसका लोभ रखना यह स्वाभाविक वस्तु नहीं है. यह तो धुनाई या जुगालीके द्वारा उद्भूत वस्तु है. क्रोध उत्पन्न होता है यह स्वाभाविक वस्तु है. काम या क्रोधके बाद जब लोभ या मोह तुम्हारेमें उत्पन्न होता है यह तुम्हारेमें स्वाभाविक प्रकारसे उत्पन्न नहीं होता. क्रोधकी तुमने बहुत धुनाई या जुगालीकी अर्थात् तुम इसका चिंतन करते रहो कि **मैं ऐसे कर दूंगा कि वैसे कर दूंगा.** यह अस्वाभाविक होनेके कारण

किसी समय मोहमें परिणत होगा. लेकिन तुम अगर क्रोधकी धुनाई या जुगाली ना करो तो यह क्रोध तुम्हारे मोहमें परिणत नहीं होगा. इसी प्रकार काम धुनाई या जुगालीके कारण लोभमें परिणत होता है. उस मोहको तुम संग्रहित करके रखोगे तब उसमेंसे मात्सर्य प्रकट हो जायेगा. उसी प्रकार लोभकी धुनाई या जुगाली कर करके हम मदको डेवलप् कर लेते हैं. यह तो मेरे ही पास है किसी और के पास नहीं. मैं पुष्टिप्रभुकी मोनोपोली रखता हूं. लेकिन इसकी धुनाई या जुगाली मत करो. अनावश्यक किस कारण पुष्टिप्रभुके बजाय इसके ऊपर मोनोपोली करते हो!

काम क्रोधकी धुनाई या जुगाली करनेसे पापाचार :

दान, भोग, और नाश यह धनकी तीन गतियां हैं. जो भोग नहीं सकते और दे भी नहीं सकते, उसके लिये शास्त्र कहते हैं कि उसकी तीसरी गति है नाशकी. ऐसे ही धुनाई या जुगाली कर करके लोभसे तुम जो संग्रह करते हो, उसके कारण तुम्हें मद उत्पन्न होगा. अगर लोभकी तुम धुनाई या जुगाली न करो तो मद कभी भी उत्पन्न नहीं हो सकता. यह बात धनके बारेमें जितनी सच्ची है उतनी ही अधिकारके बारेमें भी सच्ची है. ज्ञानके बारेमें जितनी सच्ची है उतनी ही परिवारके बारेमें भी, हरेकके बारेमें प्रेक्टिकली सच्ची है. किसीके ऊपर तुम्हें क्रोध आये यह तो स्वाभाविक वस्तु है आता ही है. क्रोध आना बहुत स्वाभाविक है. लेकिन क्रोधकी जब धुनाई या जुगाली कर करके हम मोहमें विकसा लेते हैं या इस क्रोधके कारण बाकी सारी बातोंका भान भूल जाते हैं खाली एक ही विचार बना रहे, तो तुमने क्रोधकी धुनाई या जुगालीकी ऐसा कहलायेगा. ऐस क्रोधकी धुनाई या जुगाली कर करके तुमसे कुछ होता तो नहीं अतएव **देख लूंगा, देख लूंगा** हो जाता है. अब देख लूंगा किस कारण देख लेगा यार? देखना है तो अब ही देख ले, न देखना हो तो भूल जा. लेकिन हम बहुत ही होशियार हैं, क्या कह रहे हो तुम, देख लूंगा तुम्हें. अरे लेकिन कब देखेगा हमें, इसका

नाम मात्सर्य. मात्सर्य क्योंकि हमने मोहकी धुनाई या जुगाली करी. जिसके सामने हम क्रोध प्रकट नहीं कर सकते, अगर क्रोध प्रकट कर सकते तो देखनेकी जरूरत कहां रहेगी? देखलो ना हमें! हमें क्रोध प्रकट करनेमें डर और लगता है कि हमारे एक लप्पड़के जवाबमें किसीने दो लप्पड़ मारे तो हम किस प्रकार उसे चार लप्पड़ मारें? हम ऐसा कुछ कहें और दूसरा सामनेसे जबावदे तो क्या करना?

मुझे एक भाईने थोड़े दिन पहले बहुत मजेदार चिट्ठी लिखी. आजकल बहुत सारे लोगोंको मुझे चिट्ठी लिखनेका बहुत उद्दीपनविभाव होता है. मैं जाऊंगा वहां तलक इनका संग्रह करके रखूंगा. इसने मुझे चिट्ठीमें लिखा कि **तुम जन्में तब तुम्हारे पिताश्री दीक्षितजी महाराजने नंदमहोत्सव किया था कि नहीं? वह समझदार थे कि बेवकूफ थे? तो ये अगर समझदार थे तो तुम पुरुषोत्तम सिद्ध हुवे कि नहीं?** सचमें इस आर्ग्युमेंटकी डीटेलमें मैं जाना नहीं चाहता. लेकिन ठीकसे पूछना चाहता हूं कि नंदमहोत्सव तो टी.वी.में भी बहुत बार कृष्णलीलामें भी होता है. नंदमहोत्सव टी.वी.में जिसका हुवा है तो वह पुरुषोत्तम था कि नहीं? कृष्णलीला हमारे यहां हुई थी ना! तो मैं यह पुरुषोत्तम हूं और वो भी पुरुषोत्तम (वो टी.वी.की कृष्णलीलाका एक्टर) समझो कि नंदमहोत्सव हुवा तो उससे क्या? यह होते हुये भी मेरे सामने यह आर्ग्युमेंट रख रहे हो? थैंक्स् ए लौट! नीचे क्या लिखता है कि **ऐसे तो बहुत सारी युक्तियां और दलीलें मेरे पास ह कि जिसका मैं तुम्हारे सामने उपयोग करना चाहता हूं लेकिन तुम्हारा डर लगता है इस कारण अपना नाम नहीं लिख रहा!** ये देऽऽऽऽखऽऽऽऽलूंगा! यही तो बात है ना. अरे यार! क्रोध आये तो मार मुझे सींग. बैल (गोस्वामी) को क्रोध आये तो वह सींग मारता है! लेकिन उसे लगे कि सामनेवाला श्याममनोहरजी हैं तो भाग जाता है. क्योंकि ये ज्यादा सींग मारेगा, ज्यादा कड़कपने से पेश आयेगा लेकिन ऐसा नहीं करेगा

कि देख लूंगा- देख लूंगा! और गुमनाम पत्र लिखे. यह सब क्या है? अपने क्रोधको हमने मोहमें विकसित कर दिया है. **आज तो खैर कोइ बात नहीं, कह ले तुझे जो कुछ कहना है लेकिन एक दिन देख लूंगा.** नाम नहीं लिखता लेकिन पत्र लिखे तो उसे किस प्रकार जबाव देना? तो ऐसे देखनेवालोंके लिये अपने पास कोई इलाज नहीं है. धमकी दे जाये हमको कि देख लूंगा लेकिन फिर देखे ही नहीं. अरे देखता क्यो नहीं? यह सब जो अपनी अस्वाभाविक वृत्तियां होती हैं इनकी हम धुनाई या जुगाली करके बहुत कुछ गलत विकसा लेते हैं. वह सब उद्वेग अर्थात् भय. भयकी धुनाई या जुगाली करकरके अपनी चिन्ताके रूपमें विकसा लेते हैं उस चिन्ताकी मनाही है.

<u>काम क्रोधकी धुनाई या जुगाली करनेसे नाश</u> :

भगवानसे भी अर्जुनने यही प्रश्न पूछा था: **अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पुरुषः। अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः।।** किस कारण मनुष्य पाप इस प्रकार करता है कि मानो कोई उससे उसकी इच्छाके विरुद्ध बलात पाप करवाता हो? अर्जुन पूछता है **अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति अनिच्छन्नपि** जबकि अच्छी प्रकारसे समझता है कि यह पाप मुझे नहीं करना चाहिये फिर भी किस कारणसे करता है? प्रभु आप मुझे समझाओ और भगवानने वहां कितना सुंदर उत्तर दिया है **काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवो महाशनो महापाप्मा विध्यैनमिह वैरिणं** तुम्हारे भीतर बैठे हुवे काम और क्रोध तुम्हारे घरमें घुसे हुवे शत्रु हैं. वह तुमसे पाप करा रहे हैं. पाप कब होता है? जब क्रोधको तुम मोहमें विकसाते हो, जुगाली करकरके मोहको मात्सर्यमें विकसाते हो, कामको जब तुम लोभमें विकसाते हो, और लोभको जब तुम मदमे विकसा लेते हो. तब तुम्हें पाप करनेकेलिये खुला अवसर मिल जाता है. खुला मैदान मिल जाता है.

धुनाई या जुगाली रहित कामक्रोध अगर धर्माविरुद्ध हो तो हमारे भीतर शक्ति पैदा करता है :

भगवान गीतामें स्पष्ट आज्ञा करते हैं: **धर्माविरुद्धो भूतेषु कामो अस्मि.** इस कामको जब तुम धर्मसे अविरुद्ध प्रयोग करनेकी कला प्राप्त कर लेते हो तब यह तुम्हारा शत्रु नहीं रह जाता. तुम्हारे भीतर एक बहुत बड़ी शक्तिके रूपमें उभरता है. इस क्रोधको जब तुम धर्मसे अविरुद्ध पद्धतिके द्वारा प्रयोग करनेकी कला प्राप्त कर लेते हो तब भगवान स्वयं अर्जुनसे कह रहे ह कि **तेरे शत्रुओंको तू मार.** बिना क्रोधके कोई किसीको मार नहीं सकता. थोड़ा बहुत तो क्रोध प्रयोगमें लाना ही पड़ेगा. लेकिन यह क्रोध धर्म अविरुद्ध होना चाहिये. ऐसा क्रोध नहीं होना चाहिये कि तुम्हारे भीतर जो क्रोध है वह मोहमें परिणत हो जाये, तुम्हारे भीतर मात्सर्यमें परिणत क्रोध नहीं. **किम् कर्म किम् अकर्मेति कवयोपि अत्र मोहता:** वैसा क्रोध नहीं होना चाहिये लेकिन **तस्मात् शास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुम् इह अर्हसि** इस प्रकार काम और क्रोधको धर्मसे अविरुद्ध बनाकर जिस समय तुम उनका प्रयोग करते हो तब यही काम और क्रोध तुम्हारे भीतर एक शत्रुके रूपमें नहीं बल्कि एक बहुत बड़े मित्रके रूपमें तुम्हारे भीतर एक ट्रिमेन्डस् एनर्जीके रूपमें काम करने लायक बन जाते हैं. एक बात समझो कि अगर क्रोध खराब ही होता हो तो **मायावादाख्यतूलाग्नि:** महाप्रभुजीको किस प्रकार कहेंगे? **मायावादाख्यतूलाग्नि:** महाप्रभुजीको अपन कहते हैं कि नहीं? अतएव मायावादके ऊपर क्रोध तो आता ही होगा कि नहीं? महाप्रभुजीको कभी किसीने ऐसी सलाह नहीं दी कि आप अपने अडेलके घरमें बिराजकर सेवा करते रहो काहेको मायावादके खंडनकी मुसीबतमे पड़ रहे हो? आजके भगत तो ऐसा कहदें शायद महाप्रभुजीको भी! भरोसा नहीं! लेकिन महाप्रभुजीको इसकी परवाह नहीं थी क्योंकि जो वस्तु गलत लगती है उसे कहना ही चाहिये **मायावादाख्यतूलाग्नि:** और ब्रह्मवाद ठीक लग रहा है

अतएव वह **ब्रह्मवादनिरूपकः** भी हैं. जो बात ठीक ह उसे ठीक कहना ही चाहिये. जो बात गलत है उसके बारेमें क्रोधका प्रयोग करना ही चाहिये. लेकिन **मायावादिनां तूलाग्निः** कहनेमें नहीं आया. जब भी मायावादी दिखें तो उन्हें तुम छुरा मार दो कि इनकी गरदन उड़ादो अथवा तो मायावादीओंके मठोंको डायनामाइट् लगाकर उड़ा ही दो. ऐसा महाप्रभुजीने कहीं भी कभी भी नहीं कहा. मायावादियोंके पास जाकर कहा कि तुम मेरे साथ विचार करो. मैं तैयार हूं. **डिण्डिस्तु वादितो द्वारि विश्वेशस्य मया अत्रहि विद्वभिः सर्वथा श्राव्यं ते हि सन्मार्गरक्षकाः** मायावादियोंको विद्वान कह कर बुलाया है कि तुम विद्वान हो अतएव तुम्हें बात सुनानी है, एक बात समझो क्रोधका प्रयोग कर रहे हैं, महाप्रभुजी लेकिन, यह क्रोध प्रयोग करते हुवे भी धर्म विरुद्ध प्रकारसे प्रयोग नहीं कर रहे, धर्मकी अविरुद्ध रीतिसे प्रयोग कर रहे हैं. **न भयं तेन कर्तव्यं ब्राह्मणानाम् इयं गतिः** भय करनेकी क्या बात है, तुम गलत बात कर रहे हो यह मुझे लग रहा है. और अगर मैं गलत बात कर रहा हूं ऐसा तुम्हें लगता हो तो आओ हम साथ बैठकर विचार करें. अब बंद दरवाजोंमें चर्चा करना चाहिये. क्योंकि सिद्धान्त तो ठीक हैं लेकिन खुलेमें चर्चा नहीं हो सकती. ऐसी महाप्रभुजीकी नीति नहीं थी. **डिण्डिस्तु वादितो द्वारि विश्वेशस्य मया अत्र हि** विश्वनाथजीके दरवाजेपर जाकर नगाड़ा बजाकर घोषित किया कि आओ, चर्चा करो मेरे साथ. अतएव क्रोध तो महाप्रभुजीने भी प्रयोग किया है लेकिन मायावादियोंके विरुद्ध नहीं बल्कि मायावादके विरुद्ध. यह है धर्मअविरुद्धता है क्रोधकी. तो धर्मअविरुद्ध काम, धर्मअविरुद्ध क्रोध, तुम्हारे भीतर बहुत बड़ी शक्ति पैदा कर सकता है. और धर्मविरुद्ध काम एवं धर्मविरुद्ध क्रोध तुम्हारा नाशक भी बन सकता है. उसका निरूपण भगवान गीतामें करते हैं **विद्द्धि एनम् इह वैरिणं** कहकर. अर्जुनने सवाल किया कि **अथ केन प्रयुक्तो अयं पापं चरति पुरुषः** तो

भगवानने कहा **काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवो महाशनो महापाप्मा विध्यैनमिह वैरिण.**

उद्वेगके मुख्य दो कारण: इष्टवियोग और अनिष्टसंयोग :

अतएव जो उद्वेग उत्पन्न होता है, इसका सघन अभ्यास कि सघन स्वाध्यायका यह कार्यक्रम है. यह प्रवचनका कार्यक्रम नहीं है. इस कारण मैं इतनी डीटेल्स्में जा रहा हूं. अतएव उद्वेगका मूल अर्थ हमें समझना पड़ेगा.

सब उद्वेगोंका मूल दो बातोंमें ही रहा हुवा है: इष्टका वियोग और अनिष्टका संयोग. जो तुम्हें अच्छा लगता है वह अगर तुमसे छूट रहा है अलग हो रहा है तो उससे तुम्हें उद्वेग होगा, होगा और होगाही. ऐसे समझो, तुम्हारे फेफड़ोंको सांस लेना अच्छा लगता है, नाक दबाकर देखो तत्काल उद्वेग हो जायेगा. एक दो चार मिनट तुमको आंख मींचनेंकेलिये कहूं तो तुम आंख मींच लोगे लेकिन ऐसे कहूं कि आधा घंटा आंख मींचकर बैठे रहो तो सबको उद्वेग हो जायेगा.

अहमदाबादवाले रणछोड़लालजीमहाराजको वैष्णवोंने प्रवचन करनेके लिये बुलाया **गांवमें महाराज प्रवचनका फैशन चल रहा है. आप प्रवचन क्यों नहीं करते?** महाराजश्रीने कहा **चलो आऊंगा प्रवचन करने. लेकिन मेरी एक शर्त यह है कि जो मैं पवचन करूं तुम उसका पालन करोगे.** वैष्णवोंने कहा **हां कृपानाथ! आप प्रवचन करो. हम प्रवचनका पालन क्यों नहीं करेंगे?** इन्होंने जाकर इतना ही कहा **प्रत्येक व्यक्ति एक एक गाय पालना शुरु करे,** अब तो सब श्रोताओंमें से कोई तो इधर भागा और कोई उधर भागा, सब भाग गये. गायका पालन कौन करे आजके समयमें? एक बात समझो गाय पालने जैसी हल्की बात भी उद्वेग पैदा करनेवाली हो जाती है भला. महाराजने गजबका विवेक प्रयोग किया इन्होंने कहा **मैं प्रवचन**

तो करुंगा लेकिन तुम आश्वासन दो कि तुम उसके मुताबिक करोगे. तो वैष्णवोंने कहा **हां करेंगे.** इनको यह लगा कि महाराज कहेंगे **मनोरथ कराओ, छप्पनभोग करावो... ऐसा ही कुछ कहेंगे महाराज. और दूसरा कुछ क्या कहेंगे? हिंडोरेका मनोरथ कराओ, फूलमंडलीका मनोरथ कराओ.** इन्होंने यह न कहकर कुछ और अनपेक्षितही कहा **जो जो वैष्णव हैं यह अपने गोपालके वैष्णव हैं. गोपालको गाय बहुत अच्छी लगती हैं. अतएव प्रत्येक वैष्णवको एक एक गायका पालन करना.** फिर तो सब वैष्णव भाग गये. बोले हम उत्तम कोटीके वैष्णव होंय तो ही तो पालेंगे ना महाराज! हम तो प्रवाही जीव हैं. भागने दो. **चर्षणीशब्दवाच्यास्ते स्थितिः तेषां न कुत्रचित्** भूल हो गई महाराज. आपको प्रवचनकेलिये बुलाया. अतएव कोई कुछ करनेको कहे तो उद्वेग हो जाये. मैं तुम्हें कह रहा हूं लेकिन मुझे ही कोई कहे कि गोपालन करो तो मेरे फलेटमें गायको कैसे पालना? मुझे भी उद्वेग हो जायेगा. इसमें कोई घबराने जैसी बात नहीं है, स्वाभाविक है क्योंकि जो इष्ट है उसका संयोग अच्छा लगता है और जो अनिष्ट है उसका वियोग अच्छा लगता है.

हमें अगर इष्टका वियोग होता है अतएव उद्वेग तो होना ही है. अनिष्ट जो मुझे अच्छा नहीं लगता उसके साथ मेरा संयोग हुवा तो उद्वेग तो होना ही है. उद्वेग होना इसे हम स्वाभाविक गिनते हैं, क्योंकि मनुष्यकी संरचना ही कुछ ऐसी है कि कुछ इष्ट और कुछ अनिष्ट तो होता ही है. दुनियां फिर ऐसी है कि जो इष्ट होता है उसके साथ अपना वियोग करा देती है. जो अनिष्ट होता है उसके साथ अपना संयोग करा देती है. अतएव उद्वेग स्वाभाविक घटना है. इस संसारमें जितनी स्वाभाविक घटना हम देख रहे हैं, हिल रहे हैं, चल रहे हैं, उतनी स्वाभाविक घटना उद्वेग है. लेकिन उद्वेगकी धुनाई या जुगाली करके इसे चिंताके रूपमें एक समस्या बनाना वह स्वाभाविक घटना नहीं है. वह तो कमजोरीके कारण हो जाती

है. उसके ऊपर तो चिंतनके द्वारा काबू पाना चाहिये. वह नवरत्नके मुख्य मुद्दे हैं कि ऐसे उद्वेगकी धुनाई या जुगाली कर करके अथवा चिंताकी धुनाई या जुगाली कर करके तुम उद्वेगको गलत बढ़ा रहे हो. जो उद्वेग अनावश्यक है तो उस उद्वेगके ऊपर काबू पाया जा सकता है. अतएव इष्टवियोग और अनिष्ट संयोग यह उद्वेगको पैदा करने वाले दो कारण हैं.

इष्टानिष्टके वियोग-संयोगकी प्राथमिक अवस्था समझनेपर चिंताके फिनोमिनाको समझोगे :

इस इष्टसंयोग और इष्टवियोगकी जो प्राथमिक अवस्था है वह किस प्रकार होती है, इसे अगर हम समझ लेंगे तो चिंताका फिनोमिना भी समझमें आ जायेगा. हम अच्छी तरहसे जानते हैं पैरोंकी हड्डीको, दिमागको, दिलको कि फेफड़ोंको डॉक्टरने जो कुछ काटना होता है वह काट सकता है. हमें इसमें कोई तकलीफ नहीं होती क्योंकि हमें एनेस्थेसिया लगा दिया जाता है. यह सब अंग हमारे इष्ट होते हुये भी जब इन्हें काटा जाता है तो हमें पता ही नहीं चलता. काट दिया जाता है उसमें कोई तकलीफ नहीं होती. लेकिन जब पता चलता है कि कोई इष्ट काटा जा रहा है. मैं मेरे अनुभवकी बात बताता हूं कि मुझे टोन्सिलस्‌की बहुत तकलीफ हो गई इसलिये दमेकी प्रोब्लम् जब तब हो जाती थी. इस कारण मैं टोन्सिलस् कटाने गया. हमारा डॉक्टर बहुत महापुरुष, उसने ऑपरेशन करनेसे पहले मुझसे पूछा **डर तो नहीं लगता ना**? मैंने कहा **नहीं डरता.** तो बोला **चलो तुम्हें एक इन्जेक्शन् लगा देता हूं.** बात बहुत साधारण थी कि इन्जेक्शन लगे बिना तो ऑपरेशन होता नहीं और लोकल एनेस्थेसिया था इसलिये मुझे पूरा बेहोश तो किया नहीं था. वह ऑपरेशन करते करते मुझसे बोलता जाता, फिर मुझे घबराहट होने लगी कि टोन्सिल कटा कि नहीं? क्या हुवा? किस तरह हुवा? पता कुछ चलता नहीं था, बस कुछ गरम गरम लगता था. एक बात समझो कि टोन्सिल कटवानेमें

दर्द नहीं था. कटा रहा हूं, कटा रहा हूं, कटा रहा हूं. ऐसे उद्वेगकी धुनाई या जुगाली करके मैं खुद इतना घबरा गया कि डॉक्टरको मुझसे कहना पड़ा **पहले तो कह रहे थे कि डर नहीं लगता. अब क्यों इतना घबरा रहे हो?** मैंने कहा **क्या करूं? पता नहीं चलता, इतनी देरसे मेरे मुंहमें हाथ डालकर तुम क्या कर रहे हो? मुझे इसकी घबराहट हो रही है.**

उद्वेगकी पहली शर्त: सभानता. निद्राधीन या बेहोश व्यक्तिको कभी उद्वेग नहीं होता :

सबसे पहले उद्वेगकी पहली शर्त है सभानता. जो मनुष्य सुषुप्त हो या जो बहोश हो उसे कभी उद्वेग नहीं होता. बल्कि ध्यानसे एक बात समझ लो कि प्रभुने कितनी सुंदर इस सृष्टिकी रचना करी है कि दिनभरके तमाम उद्वेगोंको लेकर जब हमें रातमें अच्छी तरहसे नींद आ जाती है तो दूसरे दिन नये उद्वेगोंकेलिये हम फिरसे पहलवान बन जाते हैं कि आ जाओ कि अब क्या है? अतएव जो कुछ उद्वेग आया है इसकी भरपाई करनेकी व्यवस्था निद्राके रूपमें प्रभुने साइक्लीकली बना रखी है. जो कोई उद्वेग आया हो वह चिंतामें परिणत नहीं होता. दिनभरका उद्वेग जोड़ लो अथवा प्रतीकार कर लो और रातको शान्तिसे सो जाओ तो सुबह फिरसे तुम उद्वेगोंके साथ भिड़नेको तैयार मिलोगे. क्योंकि निद्राका ऐसा मेकेन्जिम् प्रोवाइड करनेमें आया है कि हमारे शरीरके भीतरके प्रत्येक उद्वेगका समस्त जमाखर्चका हिसाब बराबर हो जाता है. लेकिन अगर हमें नींद ठीकसे नहीं आती तो फिर उद्वेग स्वप्नमें भी होने लगता है.

राजकोटके एक वैद्य लाभशंकर हैं. उनका भाटिया महाजनवाडीमें दंतयज्ञ हुवा. मैंने इससे पहले कभी दंतयज्ञ देखा नहीं था. वहां जाकर मैंने देखा कि किसीका यह दांत तो दूसरेका वह दांत वृक्षकी डाल परसे जैसे फूल तोड़ते हैं वैसे दांत निकाल रहा था. उसे देखकर मेरा अपने दांतों परसे विश्वास उठ गया कि हम दांतको इतना मजबूत समझकर सुपारी खाते हैं उन

दांतोंको कोई फूलकी तरह तोड़ता हो तो दांत है कि कुछ और? तुम मानोगे नहीं कि कितना उद्वेग हो गया. जबकि मुझे वहां दंतयज्ञके अध्यक्षके तौर पर बुलाया गया था. लेकिन अध्यक्षका हाडपंजर हिल गया ऐसे कामकाजको देखकर. अतएव रातको मुझे स्वप्न आया कि मेरा दांत हिल रहा है और उसे उसने बाहर निकाल दिया. अब दूसरा दांतभी हिलने लगा और उसे भी उसने निकाल दिया. जब चार पांच छ: दांत निकाल दिये तो उद्वेग इतना बढ़ गया कि मेरी नींद ही खुल गई डरके मारे. क्या हो गया अचानक कि जो दांत पकडूं वही हिले. आखिर हो क्या गया! एक्च्युअली लाभशंकरभाईका लाभ मुझे मिल गया! मुझे आज दिन तक वह स्वप्न याद है कि हरेक दांत जिसे हिलाकर देखूं वही हाथमें आ जाये. मैंने कहा कि अब इस दृश्यको अधिक देखनेकी सामर्थ्य मेरेमें नहीं है. क्या हो रहा है क्यों अचानक ऐसा हो गया? जागकर बैठ गया. सांसभी जोरसे चलने लगी थी. आखिरमें नौर्मल हो गया. अतएव एक बात समझो कि उद्वेग होता है. उद्वेग हमें कभी स्वप्नमें भी तकलीफ देता है. बाकी नौर्मल ठीकसे नींद आती हो तो उद्वेग तकलीफ नही देता. इसलिये उद्वेगकी पहली शर्त है जागृति या सभानता.

व्यवसायात्मक ज्ञान यह मूल है जहां उद्वेग उत्पन्न होता है :

जागृतिमें हम आत्मव्यवसाय करते हैं कि **मैं.** सबसे पहले कौन जागता है अपने जागने पर? अपना **मैं** जागता है. सो जाता है अर्थात् कौन सो जाता है? हमारा **मैं** सो जाता है. **मैं** जागनेके बाद तत्काल विषयोंके साथ अपनी चेतनाका जो सम्पर्क है शास्त्रमें उसे व्यवसाय कहते हैं. बुद्धिके व्यवसायमें हमारा कुछ इष्टके साथ संयोग होता है. कुछ अनिष्टके साथ संयोग होता है. कुछ इष्टका हमारा वियोगात्मक व्यवसाय होता है. अनिष्टका संयोगात्मक व्यवसाय होता है. यह मूल स्थान है जहांसे उद्वेग उत्पन्न हो रहा है.

चिंताको समझनेकेलिये क्लिफर्डमोर्गन्के व्यवसायात्मक ज्ञानकी विवेचना :

अब इसके साथोंसाथ एक दूसरा मानसशास्त्रका विद्वान हुवा है क्लिफर्ड मोर्गन करके. इसने भी व्यवसायात्मक ज्ञानकी बहुत अच्छी विवेचना करी है. चिंताको समझनेकेलिये इन्सिडेन्ट्ली हमें यह विवेचना भी बहुत सहायक है. उसे भी हम समझेंगे. यह क्लिफर्डमोर्गन कहता है कि व्यवसायात्मक ज्ञान सबसे पहले दो प्रकारसे होता है: विषयके आकर्षणरूपमें अथवा विषयके अपकर्षणके रूपमें. जैसेकि फिझिक्स्का लॉ ऑफ ग्रेविटीका नियम है कि एक द्रव्यपिंड दूसरे द्रव्यपिंडको अपनी ओर खींचता है वह आकर्षण, और अगर ध्रुव समान हों तो अपकर्षण होता है. बिल्कुल ऐसा ही नियम अपनी अनुभूतियोंमें भी काम कर रहा है. किन्हीं विषयोंकी ओर हमारी इन्द्रियोंका आकर्षण होता है और किन्हींमे अपकर्षण. उदाहरणके तौरपर एक अनुपातमें प्रकाश तुम्हारे सामने आयेगा तो जिस वस्तुपर प्रकाश पड़ता होगा उन वस्तुओंपर तुम्हारी आंखे आकृष्ट होंगी. लेकिन एक अनुपातसे अधिक अनुपातमें अगर प्रकाश पड़ने लगे तो उस वस्तुपरसे हमारी आंखोंका अपकर्षण हो जाता है. जैसे अचानक सूर्य तुम्हारी आंखोंके सामने आ जाये अथवा कैमरेकी फ्लेश लाईट अचानक आंख ऊपर आ जाये तो आंख अपने आप मिच जाती हैं. अपकर्षण सिद्धान्तके कारण. औडिबल रेन्जके भीतर कोई भी ध्वनि उत्पन्न हो तो कानका आकर्षण होता है और इस रेन्जके बाहर जा कोई ध्वनि होने लगे तो कानका स्वाभाविक रीतिसे अपकर्षण हो जाता है. अर्थात् कान उससे विरक्त हो जाता है. यही बात आंखमें, कानमें, नाकमें, जीभमें कि स्पर्शमें सब जगह ही लागू होती है. जैसे कोई सुकोमल वस्तु हो, समशीतोष्ण हो तो स्पर्श होनेपर हमें स्पर्शका आकर्षण होता है. और तीखी हो, आग जैसी होय, बर्फ जैसी होय, सुई जैसी होय, तो स्पर्श होते ही हमारी इन्द्रियोंका अपकर्षण होता है.

क्लिफर्डमोर्गनकी दृष्टिसे व्यवसायात्मक ज्ञानसे तीन प्रकारकी अनुभूति :

(क) [१]उद्दीपनसे [२]स्नेह, स्नेहसे [३]आशा.
(ख) [१]उदासीनतासे [२]भय, भयसे [३]निराशा.

क्लिफर्डमोर्गन कहता है कि मूलतः इन इन्द्रियोंमें होते विषयोंके प्रति आकर्षण और अपकर्षण तुम्हारे भीतर तीन प्रकारकी अनुभूतियोंको उत्पन्न कर सकते हैं. उन अनुभूतियोंमें सबसे पहले तो उद्दीपन, जिसका तुम्हें आकर्षण हो रहा है उसकी ओर आंखमें उद्दीपन होगा. अर्थात् कोई भी वस्तु दिखाई दे तो उसे देखकर हम तुरन्त आंख फेर नहीं लेते, उसे देखते रहना ही चाहते हैं. कोई संगीत हमारे कानोंको अच्छा लगता है तो उसे एक बार सुननेके बाद हम कान बंद नहीं कर लेते. उसे सुनते रहना ही अच्छा लगता है. यह उद्दीपन कहलाता है. इस उद्दीपनका उल्टा है उदासीनता. जब अपकर्षण होता है तो विषय वहां ही होता है तो भी हमारी इन्द्रियोंको उदासीनता आयेगी. अर्थात् कहीं अधिक रोशनी आ रही हो तो फिर अपनी आंख उस तरफसे उदासीन हो जाती हैं और उस तरफ देखना नहीं चाहतीं बल्कि दूसरी ओर ही देखना पसंद करती हैं क्योंकि अधिक रोशनी आ रही है. आंख उस तरफसे उदासीन हो जाती हैं.

अब एक बात ध्यानसे समझो कि जिस विषयकी ओर तुम्हारी ज्ञानेन्द्रियोंका उद्दीपन भाव जागता है उनसे तुम्हारा स्नेह बंधता है. जिन विषयोंकी ओर तुम्हारी ज्ञानेन्द्रियोंकी उदासीनता प्रकट होती है उनसे तुम्हें किसी न किसी प्रकारका भय जागता है. क्योंकि उदासीनता उत्पन्न होनेके बाद तुम चुपचाप नहीं बैठ जाते परन्तु तुम उदासीनताकी जुगाली या धुनाई कर करके इसे भयके रूपमें देखने लगते हो. जैसे बॉम्बका धडाका होता है, उससे हमारा कुछ भी बिगड़ता नहीं है

तो भी हमारे दिलकी धड़कन बढ़ जाती है. किस कारण बढ़ जाती हैं? क्योंकि उस तरफ उदासीनता है कि आवाज नहीं सुननी, सुनें तो किसलिये? जैसे महाप्रभुजीके सिद्धान्त हम सुनना पसंद नहीं करते तो हमें उदासीनता आ जायेगो कि महाप्रभुजीके सिद्धान्त अगर कोई कह रहा है तो तुरन्त अपनी कर्णेन्द्रियोंको अपकर्षण हो जायेगा. उदासीन हो जाती हैं. इन सब प्रमाणोंकी बातोंकी तुम क्यों धुनाई या जुगाली कर रहे हो? कुछ प्रमेयकी चर्चा करो ना कि ठाकुरजीने कैसी बांसुरी बजाई और कैसे गोपियोंको वृंदावनमें बुलाया... आऽहाऽऽहाऽ आनन्द आनन्द आ गया! आज हमें यह सब अच्छा लगता है, सिद्धान्तकी चर्चामें आनन्द नहीं आता. क्योंकि कोई सिद्धान्त गले पड़ गया तो? इस बांसुरीके बजनेमें कुछ गले नहीं पड़ता क्योंकि वह तो कथामें आता ही है गोपियोंको उनके पति और कोई भाई वगैरह रोक नहीं सके. जोकि आज तो रोक लेते हैं भला! आज कोई ऐसे नहीं जाने देता पुलिसमें शिकायत कर देते हैं. किडनेपिंगका चार्ज लगाकर पकड़ा देंगे यह एक दूसरी कथा है, लेकिन इस कथाको भूल जाओ. सिद्धान्तकी कथामें हमें ऐसी ही उदासीनता आ गई है, और इस उदासीनताके कारण फिर भय होने लगता है कि कोई सिद्धान्त कहीं न बोल जाये. कितने ही वैष्णव ऐसे भी कहते हैं कि हम सत्संग करनेको तैयार हैं लेकिन मेहरबानी करके सिद्धान्त मत कहना. तो सत्संग किसका करोगे? एक दिलके टुकड़े हजार हुवे, एक यहां गिरा एक वहां गिराका सत्संग करना? स्प्लिट् पर्सनालिटि ऐसी ही होती है समझे! तो जब स्नेह या अप्रीतिके कारण उद्दीपन और उदासीनता होती है तो उसके बाद तीसरा स्टेप् क्लिफर्ड मोर्गन बहुत अच्छा समझाता है कि हमें आशा या निराशा आ जाती है. जिसमें अपना स्नेह हुवा उसमें एक बार स्नेह होनेके बाद हम निराश नहीं हो जाते. क्योंकि **आशा बलवती राजन् शल्यो जेष्यति पाण्डवान्.**

जो कुछ भी अच्छा लगता है उसकी आशा उत्पन्न हो जाती है. जिससे हमें भय लगता है उसकी हमें निराशा हो जाती है भगवान न करे कि तुम्हें किसी दिन सिद्धान्त सुननेसे कष्ट हो! ऐसी शुभकामना हम प्रेषित करने बैठें तो ऐसी निराशा हमें आ जाती है. और इस बारेमें क्लिफर्ड मोर्गन कहता है कि यह सारा जो मैकेनिज्म् है वह जागृतिमें होता व्यवसायका मैकेनिज्म् है. जिसके कारण मनुष्य कहीं तो सुख अनुभव करता है और कहीं क्लेशका अनुभव करता है. सुख अनुभव करता है वहां उद्वेग नहीं है. समझ लो क्लेश अनुभव करता है तो उसे महाप्रभुजी उद्वेग कह रहे हैं. यह क्लेश स्वाभाविक है, क्योंकि विषयोंके साथ हमारी ज्ञानेन्द्रियोंका जो लेन देन है उनमेंसे उद्भवित यह स्वाभाविक परिणाम है.

व्यवसायात्मक ज्ञान और अनुव्यवसायात्मक ज्ञान :

महाप्रभुजी इसे ना नहीं कहते, महाप्रभुजी ऐसे नहीं कहते कि तुम पुष्टिमार्गीय हो गये तो तुम्हें कोई छड़ी मारे तो तुम उसे ऐसा मानो कि यह तो फूलका स्पर्श हो रहा है. ऐसी वाहियात बात श्रीमहाप्रभुजी नहीं कह रहे. वार्ता पढ़ो तो तुम्हें पता चलेगा कि एक वैष्णव हाकिमनें दूसरे वैष्णवको कोड़े लगवाये थे. तो श्रीगुसांईजीने पूछा **एक वैष्णव होकर इतने अधिक कोड़े क्यों लगवाये**? हाकिमने कहा **यह वैष्णव था मुझे मालूम नहीं था.** तो गुसांईजी ने उस समय कहा **वैष्णव था यह शायद तुम्हें पता नहीं था लेकिन जीव है यह तो पता था कि नहीं**? अतएव एक बात समझो. सुखदु:ख सहन ही करने कि सुखदु:खके अनुभवको भ्रान्ति मानना ऐसी अस्वाभाविक बात महाप्रभुजी नहीं कह रहे. वह तो केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि तुम्हारे सुखदु:ख जो लगे हैं उनकी धुनाई या जुगाली कर करके इतना अधिक मत बढ़ा लो कि तुम्हारेमें लोभ, मोह, मद, मात्सर्य जैसे दुर्गुणोंका विकास हो जाये. जिसके कारण आखिरमें तुम्हें चिंताके प्रोसेस्में शामिल होना पड़े, उस चिंताकी मनाई

कर रहे हैं. क्लिफर्डमोर्गनने, यह चिंता कहांसे पैदा होती है, उसके स्रोतका जो विश्लेषण किया वह भी ध्यानमें लेने लायक है. इस बारेमें चिंताके स्वरूपके विवेचनकी हमारी जो पद्धति है उसमें हमारे यहां ऐसा भी कहा जाता है कि जो व्यवसायात्मक ज्ञान होता है उसके बहुतसे प्रकार आखिरमें एक अनुव्यवसाय ज्ञान प्रकट करते हैं. अनुव्यवसाय ज्ञान अर्थात् हम जो पर्दा दिखाई दे रहा है वह व्यवसाय, और जब तुम मनमें ऐसा विचारो कि मुझे परदा दिखाई देता है वह अनुव्यवसाय. परदा दिखाई दे रहा है वह व्यवसाय, और जब तुम मनमें अपने यह विचार लाओगे कि मुझे परदा दिखाई दे रहा है वह अनुव्यवसाय.

चिंताके कारण अनुव्यवसायात्मक ज्ञानके साथ नवरत्नग्रंथकी संगति :

अनुव्यवसाय रूपी ज्ञानके स्तर ऊपर एक बात ध्यानसे समझने लायक है जब हमें अनुव्यवसाय ज्ञान होता है तो उसमेंसे हमारेमें चिंता कि चिंतन दोनों उदभव होता है. ज्ञान अनुभवित होता है यह कामात्मक कि क्रोधात्मक होगा. लेकिन इस काम और क्रोधका जब तुम अनुव्यवसाय करोगे ... उदाहरणके तौर पर तुम लाल परदा देख रहे हो वह व्यवसाय है लेकिन जब तुम इस स्तर पर जाओगे कि मुझे लाल परदा दीख रहा है तो वह है अनुव्यवसाय. फिर तुम ऐसे भी कहोगे कि मुझे लाल परदा देखना है, फिर तुम ऐसे भी कहोगे कि मझे लाल परदा ही देखते रहना है. और बात आगे बढ़ी तो तुम ऐसे भी कहोगे कि लाल परदा मुझे नहीं दिखता तो मुझे तकलीफ होती है. फिर तुम ऐसे भी कहोगे कि अरे! वैष्णव तो अपने घरमें लाल परदा नहीं लगा सकते क्योंकि पुरुषोत्तम तो हम गो.बालकोंके घर ही बिराजते हैं. ऐसा लफड़ा हो जायेगा अर्थात् इस अनुव्यवसायके स्तरपर जाकर सब नौटंकी चालू हो जाती है चिंताकी. व्यवसायके स्तरपर इतनी नौटंकी चिंताकी नहीं होती. अनुव्यवसायात्मक ज्ञानको तुम चिंतामें जिस रीतिसे विकृत कर सकते हो उसी प्रकार

विचारो तो चिंतनमें भी बदल सकते हो अर्थात् उद्दात्तीकरण कर सकते हो. सारे नवरत्न ग्रंथका उपदेश इस अनुव्यवसायके स्तरपर उत्पन्न होती चिंताके ऐन्टीडोस् तरीके तुम्हें चिंतनका ऐसा उपदेश देनेके लिये है कि जिसके चिंतनके कारण तुम चिंता पर काबू पा सको.

<u>शारीरिकमानसशास्त्रानुसार चिंता और चिंतनकी समझ</u> :

इस चिंता और चिंतनकी मैकेनिज्म्के साथ साथ एक बात अभी और समझो. शारीरिकमानस शास्त्रानुसार आजका जो आधुनिक शारीरिक मानसशास्त्र है इसमें तीन सिस्टम् कहनेमें आते हैं. तीन अर्थात् पहले सिस्टम्को शारीरिक मानसशास्त्र औटोनोमस् सिस्टम् कहता है. दूसरेको सिम्पैथैटिक् सिस्टम् और तीसरे सिस्टम्को शरीरमें रहे हुवे पेरासिम्पथैटिक सिस्टम् कहता है.

(१) **<u>ओटोनोमस् सिस्टम्</u>** :

किसी भी विषयका बिना प्रयास जो ज्ञान होता है वह सब ओटोनोमस् सिस्टम् द्वारा होता है. प्रकाश तुम्हारी आंखोंके सामने आया. आंख ओटोनोमस् सिस्टम्से प्रकाशकी ओर जा सकती है. प्रकाश अगर अधिक पड़ रहा है तो ओटोनोमस् नर्वस सिस्टम्के द्वारा आंख प्रकाशके दूसरी ओर चली जायेगी. यह सब ओटोनोमस् नर्वस् सिस्टमके स्तरपर शरीरमें होता रहता है. कोई सुमधुर ध्वनि सुनाई देगी तो कान अपने आप उस ओर आकृष्ट हो जायेंगे. कोई कठोर ध्वनि सुनाई देगी तो कान अपने आप वहांसे अपकृष्ट हो जायेंगे. यह सब ओटोनोमस् सिस्टम् है.

(२) **<u>सिम्पथैटिक सिस्टम्</u>** :

शरीरमें रही हुई ज्ञानेन्द्रियोंके, कर्मेन्द्रियोंके वैसे सिस्टम्के कारण हमारे शरीरमें एक सिम्पथैटिक सिस्टम भी है. सिम्पथैटिक सिस्टम् जैसे धूमधड़ाका हुवा हो अब वह बौम्बका है

कि सिनेमाका है या किसका है? सिम्पथैटिक सिस्टम् तुमको सिग्नल् दे देगा कि भागो. यहां हिन्दु मुसलमानोंका दंगा हुवा था तो उस समय मैंने ऐसा सुना कि कालबादेवीमें लोगोंमें भगदड़ मच गई थी. किसीको पता ही नहीं चला कि किस कारण भाग रहे हैं? किसीने किसीसे पूछा **भाई क्या हुवा क्यों भाग रहे हो?** तो वह बोला कि गाय भागी तो उसकी चपेटमें न आ जाऊं इसलिये भागा. एक आदमीने भागना शुरु किया तो दूसरेने भी भागना शुरु किया और रस्ते चलते सब आदमी भागने लगे, दुकानें बंद होना शुरु हो गईं, दंगा हो गया! अब कौन किससे पूछे कि पहले गाय कैसे भागी? जो भागनेकी प्रक्रिया शुरु हुई सिम्पथैटिक सिस्टम्से कि लोग भाग रहे हैं तो हमें भी ऐसा लगे कि सारे लोग क्या बेवकूफ हैं जो भाग रहे हैं? एसे ही हम सबने सिद्धान्तोंसे भागना शुरु किया, कि बड़े बड़े बालक लोग भी सिद्धान्तोंसे भाग रहे हैं तो हम क्या बेवकूफ हैं जो हम वहां खड़े रहें? भागो, भागो, भागो मच गया. बादमें पता चला कि हिन्दु मुसलमानोंका दंगा नहीं हुवा था, खाली गाय भागी थी. गाय भागे तो मनुष्यको रस्ता देनेकेलिये भागना तो पड़ेगा ही ना! हमको सिग्नल मिले तो तदानुसार काम हम विचार विवेकके बिना ही करते हैं. इसका नाम सिम्पथैटिक सिस्टम्. यह सिम्पथैटिक सिस्टम् जब ओवरएक्ट होता हैं तो उस समय चिंताके सभी कारण खड़े हो जाते हैं.

(३) **<u>पैरासिम्पथैटिक सिस्टम</u>** :

इस सिम्पथैटिक सिस्टम्पर काबू पाना हो तो किसी न किसी पेरा-सिम्पथैटिक सिस्टम्को देखना पड़ेगा जिसके लिये तुम्हें थोड़ा रुकना पड़ेगा, अरे भाई जरा विचार तो करो कि आखिरमें हुवा क्या है? किस कारण लोग भाग रहे हैं? मैं जब बनारस पढ़ने गया था वहां मुझे जब तब ऐसी गड़बड़ीओंका सामना करना पड़ता था. बनारसकी गलियां बहुत संकरी और वहां बारात आवे और वरराजा बिचारा घोड़ेके ऊपर बैठा हो,

आगे बैंडवाले धमधमाधम बैंड बजाकर चलते हों, पीछे वरराजा घोड़के ऊपर बैठकर आ रहा हो. ऐसेम कोई भैंस आ जाये! तो पहले तो बैंडवाले भागकर दुकानोंके ऊपर चढ़ जायें लेकिन वरराजा तो घोड़ेके ऊपर बैठा है. वह उतरे तो वरराजा की शानमें बट्टा लगे, और भैंसको तो समझमें आती नहीं कि यह वरराजा है. यह भैंसका वरराजा हो तो भैंस पहचाने. लेकिन मनुष्यके वरराजाको भैंस कैसे पहचाने? अतएव गलीओंमें भागमभाग चालू हो जाती, इस दौड़ादौड़में मैं भी बहुत बार भागा हूं कि भैंस आ गई. कोई दुकानमें चढ़ जाये, कोई मकानमें घुस जाये, क्योंकि पहले तो भैंस बैंडवालोंसे भड़के, भैंसको पता ही नहीं चलता कि यह क्या बज रहा है. मेरी आवाजमें क्या खराबी थी कि तुम यह बैंड बजा रहे हो? उसे इसकी शायद चिंता होती होगी. अतएव इसे अजीबसा लगे और यह भागे. बाराती लोग दुकानमें चढ़ें, बैंडवाले चढ़ जायें और फिर हमें पता ही नहीं चले कि किस चीजकी यह भगदड़ है. ऐसे समय मैंने भी पच्चीसों समय भागमभाग करी है. लेकिन एक बार शांतिसे विचारो कि भैंस बिचारी सींग मारनेके लिये नहीं भागी वह तो हमसे खुद डर कर भाग रही थी. तो हमें वहां रुक जाना चाहिये. ऐसे समय हमें क्यों भागना चाहिये? भैंस सींग मारे ऐसी भैंस नहों होती. भैंस बहुत स्थितप्रज्ञ प्राणी होती है. अतएव थोड़ा बहुत पेरा-सिम्पथैटिक सिस्टम् हमें इनवोक करना चाहिये चिंतनकी प्रणालीसे, तो फिर हम सिम्पथैटिक सिस्टम्के ऊपर काबू पा सकते हैं. जैसे कोई तुम्हें एक तमाचा मारे, तो तुम्हारा हाथ उठता है कि नहीं, यह सिम्पथैटिक सिस्टम् है. किसीने तमाचा किस कारण मारा, थोड़ा पेरा-सिम्पथैटिक सिस्टम्को इनवोक करोगे तो काबू आयेगा और समझोगे. तब तुम अपने आपको तमाचा मारनेसे रोक सकते हो. अथवा तो अन्य दूसरे उपाय कर सकते हो. ऐसे किसी प्रकारका सिस्टम् पेरा-सिम्पथैटिक सिस्टम होता है. निद्रा भी किसी प्रकारका बिल्ट् इन पेरा-सिम्पथैटिक सिस्टम है. योगशास्त्रमें जो समाधि

वर्णन करनेमें आती है वह भी अपने शरीरमें रही हुयी पेरा-सिम्पथैटिक सिस्टम्‌को मजबूत बनानेकी साधना है. रूक्ष और मृदु विषयोंके इन्द्रियोंके साथ होते जो संघर्ष है इसमें किसी प्रकारके एक ऐसे पेरा-सिम्पथैटिक सिस्टम्‌को हम खोज लेते हैं कि जिससे **शीतोष्ण सुखदु:खेषु तथा मानापमानयो:** सबको हम झेलनेकेलिये समर्थ बन जाते हैं. इन्हें सिम्पथैटिक सिस्टम्‌के लेवलपर नहीं झेल सकते. पेरा-सिम्पथैटिक सिस्टम्‌को अगर हम डेवलप् करेंगे तो झेल सकेगें.

पेरासिम्पथैटिक सिस्टम्‌को जगानेपर चिंतापर काबू पाया जा सकना :

महाप्रभुजी नवरत्नमें सिम्पथैटिक सिस्टम्‌को इन्वोक नहीं कर रहे. तुम्हारे अन्दर रही हुई पेरा-सिम्पथैटिक सिस्टम् जो है उसे इन्वोक कर रहे हैं: **चिन्ता कापि न कार्या निवेदितात्मभि: कदापीति। भगवानापि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीञ्च गतिम्।।** यह बात तुम सिम्पथैटिक सिस्टमसे समझने जाओगे तो बहुत कठिनता होगी लेकिन पेरा-सिम्पथैटिक सिस्टम्‌से समझोगे तो धीरे धीरे सिम्पथैटिक सिस्टम्‌में भी यह बात आ सकती है. यहां महाप्रभुजी क्या उपदेश देना चाह रहे हैं कि **चिन्ता कापि न कार्या, विनियोगेऽपि त्याज्या, निवेदने त्याज्या, चित्तोद्वेगं विधायापि यद् यद् करिष्यति तथैव तस्य लीलेति मत्त्वा त्याज्या.** यह त्याज्या, त्याज्या, त्याज्या जो इतनी बार कहा है यह तुम्हारी पेरा-सिम्पथैटिक सिस्टम्‌को इन्वोक करनेकेलिये. **त्याज्या-त्याज्या** कह रहे हैं, किसी प्रकार सिम्पथैटिक सिस्टम्‌से जो इतना उपद्रव कर रहे हो, दौड़भाग कर रहे हो, भैंस आ गई तो भागो, भागो, भागो! लेकिन सींग मारने आई कि खुद घबड़ाकर भागी? मोटे तौरपर शहरमें रहने वालोंको एक लफड़ा होता है कि हमें सांप दिखाई दे अतएव सिम्पथैटिक सिस्टम् इतना अधिक उत्तेजित हो जाता है कि सांप जहरी हो या न हो, मारो! मारो! मारो! ऐसी मार मार मच जाती है कि बेचारा सांप जहरी न भी हो तो भी उसे मार ही डालते

हैं. यह क्या है? यह सिम्पथैटिक सिस्टम्का लफड़ा है. क्योंकि सिम्पथैटिक सिस्टम्को हर समय चौकन्ना रहना पड़ता है. जरा भी चौकन्ने रहनेमें सिम्पथैटिक सिस्टम् चूका तो क्या होता है? तुम रोड पार कर रहे हो और सोचो कि गाड़ी आ रही है, तब तुम्हें आगे जानेमें या पीछे जानेमें कौन हैल्प करता है? पेरा-सिम्पथैटिक नहीं और औटोनोमस् भी नही सिम्पथैटिक सिस्टम् तुरन्त तुम्हारे पैरमें कोई ऐसी गति लायेगा कि तुम इस पार या उस पार हो जाओगे. एक बात समझो मैंने कई बार कुत्तोंको रोड पार करते समय पहले इस ओर और फिर दूसरी ओर देखते हुवे देखा है. तुम भी औब्सर्व करोगे तो तुम्हें भी मजा आयगा. कुत्तोंको इतनी खबर तो है कि रोडको अचानक ही पार नहीं करना. जिस ओरसे गाड़ी आ रही है उस तरफ देखकर फिर कुत्ते रोड पार करते हैं. इस बीचमें इसे अगर ऐसा लगता है कि कुछ गड़बड़ है तो पीछे भी लौट जाता है. यह तो मैंने भी देखा है. अतएव इसमें तीन सिस्टम् काम कर रहे हैं. सिम्पथैटिक सिस्टम्, ओटोनोमस् सिस्टम्, पेरा-सिम्पथैटिक सिस्टम् यह तीनों सिस्टम् एक साथ ही शरीरमें काम करते हैं. प्रभुने ऐसा सिस्टम् इस शरीरके अन्दर खड़ा किया अतएव उद्वेग तो होगा ही, सुख दु:ख भी होंगे ही. लेकिन यह इस औटोनोमस् सिस्टमसे होगा, और इस उद्वेगके कारण कहीं हम ऐसी दौड़धूप शुरु कर देंगे. लेकिन वह सिम्पथैटिक सिस्टम्से होगा और पेरा-सिम्पथैटिक सिस्टम् से होगा. लेकिन महाप्रभुजी पेरा-सिम्पथैटिक सिस्टम्पर जाकर तुम्हें कह रहे हैं: **विवेकस्तु हरि: सर्व निजेच्छात: करिष्यति; त्रिद:ख सहनं धैर्यम् आमृते: सर्वत: सदा; अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा शरणं हरि:** (विवेकधैर्याश्रय: १,६,११)

यह सब जो उपदेश हैं वह तुम्हारे पेरा-सिम्पथैटिक सिस्टम्के स्वीचको ऑन करनेके उपदेश हैं.

चिंतन कि चिंता/निर्विषय अथवा सविषय :

चिंता अथवा तो चिंतन, दोनों दो प्रकारके हो सकते हैं एक निर्विषय चिंता भी हो सकती है. और इसी प्रकार सविषय चिंता भी हो सकती है. उसी प्रकार निर्विषय चिंतन भी हो सकता है और एक सविषय चिंतन भी हो सकता है.

निर्विषय चिंतन :

निर्विषय चिंतनका एक बहुत सरल उदाहरण देता हू तो तुम्हें जल्दी समझमें आ जायेगा. हांलाकि इसे आजकी तारीखमें देनेका मैं अधिकारी नहीं हूं. फिर भी उदाहरण है जो कि दे रहा हूं. ऐसे मत समझना कि मैं इसे कहनेका अधिकारी हूं इसलिये दे रहा हूं. मैं मेरा अपराध कबूल करके इस बातको कह रहा हूं. सोचो कि तुम्हें नींद नहीं आती हो तो पुस्तक पढ़ना शुरु करदो नींद आ जायेगी. इसके बाद भी नहीं आती हो तो माला फेरनी चालू करो **श्रीकृष्ण:शरणंमम, श्रीकृष्ण:शरणंमम्.** अब कब शरणंमम हुवा और कब श्रीकृष्ण गये पता ही नहीं चलेगा! ऐसी नींद आती है.

यह क्या है? चिंतनकी पक्रिया द्वारा निद्रामें जानेका एक प्रकार है. बहुत सारी प्रक्रियायें योगनिद्राकी जो बतानेमें आती हैं वैसीकी वैसी यही प्रक्रिया बतानेमें आती है कि तुम्हें नींद नहीं आती हो तो क्या करना? पहले अंगूठेका ध्यान धरो, फिर एड़ीका ध्यान धरो, फिर घुटनोंका ध्यान धरो, पेटका ध्यान

धरो, छातीका ध्यान धरो, माथेका ध्यान धरो, माथेके अन्दरका ध्यान धरो, फिर भीतर जाओ, फिर बाहर आओ. चार पांच बार तुमने अन्दर बाहर किया तो नींद आ जायेगी. क्योंकि चिंतन करनेकी शक्ति तो है नहीं इसलिये नींद आ ही जाती है, चिंतनकी प्रक्रियासे. भगवानका नाम लो, नाम लेते लेते नींद आ जायेगी. कोई बहुत परेशान हो गया हो तो गोलीसे ही नींद आती हो तो यह एक अलग कथा है. तो यह एक प्रक्रिया है पेरा-सिम्पथैटिक सिस्टमकी. समाधि लगानेकी जिसे शुद्ध सात्त्विकी निद्रा कह सकते हैं यह निर्विषय चिंतन है. चिंतनको निर्विषय किस प्रकार बना सकते हैं? कोई भी एक विषय पकड़ लो. जब भी तुम दस विषयोंका ध्यान करते हो तब तुम्हें जागृत रहना पड़ता है. लेकिन एक विषयका ध्यान धरो बस. ठाकुरजीके चरणार्विन्दका ध्यान धरो. चरणार्विन्दही जरूरी नहीं हैं अपने लड़केका ध्यान धरो, थोड़ी ही देरमें नींदका झोका आने लगेगा. क्योंकि मनका स्वभाव ऐसा नहीं है कि एक विषयका ध्यान धरे. एक विषयका ध्यान जब हम धरते हैं तो मनको ऐसा सिग्नल मिलता है कि अब कुछ आशा नहीं है. केस निराशासे भरा है अर्थात् मनको नींद आ जाती है. अतएव हमको भी नींद आ जाती है, क्योंकि मनकी बनावट ऐसी चंचल है कि यह देखूं कि वह देखूं, यह करूं कि वह करूं, यह सब फेसिलिटी देनेके बाद नींद आनेका प्रश्न ही नहीं रहता. जबकि एक विषयमें तुम मनको केन्द्रित करना चाहते हो और मन कहता है कि यह सब होपलेस सिच्युएेशन बन गई है. किसीकी भी जब ऐसी स्थिति आती है तो तुरत चिंतन तुम्हें समाधिकी ओर धकेल देगा. प्रभुने यह सामर्थ्य प्रत्येकको दी है. प्रवाहमार्गमें भी यह सामर्थ्य है. अतएव पुष्टि प्रवाह मर्यादा इन तीनोंमें यह सामर्थ्य समानरूपसे उपलब्ध है. लेकिन मर्यादामें योगसमाधिकी प्रक्रिया है जाग्रत रहकर निद्रा. अर्थात् इन्वोलेन्टरी स्लीपसे अलग एक वोलन्टरी स्लीप. वोलन्टरी अर्थात् इच्छापूर्वक लायी गई नींद और अनिच्छासे आती नींद वह सामान्य नींद. लेकिन योगने ऐसी

ऐसी प्रक्रियायें खोज ली हैं कि जिन प्रक्रियायोंके कारण तुम इच्छासे नींद को ला सकते हो. और इस इच्छा द्वारा लाई गई नींदको योग **निर्विकल्प समाधि** कहता है. तुम जाग्रत रहकर नींदको ला सकते हो इच्छासे. यह मर्यादामार्गीय पेरा-सिम्पथैटिक सिस्टम् है चिंतनमें से एकदम निश्चिंत होनेके लिये.

सविषय चिंतन :

उसके अतिरिक्त सविषय चिंतनकी भी एक प्रक्रिया है. यह भी ध्यान देने लायक है. कोई ऐसा विषय कि जिसमें किसीको कोई उपदेश या आदेश नहीं है. हरेककी अपनी अपनी रुचि इसमें काम करती है, उदाहरणार्थ तुम गाओ, तुम नाचो, पेन्टिंग करो, क्रिकेट खेलो तो उसमें एक प्रकारकी समाधि लग जाती है. जिस विषयमें हमारा अतिशय रुचिवाला अभिगम होता है. जिस विषयसे हमारे सिप्पथैटिक सिस्टम् और औटोनोमस सिस्टम्को कोई लाभ मिलता नहीं है. हम पेरा-सिम्पथैटिक सिस्टम्के ऊपर जाकर ऐसा डिसाईड कर लेते हैं कि अब मुझे क्रिकेट खेलनी है तो फिर एक प्रकारकी समाधी लग जाती है. चाहे कोई भी धूमधड़ाका होता हो, बंदूकें चलती हों लेकिन अगर मनुष्य खेलता हो तो खेलता रह सकता है. कोई पेन्टिंगमें मस्त हो तो पेन्टिंगमें मस्त रह सकता है.

पिकासो नाम आप लोगोंने सुना होगा. फ्रान्सकी राजधानी पेरिसके ऊपर जब बोम्बार्डमेन्ट हो रहा था तब उस समय पिकासो चित्र बना रहा था, एकदम अपनी मस्तीमें और जब बोम्बार्डमेन्ट पूरा हो गया और पेरिस जर्मनीके आधीन हो

गया तब वहां जर्मन सैनिक हाउस टू हाउस सर्च करते हुवे आये. पिकासोके घर भी आये और पूछा **तुम कौन हो**? इसने कहा **मैं चित्रकार हूं.** सैनिकों ने पूछा **यह चित्र किसने बनाया है**? पिकासो ने कहा **यह चित्र तुमने बनाया!** वास्तवमें अगर आप चित्रको देखो तो ही ध्यानमें आयेगा. मेरे कहनेसे आपको ध्यानमें नहीं आयेगा कि बोम्बार्डमेन्टकी जो क्रूरता पिकासोने समाधीमें अनुभूतकर चित्रके रूपमें पेश की है. गुआर्निका नामका चित्र देखोगे तो इतना क्रूर लगेगा जैसे कि सारे शहरमें बोम्बार्डमेन्ट हो रहा है. चित्र निर्माण भी एक प्रकारकी समाधि सिद्ध करा सकती है. पिकासोने ना कर दिया कि मैंने नहीं बनाया, तुमने बनाया है. क्योंकि शहरके ऊपर अत्याचार पिकासो नहीं बल्कि जर्मन सेना बोम्बार्डमेन्टके द्वारा कर रही थी. जैसे दर्पण अपने सामने हो और प्रकाश आता हो तो वह रिफ्लेक्शन प्रकट कर देता है. ऐसे ही जर्मन सेना बोम्बार्डमेन्ट कर रही थी तब चित्रकार पिकासो केवल एक दर्पणका काम कर रहा था. जो कि गुआर्निका पेन्टिंगमें रिफ्लेक्ट हुवा.

इसमें सहज समाधि जैसी सिद्धि हो जाती है. ऐसे ही खेलमें, कलामें, सामान्य रीतिसे प्रत्येकमें समाधि खिलती है. कितने खेलनेवाले इस बातको अच्छी तरहसे समझ सकते हैं कि हड्डी टूट जाय, फट जाये लेकिन चाहे खेलनेवाले हों या युद्ध करनेवाला हो वह तो खेल या युद्ध चालू ही रखता है. सौ सौ पचास पचास साठ साठ घाव शरीरपर लगे हों तो भी लड़नेका अगर मौका आया तो शूरवीर तो लड़ता ही रहेगा. यह भी एक प्रकारकी समाधि ही है. लेकिन यह सविषय समाधि है. सक्रिय सविषय समाधि है. ऐसी समाधि फिर प्रवाह मर्यादा कि पुष्टि तीनोंमें हो सकती है. इस बातको भूलना नहीं चाहिये.

इनके अतिरिक्त इस प्रकारकी समाधि शास्त्रमें जो साधनायें दिखानेमें आई हैं: जप, तप, उपासना, ज्ञान, योग,

वैराग्य, संन्यास इत्यादिमें भी, ऐसी क्रीडात्मिका समाधिमें कोई भी मनुष्य तन्मय हो सकता है.

जैसे महावीरकी जीवनीमें आपने पढ़ा होगा या सुना होगा कि महावीर समाधि लगाकर बैठे थे तो ग्वालेने आकर इन्हें कहा **मेरी गायोंको सम्हालना.** महावीरने तो सुना नहीं और ग्वाला चला गया. बादमें गायें कहीं चली गई, और ग्वाला आया, और इसने देखा कि मेरी गायें कहां चली गईं? महावीर तो सुन नहीं रहे थे समाधिके कारण. अतएव इसे ऐसा लगा कि यह तो महान पाखण्डी आदमी है, गाय चुरा लीं. अतएव इसने महावीरके कानमें कांटे भर दीये. लेकिन महावीर स्वामी फिर भी ऐसे ही बैठे रहे. क्योंकि एक तपकी समाधि इनको लग गई थी. ये बेखबर नहीं थे, बेहोश नहीं थे, लेकिन अपने तपकी समाधिमें इतना अधिक हाशमें थे कि दूसरा और कोई होश इन्हें नहीं था. जैसे खेलनेवाला मनुष्य, एक युद्ध करने वाला योद्धा, युद्धमें कि खेलमें इतना अधिक होश प्राप्त कर लेता है, जैसे पिकासोने इतना अधिक होश अपनी पेन्टिंगके क्रियेशनमें प्राप्त कर लिया था कि उसे पता ही नहीं चला कि यह साराका सारा पेरिस कब ध्वस्त हो गया. पेरिस सरेन्डर हो गया और अन्दर वह कमरेमें बैठा बैठा पेन्टिंग कर रहा था. इसे भागनेकी इच्छा नहीं हुई. कोई घबराहट भी नहीं हुई, इसे बोम्बार्डमेंटकी आवाजें सुनाई दे रही थी और इसकी पेन्टिंग चालू थी. बहुत महान पेन्टिंग है. वैसे ही कभी शास्त्रीय कर्मकी भी समाधि लग सकती है. जिसे हम कर्म समाधि कहते है. ज्ञानसमाधि कहते हैं, तपःसमाधि कहते हैं, वैराग्यसमाधि कहते हैं, यह सब समाधि सविषय होती हैं.

नवरत्नके उपदेश द्वारा पुष्टिमार्गीय सविषय समाधिसे चिंताका उद्वात्तीकरण:

उसके ही समानान्तर अपनी पुष्टिमार्गीय समाधिके स्वरूपको समझो. हमारे यहां सेवा, कथा, यात्रा, शरणागतिकी

प्रक्रियामें ऐसी समाधि हम भी प्राप्त कर सकते हैं कि हमें पता ही न चले कि बाहर क्या हो रहा है. कौन आ रहा है? कौन जा रहा है? उनका विचार हमें नहीं आये तो यह अपनी कथा, सेवा, यात्रा, शरणागतिमें प्राप्त हुई एकाग्रता भी एक सविषय समाधि बन जाती है. यह सविषय समाधि जिसको प्राप्त होती है, वह चिंताको तुरन्त समाप्त कर देती है. क्योंकि यह समस्त वस्तुयें पेरा-सिम्पथैटिक सिस्टम्के स्तरपर होती हैं. सिम्पथैटिक सिस्टम्में यह नीचे उतर सकती हैं. सिम्पथैटिक सिस्टम्से शुरु नहीं हो सकती. प्रभु चाहें तो करा सकते हैं लेकिन जीवकी सामर्थ्यमें यह बात नहीं है. अतएव चिंतारूप व्यवसायज्ञानको अपनेको समझना हो तो - **संशयोऽथ विपर्यासो निश्चय: स्मृतिरेव च। स्वाप इत्युच्यते बुद्धेर्लक्षणं वृत्तित: पृथग्।।**

अतएव संशयात्मक चिंता, निश्चयात्मक चिंता, स्मृतिरूप चिंता, भ्रमणात्मिका चिंता, स्वाप्निक चिंता, ऐसी बहुतसी चिंताओंका स्वरूप हमारे यहां हो सकता है. वे कितनी कितनी चिंतायें हैं. वह अपने पुष्टिमार्गीय संदर्भमें जब चिंताओंका इस प्रकार वर्गीकरण एवं विश्लेषण करें तो हम पता चलेगा कि किन किन चिंताओंका इलाज किस किस चिंतनसे हो सकता है. यह जो चार्ट मैंने तैयार करके आप सबको दिया है, मुझे लगता है कि आज तो अब चान्स नहीं मिलेगा लेकिन कल हम जरूर इस विषयपर बात करेंगे. स्मृतिसे प्रकट हुई चिंता अथवा स्मृतिसे प्रकट हुवा इसका चितन, संशयसे प्रकट हुई चिंता अथवा तुम्हारे भीतर एक ऐसी पेरा-सिम्पथैटिक सिस्टम् खड़ा कर देगी कि जिससे ऐसा संशय होने लग जाये कि **चित्तोद्वेगं विधायापि हरि: यद्यत् करिष्यति तथैव तस्य लीलेति मत्वा चिंतां द्रुतं त्यजेत.** (नवरत्न - ८)

पेरा-सिम्पथैटिक सिस्टम्पर महाप्रभुजी तुम्हारे अन्दर एक संशय उत्पन्न कर रहे हैं कि तुम कोई निर्णय ले क्यों लेते

हो! प्रत्येक समय एक संशय रखो कि भगवान् क्या करना चाह रहे हैं? हमें क्या पता चलेगा? अतएव तुम चिंताके ऊपर काबू पा सकते हो. अतएव कभी स्मृतिसे उत्पन्न होती चिंता, कभी निश्चयसे उत्पन्न होती चिंता, कभी भ्रमसे उत्पन्न होती चिंता, कभी स्वप्नसे होती चिंता, इनका कभी स्वप्नसे इलाज है, कभी संशयसे इलाज है. **निवेदनम् तु स्मर्तव्यम्**में स्मृतिके उपायसे चिंताका इलाज है. चिंतनमें पेरा-सिम्पथैटिक सिस्टम्के स्तरपर ले जानेका सारा अभिगम महाप्रभुजीने स्वीकारा है. अतएव एक केवल मानसशास्त्रकी दृष्टिसे महाप्रभुजीके उपदेशकी प्रणालीका तुम विश्लेषण करो तो हैरान रह जाओगे कि अपना आचार्य कैसा है! इसने मनुष्योंके मानसकी कितनी सावधानी रखी है! एक एक माइन्यूट् विवरणके साथ. हमें इसकी खबर कब पड़ेगी कि जब हम इस चार्टको देखेंगे. अतएव चिंताका यह सारा प्रकरण आखिरमें किस कारण खड़ा हुवा? इस कारण कि हमने समर्पण किया है. समर्पण किया है किसलिये? तो भोगके ऊपर काबू पानेकेलिये. भोगके ऊपर काबू पानेकी प्रक्रियामें चिंतन प्रकट न होकर चिंता प्रकट हो सकती है. चिंता प्रकट हो सकती है तो उसके कारण हम कहीं टूट न जायें, उसके कारण हम खत्म न हो जायें. महाप्रभुजीने चिंताका चिंतनमें उद्दात्तीकरण करनेकेलिये नवरत्नका उपदेश दिया है.

समर्पणके बाद भगवत्सेवा करते हुये प्रकट होती प्रतिक्रिया चिंता अथवा चिंतनके दोनोंके रूपमें हो सकती है. अगर हमने समर्पण नहीं किया हो तो जो हमारी भक्ति है वह पुष्टिभक्तिके रूपमें फलित नहीं होती. भगवत्सेवामें पुष्टिमार्गीयता लानेकेलिये प्रभुकी सेवा समर्पणपूर्विका होनी आवश्यक है. जैसे सिद्धान्तरहस्य ग्रन्थमें समझानेमें आया है कि **निवेदिभिः समर्प्यैव कुर्यादिति स्थितिः** तो यह समर्पणपूर्विका सेवा जो हम अगर अच्छी तरहसे निभा नहीं सकते तो महाप्रभुजी, **सेवायां वा कथायां वा** ऐसे एक अनुकल्पके तौरपर कथाको बादमें लाते हैं.

जो समर्पणपूर्विका सेवा नहीं करता तो उसकी भक्तिको पुष्टिभक्तिके तौरपर खिलनेकेलिये एक कठिन कोर्स बन जाता है. अतएव महाप्रभुजीने **गृहेस्थित्वा स्वधर्मत: अव्यावृत्तो भजेत् कृष्णम् पूजया श्रवणादिभि:** के ऊपर भार दिया है. क्योंकि तुम समर्पणपूर्वक सेवा करोगे पुष्टिभक्तिको खिलानेके लिये, तो तुम्हारे अन्दर रही हुवी सृजनात्मकशक्तिको तुम्हारा पूरा पूरा लाभ मिलेगा. नहीं ता कदाचित तुम्हारे अन्दर किसी प्रकारका फ्रस्ट्रेशन है. क्योंकि तुम्हारी सृजनशक्ति सेवाकी प्रक्रियाके बिना कुंठित हुई तो कथाकी प्रक्रियामें सृजनशक्तिको फिरसे प्रकट करना बहुत मुश्किल काम है. ऐसा कठिन कार्य होनेके कारण महाप्रभुजी सेवाको इतनी प्राधान्यता देते हैं. अतएव समर्पणपूर्विका सेवा जो नहीं करता उसे पुष्टिभक्तिको खिलानेमें किसी प्रकार की कठिनाई होती है. थोड़ासा कोर्स मुश्किल हो जाता है.

समर्पणपूर्वक सेवा करनेवाले भक्तको निश्चिंत होना जरूरी :

जो निश्चिंत होकर भक्ति नहीं करता उसे भक्ति सिद्ध ही नहीं होती. भक्तिको पहली शर्त है निश्चिंतता. समर्पणसे भी किसी अर्थमें नैश्चिंत्य बहुत बढ़कर महत्वपूर्ण कदम है पुष्टिमार्गमें. अगर तुम निश्चिंत नहीं हो तो फिर तुम भक्त बन ही नहीं सकते. क्योंकि चिंता आखिरमें तुम्हारी किस वस्तुको हानि पहुंचायेगी? सेवाको हानि नहीं पहुंचाती, चिंतामें परायण रहकर तुम सेवा कर सकते हो. लेकिन जो तुम्हारा चित्त चिंतामें परायण है तो यह भक्तिमय चित्त नहीं होगा. चिंतामें तल्लीन चित्त भक्तिमय नहीं होता, सेवा तो शरीरसे होती है, कर सकते हैं लेकिन जैसे बैलगाड़ीमें हम बैलको जोड़ देते हैं तो यह चलता है ता उसी प्रकार तुम भी बैलकी तरह सेवामें चल सकते हो. लेकिन जो सेवाको भक्तिके स्तरके ऊपर खिलाना हो तो पहली शर्त है निश्चिंतता.

चिन्ता कापि न कार्या निवेदितात्मभिः कदापीति।

भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीञ्च गतिम्।।

अतएव निश्चिंत होना तुम्हारी सेवाको, तुम्हारी कथाको, तुम्हारी शरणागतिको, तुम्हारी यात्राको, पुष्टिभक्तिके रूपमें खिलानेकेलिये पहली शर्त और आखिरी शर्त है. निश्चिंत हैं तो यह सब हो सकता है. और चिंता सहित इसमेंसे कुछ भी किया तो कुछ न कुछ गड़बड़ खड़ी रहनेवाली ही है और रहेगी ही. इस संसारको हम भवसागर कहते हैं. हमारे यहां जब बरसात पड़ी थी तो तुमने अखबारमें पढ़ा होगा कि मरीनड्राईवके किनारेपर से एक लड़की जा रही थी तो समुद्रमें से एक ऐसी लहर आई कि उसे उठाकर समुद्रमें ले गई किनारेसे एक डेढ़ किलोमीटर दूर. उसे हेलीकॉप्टरसे उठाना पड़ा. इसी प्रकार हम इस संसारसागरके बीचमें अगर हों तो भी निश्चिंत अगर होंगे तो कोई एक लहर हमें पुष्टिभक्तिके किनारेपर पहुंचा सकती है. जैसे हेलीकॉप्टरने उसे फिरसे किनारे पहुंचा दिया. और अगर हम पुष्टिभक्तिके किनारेपर भी चिंता करते बैठे रहेंगे तो जैसे पहले किनारेपर से लड़कीको जिस प्रकार लहर समुद्रके भीतर खींच ले गई थी उसी प्रकार हम फिरसे भवसागरमें डूब सकते हैं. इसी कारण सिद्धान्तरहस्यके बाद नवरत्न ग्रंथ चेतावनीके रूप में है. भक्ति करते करते भी कोई लहर ऐसी आ सकती है कि भवसागरमेंसे, अर्थात् तुम्हारी कामकी मनोवृत्तिमेंसे, तुम्हारे क्रोधमेंसे, तुम्हारे उद्वेगमेंसे, कोई एक ऐसी लहर आ सकती है.

वार्ता साहित्य ऐसी बातोंसे भरा पड़ा है. नंददासजीको किसी सुन्दरीके प्रति कामभावनाकी जो लहर जागी तो उसको गुसांईजी तलक घिसटा कर ले गई. अतएव भवसागरमें उभरती लहर भी कभी कबाद जीवात्माको, पुष्टिबीजभाव हो तो,

पुष्टिभक्तिके किनारे फैंक देती है. शर्त केवल इतनी कि तुम निश्चिंत रहो:

चिन्ता कापि न कार्या निवेदितात्मभि: कदापीति ।

भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीञ्च गतिम् ।।

<u>सुखदु:खादिके आवर्तनसे जीवनकी जीवंतता</u> :

हम सब अच्छी तरहसे जानते हैं कि पृथ्वी सूर्यके चारों ओर घूमती है. उसके कारण गरमी और बरसातके ऋतुचक्रका आवर्तन चलता रहता है. दिन और रातका, निद्रा और जागरणका आवर्तन चलता ही रहता है. जब हम जागते हैं तब विषयोंके साथ हमारी इन्द्रियोंका आकर्षण अथवा अपकर्षण होता है. अर्थात् किन्हीं विषयोंके प्रति इन्द्रियां आकृष्ट होती हैं और किन्हीं विषयोंके साथ इन्द्रियां अपकृष्ट हो जाती हैं. और उन विषयोंके प्रति हमारी इन्द्रियोंमें रहे हुवे आकर्षण या अपकर्षणके कारण हमारी इन्द्रियोंमें कभी उत्तेजना अथवा उदासीनताका चक्र चलता रहता है. उस उत्तेजना अथवा उदासीनताके कारण जो विषय हमें उत्तेजित करता है उसमें हमारा किसी प्रकारका स्नेह बंध जाता है. जिस विषयसे हम उदासीन होते हैं तो उस विषयसे हमें किसी प्रकारका डर लगने लगता है. उसके कारण आशा निराशाका चक्र चलता है. इन विषयोंके सम्पर्कके कारण हमें अन्तमें कोई न कोई सुख अथवा क्लेश होता रहता है. जब क्लेश होता है तो उसे हम दु:ख, उद्वेग ऐसे नाम देते हैं. उसीके अनुसंधानमें कल मैंने यह बात समझाई थी कि काम और क्रोध यह हमारे विषयोंको देखनेके मूल हैं. उदाहरणतया कोई छोटी वस्तु देखनी हो तो हम आईग्लास प्रयोग करते हैं दूरकी वस्तु देखनी हो तो हम दूरबीनका प्रयोग करते हैं उसी प्रकार किसी भी विषयको देखनेकी हमारी जो दृष्टि है उसमें काम, क्रोध रहा हुवा है. यह जो मैंने व्यवस्था समझाई है आकर्षण, अपकर्षण,

उत्तेजना, उदासीनता, स्नेह, डर, आशा-निराशा, इन सबके कारण हमको सुख दु:ख होता है और उस प्रकार उनका आवर्तन चलता रहता है. एक बात समझो, गणितके हिसाबसे कौम्बिनेशन और पर्म्युटेशन करने हों तो कितने ही उदाहरण बनते हैं उन्हें हम देख सकते हैं. भाग और गुणा करके यह जो साइकल है, यह जो आवर्तन है, यह बहुत ही कौम्प्लिकेटेड रूप बन जाता है. यह होते हुये भी वह आवर्तन ऐसा नहीं है कि इसके सारे पहलू हम देख न सकें. भाग गुणा करके जितनी सम्भव वेरायटिस् बन सकती हैं उन सबको हम गिन सकते हैं. उसी प्रकार जो चक्र चलता रहे तो सारा जगत अंतमें इस निद्रा और जागरणके चलते आवर्तनों, सुखदु:खके आवर्तनोंके किसी न किसी यन्त्रकी प्रक्रिया बन जाते हैं. मैकेनिकल प्रोसेस बन जाते हैं. और जो मैकेनिकल प्रोसेस बन जाते हैं, यंत्रवत यह सब आवर्तन चलते रहें तो हम अच्छी तरहसे समझ सकते हैं कि ऐसे चलते आवर्तनमें जीवन कहां है? यह खोजना बहुत ही मुश्किल हो जाता है.

एक सामान्य उदाहरण तुम्हें देता हूं. कोई अमेरिका जाता हो ग्रीन कार्ड लेकर वहां बसनेके लिये, अथवा कोई मर ही जाता हो, तब हमें पता नहीं चलता कि अब फिर मुलाकात कब होगी. अतएव साधारणतया हमें रोना आ जाता है. दिलकी लगन छलक जाती है. गला भरभरा जाता है. ऐसी बहुतसी तकलीफ होती हैं. छोटे बच्चेको स्कूलमें भेजना हो, तो सबसे पहले हम उसे स्कूल ले जाते हैं, उसके बाद किंडरगार्डन हो कि नर्सरी हो बच्चा बहुत ही रोता पीटता है. किस कारण? क्योकि इसे पता ही नहीं चलता कि उस वातावरणमेंसे उसे अलग क्यों किया जा रहा है? लेकिन महीना, बीस दिन ऐसा चक्र जब बराबर चलता है तो बच्चेको एक ऐसा आश्वासन मिल जाता है कि स्कूल तो जाना ही है और शामको घर वापिस भी आना है और इसमें रोने जैसी कोई बात नहीं है.

हमें जब नींद आती है तब कोई हमें विदा दे कि हमें भूल नहीं जाना तुम सोने जा रहे हो. हमारी याद भुला नहीं देना. ऐसे कोई रोता है! गुड नाईट कहते समय कोई क्यों नहीं रोता? क्योंकि निद्रा और जागरणका आवर्तन चलता रहता है. यह कहीं अटके तो रोने जैसी बात है, यन्त्रकी तरह चलती रहे तो हरेकको इसमें विश्वास हो जाता है कि हम सो रहे हैं, सुबह फिर उठ जायेंगे. सुबह उठे हैं तो रात को सोयेंगे. तो जब भी यंत्रवत् कोई क्रिया चलती होती है तो फिर इसमें जीवन देखना हमको लगता नहीं. जैसे यह पंखा चल रहा है तो क्या कोई पंखेको चेतन कहेगा? किस कारण चेतन नहीं कहेगा? क्योंकि चल रहा है यंत्र की तरह, इसमें कोई चेतन होनेका हमें कारण लगता नहीं कि चेतन कहांसे आया? तो जीवन कहांसे आये? इस चक्रके एक एक पहलू हैं और इन एक एक पहलूओंमें जब कुछ फ्लक्च्युएशन आती है और फ्लक्च्युऐट होनेपर ही फिरसे दूसरा पहलू आता ही है. शौर्टर कि लौंगर कोर्समें, यह कोर्स जब अन-प्रेडिक्टेब्ली साइक्लिकली चलता है तब हमें लगता है कि यह जीवन है. यह वस्तु जीवंत है. बाकी प्रेडिक्टेबल टाइममें एक पहलू जाता है तो दूसरा आता है, दूसरा जाता है तो पहला पहलू फिरसे आता है इस प्रकार यह आवर्तन चलता रहता है तो हमें यंत्रकी तरह बोध हो जाता है. जीवंतताका बोध नहीं होता. थोड़ीसी इसमें अन-प्रेडिक्टेब्लिटी आये कि हम जानकर भाग न सकें कि क्या होने जा रहा है? तब हमें लगता है कि कुछ जीवित जैसा लग रहा है. क्योंकि यह क्या करने जा रहा है हम कुछ कह नहीं सकते. जैसे घड़ीमें हम प्रेडिक्शन कर सकते हैं भले ही हमें घंटेकी सुई चलती नहीं दिखती हो लेकिन घड़ी तो चल ही रही होती है. सेकन्डका या मिनटकी सुई चलती देख कर हम यह निर्धार कर लेते हैं कि घड़ी चल रही है, भले ही घंटेकी सुई न चलती दिखती हो तो भी. एक घंटेमें एक नम्बरसे दूसरे नम्बर पहुंच ही जायेगी. ऐसे ही भविष्य भी हम

कह सकते हैं. यह भविष्य बतानेकी हमारी शक्ति कम पड़ जाये तो घड़ीके डायलको देख कर हमें ऐसा लगेगा कि इस घड़ीमें कोई भूत भरा है. अब भूत किस प्रकारका है यह तो घड़ी जाने या उसे रिपेयर करने वाला. लेकिन फिर हमें यंत्रकी यांत्रिकतापर विश्वास नहीं रह जाता. यंत्रकी यांत्रिकता तब निभती है कि जब यह कोर्स इसका प्रेडिक्टेबल हो तो ही. यह कोर्स प्रेडिक्टेबल नहीं रहा तो फिर यंत्रकी यांत्रिकता नहीं निभती.

एक सामान्य बात तुम्हें बताऊं इस आधुनिक खगोलशास्त्रानुसार कितने ही ग्रह-पिंड, जीवित पिंड हैं और कितने ही मृतपिंड हैं. इनकी मूल गणनाका आधार जीवित है कि मृत है, यह इसी बातके ऊपर निर्भर करता है. जिन पिंडोमें ऐसी कोई फ्लक्च्युऐशन कि वातावरण बताता हो वहां जीवंतपना है. और जो मैकेनिकली एक दूसरेके ऊपर चक्कर मार रहे होते हैं वह सब मृतपिंड हैं. ज्योतिषी लोग ऐसे बहुतसे मृतपिंड एवं जीवित पिंडोका तारतम्य हमें खगोलशास्त्रमें समझाते हैं. हम अच्छी तरहसे जानते हैं कि ॠतुओंके चक्रका आवर्तन हमारे यहां चलता रहता है. लेकिन एक बात ध्यानसे समझो कि ॠतुचक्रका आवर्तन चलता रहता है, गरमी पड़ती है तो हमें पता है कि बरसात पड़ने वाली है. तो यह हो गया मेकेनिकल चक्र. मोटे तौरपर जितनी भविष्यवाणीकी जाती हैं, इनके विपरीत भी बरसात पड़ती है अथवा नहीं पड़ती. तो यह प्रमाण है कि पृथ्वी जीवित है. किसी समय बरसात देरसे पड़ती है, तो गरमी ज्यादा पड़ती है. हाय हाय हो जाती है हम लोगोंको, बरसात पड़ती है तो चारों ओर कितना आनन्द छा जाता है. लेकिन अगर दो तीन महीनेसे ज्यादा बरसात पड़ती है तो बरसातसे भी हम परेशान हो जाते हैं. उद्वेग चालू हो जाता है, परेशानी होती है. तो ऐसे चलते आवर्तनोंमें कोई फ्लक्च्युऐशन आती है तो कुछ यंत्रवत नहीं चल रहा लेकिन कुछ जीवंतवत

चल रहा है, इसका हमें भान होता है. अच्छी बरसात पड़े, बाढ़ आ गई तो हमें लगता है कि चारों ओर विनाश व्याप गया, लेकिन इस विनाशके कारण भूमिकी उर्वरा शक्ति फिरसे बढ़ गई और जो हमें विनाश नजर आ रहा है इसमें से फिर सृजनके अंकुर फूटने लगते हैं अतएव हमें लगता है कि पृथ्वी एक जीवितपिंड है, मृत पिंड नहीं. घड़ीकी सुई की तरह यह नहीं चल रही. अपनी किसी शक्तिके कारण चल रही है. कभीतो विनाश करती है और कभी उसीमें से सृजन करती है.

जो सृजनकी प्रक्रियायें हैं उनमें कुछ विनाशकी प्रक्रियायें भी छुपी हुई मिलती हैं. विनाशकी प्रक्रियामें भी कोई सृजनकी प्रक्रिया छुपी हुई मिलती हैं. इनकी साइकिल चलती रहती है लेकिन इनके बीच जो फ्लक्च्युऐशन है वह फ्लक्च्युऐशन पृथ्वीके जीवितपिंड होनेका प्रमाण बन जाता है. मशीनकी तरह जो चलता रहे उसे हम निर्जीव मशीनही कहेंगे. जीवित पिंड नहीं. जीवनमें भी ऐसे बहुत से चक्र हैं, जागने-सोनेके, सुख-दु:खके, राग-द्वेषके, यह सब जो मेकेनिकली चलते होते तो हम भी एक चलते फिरते रोबोट होते. क्योंकि हमारा रिस्पोन्स तो निश्चित होता कि ऐसे होगा तो ऐसा होगा, कोई गाली देगा तो लप्पड़ मारेंगे. यह मेकेनिकली निश्चित है. लेकिन कोई गाली दे और कोई लप्पड़ न मारे और अन-प्रेडिकटेबली कोई लप्पड़ मारे और कोई सामने गाली दे, कोइ गाली दे तो सिर नीचे करके चला जाये. कितने सारे पोसिबल फ्लक्च्युऐशन हैं रिस्पोन्सके इसमें! इससे सिद्ध होता है कि व्यक्ति जी रहा है. हमारे यहां तुमने एक खिलौना देखा होगा, एक तोता बैटरीका इसके सामने जो कोई कुछ बोले तो उसे यह रिपीट करता है मेकेनिकली. अब यह रिपीट कर सकता है लेकिन जो तुम बोलो उसे अपने मनसे रिपीट नहीं कर सकता. इसमें किसी प्रकारकी फ्लक्च्युऐशन नहीं आती. बशर्ते इसकी बैटरी डिस्चार्ज न हो गई हो. अभी तक मैंने यह नहीं देखा कि बैटरी डिस्चार्ज होनेके

बाद भी यह किस प्रकार रिस्पोन्स देता है लेकिन कोशिश करके देखी जा सकती है. थोड़ीसी फ्लक्च्युऐशन आयेगी लेकिन बहुत अधिक नहीं. अन-प्रेडिक्टेबल हो जाये ऐसे कि हम बैटरीवाले तोतेके सामने तोता बोलें और अचानक यह कहे भैंस तो हमें लगे कि इसमें कोई प्रेतात्मा घुस गई लगती है. अब यह बैटरीसे काम नही कर रहा लेकिन हम तोता बोलें तो और यह भी तोता बोले, हम हाउ आर यू बोलें तो सामने से वह भी हाउ आर यू मेकेनिकली रिपीट करे तो हमें लगता है कि इसमें कुछ जीवंतपना नहीं है. जो कुछ भी एक क्रियाकी प्रतिक्रिया प्रकट कर रहा है लेकिन थोड़ी सी फ्लक्च्युऐशन होने लगे अतएव फिर हमें जीवंतताका प्रमाण मिल जाता है.

जीवनके लचीले स्वभाव (अन्-प्रेडिक्टेबल फ्लक्च्युऐशन) से उद्वेगका उद्भव :

कोई वस्तु जीवंत है उसका प्रमाण सर्वथा इसमें किन्हीं नियमोंका आवर्तन नहीं है ऐसा मत समझ लेना. लेकिन नियमोंका जो आवर्तन है उसका अर्थ ऐसा भी नहीं है कि नियमोंके आवर्तनके बीचमें किसी प्रकारकी फ्लक्च्युऐशन न हो. फ्लक्च्युऐशन तो होगी ही. इन दोनोंका जब समाहार होता है तब जीवंतपनेका हमको प्रमाण मिलता है. तो सुख-दुःखके, राग-द्वेषके, निद्रा-जागरणके, या चिंता-चिंतनके जो आवर्तन हैं यह हमारे अन्दर मेकेनिकली नहीं चलते परन्तु जीवंत प्रकारसे चलते हैं. जीवंत प्रकारसे चलते हैं अर्थात् इसमें कोईभी एक फोर्सका दूसरा जो उपाय है वह फिक्स् नहीं हो सकता. कोई न कोई अन-प्रेडिक्टेबल फ्लक्च्युऐलिटी इसमें होती है. लेकिन फ्लक्च्युऐशन इतनी अधिक नहीं होती कि हम पूरे तौर पर अन-प्रेडिक्टेबल हो जायें और इतना अधिक मेकेनिकल रिस्पोन्स भी फिर नहीं होता कि सौ प्रतिशत हम प्रेडिक्शन कर सकें. जीवनका स्वभाव इतना लचीला है, फ्लेक्सिबल है यह बात हमें समझनी पड़ेगी. सबसे पहले, लचीला स्वभाव जीवनका न हो तो

मनुष्यको कभी भी उद्वेग होगा ही नहीं, कभी मनुष्यको चिंता होगी ही नहीं, क्योंकि प्रत्येक उद्वेगके पीछे इसे पता चलता रहता है कि **चक्रवत् परिवर्तन्ते दु:खान्यपि सुखानि च.** इस दु:ख और सुखका चक्र अगर मेकेनिकली चलता हो तो कौन दु:ख करे! क्योंकि हमें पता है कि दु:खके पीछे सुख आयेगा और सुखके बाद दु:ख आयेगा ही. अगर मेकेनिकली आता हो तो इसमें दु:ख करने जैसा कुछ रह नहीं जाता. जैसे मेकेनिकली निद्रा और जागरण आते हैं उसमें रोने जैसी कोई बात नहीं होती. कोई शोकसभा नहीं करता कि अब सर्वानुमतिसे प्रस्ताव पास करनेमें आता है कि फलाना भाई अब सोने जा रहा है! क्योंकि मेकेनिकली जाग और सो रहा है. लेकिन कभी फ्लक्च्युऐशन आ गई कि सो गया और सुबह उठाओ तो उठता ही नहीं, फिर तो शोकप्रस्ताव पास करना ही पड़ेगा सर्वानुमतिसे. सगे सम्बन्धियोंको रोना भी आयेगा कि रातको सोने गया था क्या हो गया पता ही नहीं चला. अर्थात् जीवनमें ऐसी फ्लक्च्युऐशन होनी जीवंतताकी निशानी है. जन्ममरणका चक्रतो हम अनुभव नहीं कर सकते अतएव हम बहुत उद्विग्न हो जाते हैं लेकिन ऋषि - आचार्य जैसे महापुरुष हों तो ये जीवन और मरणको भी जागरण और निद्राक चक्रकी तरह देख सकते हैं. इनकी दृष्टिकी विशालताके कारण इनको उद्वेग नहीं होता जैसे कबीर कहता है कि **जसकी तस धर दीनी चदरिया.** अर्थात् खेलनेवाले ने जीवन जीनेके लीये शरीररूपी जो चादर मुझे दी थी मैंने वैसेकी वैसे ही अन्तमें रख दी. मुझे इसमें कुछ उद्वेग नहीं हाता.

भक्ति चिंताको सहन नहीं कर सकती :

श्रीआचार्यचरण भी ऐसा ही कहते हैं **तथा देहे न कर्तव्यं वर: तुष्यति नान्यथा.** यह कहना सरल है. करने जाओ तो बहुत कठिन लगता है हमको. ऐसी बात हम आचार्यचरणके बारेमें विचारें तो तुरन्त हमारा सिर नीचा हो जायेगा कि आचार्यचरणने भगवदाज्ञाको अनुसरनेमें कितनी तत्परता दिखाई! आचार्यचरणको जो इस भूतलपर बिराजनेका अथवा नित्यलीलामें

पधारनेका जो चक्रवत् लगता, पोढने अथवा जागनेकी क्रियाकी तरह, तो कोई शोक होता ही नहीं. उद्वेग होता ही नहीं. जैसे बालकको भी पहली बार स्कूलमें जाते बहुत ही उद्वेग हो जाता है. जब बच्चेको समझ पड़ती है कि आखिरमें यह तो चक्रवत चल रहा है. हर रोज सुबह स्कूल जाना पड़ता है, शामको वापिस आना होता है तो फिर रोने जैसी कोई बात रह ही नहीं जाती. ऐसे ही कोई भी उद्वेग हमें होता है इसका कोई चक्र चल रहा है, और इन चलते चक्रोंमें जो फ्लक्च्युऐशन है वह हमें रुलाती है.

किसी विषयके प्रति आकर्षणमें कि किसी विषयके अपकर्षणमें हमारा मन रुक गया हो, अटक गया हो तो उसके बाद उद्वेग... अब आनन्दात्मक उद्वेग कि क्लेशात्मक उद्वेग, उद्वेगका एक अर्थ जो हमको उच्चलित करे, जिस स्थितिमें हों उसमें रहने न दे वह उद्वेग, इसके बाद शारीरिक दृष्टिसे, मानसिक दृष्टिसे, पारिवारकि, सामाजिक कि आर्थिक किसी भी दृष्टिसे जो हमारी वर्तमान स्थिति है उसमें हमें स्थित रहने न दे. इस चलायमानताके कारण जो हमें उद्वेग होता है उसके कारण हमको चिंता प्रकट हो जाती है.

चिंताके साथ हमें द्वेष किस कारण है? किस कारण महाप्रभुजी कह रहे हैं कि चिंता मत करो चिंता मत करो. प्रमुख मुद्दा मैंने तुम्हें कल समझा दिया कि समर्पण और सेवा न करें तो भी पुष्टिमार्गमें आगे बढ़नेके लिये कथाभक्तिकी कुछ संभावनायें रही हुई है. जो बात भक्ति सहन नहीं कर सकती वह यह कि अगर हमारेमें नैश्चिंत्य नहीं है तो हमारी भक्तिका मूलभाव बिखर जाता है. अर्थात् समर्पणपूर्विका सेवा नहीं हो तो पुष्टिभक्ति सिद्ध होनी कठिन है लेकिन अशक्य नहीं. लेकिन नैश्चिंत्य हमारेमें नहीं हो तो पुष्टिभक्ति कैन्सल हो हो जाती है.

वन्स् एन्ड फॉर आल् चिंताका इतना अधिक महत्व है यह हमें कभी भूलना नहीं चाहिये. उसी चिंताको अनुलक्षित करके महाप्रभुजी यह उपदेश दे रहे हैं. मेरी जान पहचानका एक भाई था. उसे ऐसा कोई फ्लक्च्युऐशन आ गया. शादी नहीं होती थी. लेकिन कुछ समय बाद किसीके साथमें अफेयर हो गया. यह दूसरी जातिकी लड़की थी. अब तो कोई मुश्किल नहीं, आजकल तो जांतपांतिका कोई इतना भेद ही नहीं है. लेकिन हुवा क्या? बार बार मुझे भी कहता कि आगे बढ़ूं कि नहीं? मैंने कहा **भाई! मैं कौन कहने वाला तुम्हें? तुम्हें आगे बढ़ना हो तो आगे बढ़ो पीछे जाना हो तो पीछे जाओ, इसमें मैं कुछ कह नहीं सकता.** लेकिन उसे हरेक बातमें मेरी सलाह लेनेकी आदत, कुछ विश्वास था मेरेमें. एक बार क्या हुवा कि थोड़े दिन तक यह मुझे दीखा ही नहीं, मैंने पूछा **क्यों भई तुम दिखे नहीं?** तो बोला **मुझे बुखार आ गया था.** कैसे बुखार आ गया? उसने मुझे कहा **वह जो लड़की है ना उसके भाईने आकर मेरा कालर पकड़कर मुझे कहा तुझे पता है कि मेरी बहिन विधवा हो जाये तो इसमें मुझे जरा भी तकलीफ नहीं होगी. अतएव उसे बुखार आ गया.** वह लड़की मिलने आई तो इस मेरे जान पहचानके भाईने लड़कीको भगा दिया. भाग यहांसे मेरे पास आगेसे मत आना. तब वह लड़की बोली **मैं तो अपने भाईसे डरती नहीं तो तुम कैसे डरते हो?** तो बोला **अब मुझे कुछ सुनना नहीं है तू यहांसे भागजा.** अगर मलेरियाका बुखार आया होता तो उद्वेग हुवा होता, जो टाइफाइडका बुखार आया होता तो उद्वेग होता, यह उद्वेग तो उद्वेग ही रहता. लड़कीके भाईने जरासा कॉलर पकड़ा उसके उद्वेगसे चिंता जाग गई. और उस उद्वेगके बाद चिंता इतनी बढ़ गई कि मनपसन्द लड़कीसे शादी कर लूं वह तो ठीक लेकिन बादमें उसके कारण किसकी बहिन विधवा हो तो उसका क्या? इसकी चिंता बहुत सताने लगी. ऐसी चिंता सताये तो फिर उसका सोल्युशन हो नहीं

सकता. लड़की नहीं डर रही अपने वैधव्यकेलिये और यह भाई डर रहा है तो फिर शादी हो किस प्रकार?

अतएव चिंता स्नेहमें बाधक हो जाती है, उद्वेग बाधक नहीं होता. सोचो कि टाइफाइडका बुखार आया होता, इन्फ्लुऐन्जाका बुखार आया होता, मलेरियाका बुखार आया होता और वह लड़की मिलने आई होती तो कितनी खुशी हुई होती कि तू आई तो बुखार उतर गया, ऐसा भी लगता है आदमी को: **तुम तसल्ली न दो सिर्फ बैठे रहो. वक्त मरनका मेरे ये टल जायेगा.. है ये मुमकिन मसीहाके रहनेसे ही. मौतका भी इरादा बदल जायेगा..** ऐसी भ्रमणा भी देख ले. लेकिन यहां तो चिंता होने लगी कि शादी करलूं और लड़की विधवा हो जाये तो? इसका तो कोई जबाब नहीं है फिर.

अतएव उद्वेग इसे हम सह सकें ऐसी वस्तु है लेकिन चिंताको सह सकें यह ऐसी वस्तु नहीं है. यह स्नेहमें किस प्रकार बाधक हो जाती है कि वह बिचारी लड़की मिलने भी आई तो उसे भगा दिया. इस प्रकार हमें जो चिंता होती हो और भगवान साक्षात् प्रकट होयें तो भी हम यहीं कहेंगे **भगवान थोड़ी फुरसतसे आना, हमें बहुत चिंता सता रही है. इस काममें अटके हुवे हैं.** उद्वेग हो तो शायद हम भगवानके चरणोंमें पड़ जायें कि भगवान आप आये चलो बहुत कृपा करी आपने, लेकिन अगर चिंता होती हो तो उस समय स्नेहका स्मरण नहीं होता यह एक ध्रुव सत्य है. अर्थात् चिंता स्नेहका सीधासा एक एन्टीडोस् है. कोई स्नेह करता हो किसीको तुम्हें दूसरा कुछ करनेकी जरूरत नहीं है. कुछ चिंताकी कंडिशन्स् उसके सामने खड़ी करदो. थोड़े दिनमें स्नेह अपने आप ठंडा पड़ जायेगा. उद्वेगकी सिच्युऐशन खड़ी करोगे तो यह स्नेह ठंडा नहीं पड़ेगा. चिंता स्नेहके भावको एकदम सामने सामने काटने वाला भाव है. वैसे उद्वेग स्नेहके भावको तुरन्त नहीं काटता.

<u>चिंताको दूर करनेके लिये चिंतनका उपदेश</u> :

सेवकानां यथा लोके व्यवहारः प्रसिद्ध्यति। तथा कार्यं समर्प्यैव सर्वेषां ब्रह्मता ततः।। (सिद्धान्तरहस्य)

इस प्रकार समर्पणपूर्विका सेवाका उपदेश देकर सेवा करते हुये जो उद्वेग आयेगा उसके बारेमें सावधानी लेना श्रीमहाप्रभुजी चाहते हैं. चक्रकी तरह कोई उद्वेग आयेगा, कोई जायेगा. कुछ सुख होगा, कुछ दुःख आयेगा. ऐसे चक्र जीवनमें भगवत्सेवाके साथ साथ चलते रहेंगे. इनमें किसी प्रकारका फ्लक्च्युऐशन भी आयेगा. फ्लक्च्युऐशन अर्थात्? **एक, दो, तीन, चार, पांच, छः, सात, आठ** यह फ्लक्च्युऐशन नहीं. **एक, दो, तीन चार पांच, एक दो चार, पांच, छः, सात, नौ ग्यारह** इतनेमें बैटरी डिस्चार्ज हो जाये इसका नाम फ्लक्च्युऐशन! तो ऐसे फ्लक्च्युऐशन तो आयेंगे ही जीवनमें. तुम इन्ह चाहो चाहे न चाहो इनको एवॉइड नहीं कर सकते. कोई सुख कुछ अधिक समय तक चलेगा लिंगर ऑन होकर इस बारेमें इसकी आदत पड़ जायेगी. कोई दुःख तुम्हें अधिक समय तक चलेगा कि जितना सहनेको तुम तैयार नहीं होगे, इस सीमासे ज्यादा दुःखका अध्याय भी अधिक लगेगा. और यह जब फ्लक्च्युऐशन तुमने देखी कि सुख दुःख बराबर साइकलमें नहीं चलते लेकिन कुछ फ्लक्च्युऐशनमें चलते हैं. इसके बाद तुम्हें लगेगा **मैं ही किस कारण दुःखी हूं, दुनियांमें तो सब सुखी हैं तो**? अरे सबही दुःखी हैं लेकिन यह ही विचार आता है कि **मैं ही क्यों दुःखी हूं**?

बुद्धजातकमें एक बहुत सुंदर वार्ता है: एक वृद्धा मांजी बुद्धके पास गई **मेरा लड़का मर गया है, और इस दुःखके ऊपर मैं काबू नहीं पा रही.** बुद्ध भगवानने बहुत सुंदर बात समझाई **मां! ऐसा है कि मैं भी सुबहसे बहुत भूखा हूं. मुझे कुछ खानेके लिये या दूध इस बरतनमें लाकर दे दे. लेकिन**

किसी ऐसे घरमें से मांग कर लाना कि जिसके घरमें कोई मरा न हो. वह बेचारी वृद्धा सबके घरोंमें गई और कहा **मुझे भगवान बुद्धको दूध समर्पण करना है, लेकिन कोई घर ऐसा नहीं मिला कि जहां किसीका कोई मरा न हो.** अतएव आकर कहा **एसा तो कोई भी घर नहीं मिला.** बुद्धने कहा **तो फिर किस कारण इतना दुःखी होती है. हरेकके घरमें जब कोई न कोई मरा है, तो हर घरमें कोई न कोई तो जन्म लेगा ही. जिस घरमें कोई जन्मा है तो उस घरमें कोई न कोई मरेगा भी. अब तुझे तेरा बेटा बहुत प्यारा होगा. ऐसे ही दूसरोंको भी अपने बच्चे प्यारे होंगे.** ऐसी दृष्टि प्राप्त करनेकेलिये बुद्धत्व प्राप्त करना होगा. क्योंकि जीवन और मरणका जो यह चक्र चल रहा है वह हमें दिखाई नहीं देता. हमें ऐसा लगता है कि मरा अर्थात् सब समाप्त. ऐसे भले ही हम लोग आत्मामें मानते हैं, पुनर्जन्ममें मानते हैं, कर्मफलमें मानते हैं, ऐसे मानते हों लेकिन फिरसे कुछ लफड़ा हो जाता है. ऐसे तो मानते हैं लेकिन कोई परिवारका प्रियजन परलोक जाये तो रोना तो आ ही जाता है. मानवके हृदयके लगनकी लाचारी है. तो उसके कारण ऐसी फ्लक्च्युऐशनमें दुःख, शोक, उद्वेग कुछ भी उसे नाम दो, चिंताका रूप धारण कर लेती है. और जब चिंताका रूप धारण कर लेती है तब महाप्रभुजी कुछ चिंतनका उपदेश देना चाह रहे हैं.

आखिरमें एक बात मैंने कल तुम्हें समझाई थी कि ज्ञानकी सबसे पहली शर्त है जागरण, दूसरी शर्त है विषयके साथ व्यवसाय, अर्थात् अपनी ज्ञानेन्द्रियां कि कर्मेन्द्रियां जब रूप, रस, गंध, स्पर्श इत्यादि विषयोंके साथ किसी भी प्रकारके लेने देनेमें इन्वोल्व् हो जाती हैं तो फिर हमें इनका व्यवसाय होता है कि यह सुख है यह दुःख है, उत्तेजना है, उदासीनता है, भयजनक है, स्नेहजनक है, आशास्पद है कि निराशाजनक है. इतने सारे जो भाव जागृत होते हैं उनमें जो समय हम लगाते हैं उससे

जराभी अधिक समय लगे तो तुरन्त हमारा उद्वेग चिंताका रूप ले लेता है. ओटोनोमस् सिस्टम है अर्थात् स्वयंचालित व्यवस्था हमारे शरीरके अन्दरकी किन्हीं विषयोंक साथ ऐसा आकर्षण-अपकर्षण, स्नेह-भय, उत्तेजना-उदासीनता, इत्यादिकी, अपने आप सम्मिलित हो जाती हैं. स्वयंचालित व्यवस्थासे ऐसा होता रहता है, इसके बाद दूसरा सिम्पथैटिक सिस्टम् वह क्या करता है? अर्थात् उसके कारण कहीं बहुत भारी धड़ाक शब्द हुवा तो हममें भागनकी क्रिया चालू रहती है, कोई सुमधुर ध्वनि सुनाई दे तो उस दिशामें आगे बढ़नेकी क्रिया सतत होती रहती है. बहुत सुंदर एक श्लोक ठाकुरजीके वेणुवादनके लिये कहनेमें आया है: **सर्वप्रवाह सर्वत्र स्वानुकूल्येन कर्षति। वेणुगीतप्रवाहस्तु प्रातिकुल्येन कर्षति।।**

सारेही प्रवाह अपनी दिशामें प्रवाहमें तैरते व्यक्ति कि वस्तुको बहा कर ले जाते हैं. परन्तु वेणुगीतका प्रवाह विरुद्ध दिशामें ले जाता है. अर्थात् जो सुननेवाला प्रवाहकी दिशासे विपरीत उसके उद्गमकी दिशामें सतत खींचकर ले जाता है. यह सिम्पथैटिक सिस्टमके कारण उत्पन्न होती हमारे शरीरकी व्यवस्था है.

जो काम शरीरसे स्वयंस्फूर्त हो जाये उसे सिम्पथैटिक व्यवस्थाके कारण हम चालू रखना या बंद करना चाहते हैं. शरीरमें जो क्रिया स्वयंस्फूर्त प्रकारसे हो जाये उसके अनुसंधानमें शरीर फिरसे एक तराजूकी तरह मापतोल करने लगता है. तोलकर तय करता है कि जा स्वयंस्फूर्त प्रतिक्रिया हुई उसमेंसे किसको चलने देना? किसको नहीं चलने देना? जिसे चलने देना हो उसे चलने दे अथवा जिसे नहीं चलने देना उसके लिये तुरन्त पेरा-सिम्पथैटिक सिस्टम् भी शरीरमें काम करते होते हैं. इसके कारण हमें चलती या बंद करानेवाली स्वयंस्फूर्त

प्रतिक्रयायोंका प्रयोजन कि औचित्य कि अनौचित्यका पृथककरण करना पड़ेगा.

अतएव पेरा-सिम्पथैटिक सिस्टम्के कारण हमें या तो चिंतनकेलिये बाधित होना पड़ता है, अथवा तो चिंताकेलिये बाधित होना पड़ता है. कहीं तो उद्वेगकी थकानके कारण हमें नींद आ जाती है. जैसे शुतुरमुर्गका बहुत प्रसिद्ध उदाहरण है कि शुतुरमुर्गके पीछे शिकारी दौड़े तो शुतुरमुर्ग भी खूब दौड़ता है. जब यह दौड़ नहीं सकता तो यह रेगिस्तानकी रेतमें अपने सींग गाड़ देता है और इसे शिकारी दीखना बंद हो जाता है. अर्थात् यह समझो कि चलो अब नहीं दीख रहा अर्थात् जगत सर्वं मिथ्या अर्थात् मोटे तौरपर शुतुरमुर्ग उसी रीतिसे पकड़ा जाता है. यह निर्णय लेता है और जब भाग रहा होता है तब इसे लगता है कि मैं भाग रहा हूं और जब भाग नहीं सकता तो उस समय पेरा-सिम्प्थैटिक सिस्टम् इसे कोई सुझाव देता है कि लो अब तुम ऐसे करो और जब यह वैसे करने जाता है तब इसे कुछ अच्छा या बुरा परिणाम प्राप्त हो जाता है. चिंतन कि चिंता कि समाधि कि कोई दूसरे पोजिटिव काममें जुड़ जाता है, किसी कलाकृतिके सृजनमें जुड़ जाओ, किन्हीं शास्त्रीय साधनाओंमें जुड़ जाओ, किन्हीं क्रियाओंमें जड़ जायें तो उस क्रियामें अगर हमें क्रियासमाधि लगे, ज्ञानसमाधि लगे, तपःसमाधि लगे, संन्याससमाधि लगे, त्यागसमाधि लगे, कर्मसमाधि लगे, तो यह जो सक्रिय समाधि है उसके कारण चिंताके ऊपर बहुत बार काबू पा लिया जाता है. जैसे कि लोग खेलने बैठ जाते हैं कि घूमने निकल जाते हैं तो इस दौरान सब कुछ भूल जाते हैं.

अपने भारतकी बहुत प्रसिद्ध घटना है, विट्ठलभाई पटेल कोर्टमें वकालत कर रहे थे. इतनेमें इनकी पत्नीका देहांत हो गया. इनको तार आया तो उस तारको जेबमें रख लिया और आर्ग्युमेन्टस् चालू रखे. हमें यह लगेगा कि ऐसा कैसे हो सकता

है? हमें लगेगा कि एकही कारण होगा कि वह अपनी पत्नीको चाहते नहीं होंगे. लेकिन ऐसा नहीं था. ये बेचारा तो चाहता था लेकिन वकालतका जो यह काम कर रहे थे उसमें इनकी कर्मसमाधि ऐसी थी कि उस समय कुछ और सुननेकेलिये, विचलित होनेकेलिये तैयार नहीं थे. अतएव उद्वेग चिंतामें नहीं बदल पाया. ऐसी कर्मसमाधियां हमें लगती होती हैं.

बहुत बार तुमने हवाईजहाजके ऐक्सीडेन्टोंमें भी पायलटोंके बारेमें ऐसा पढ़ा होगा कि सारा प्लेन जल रहा था, पायलटके पैरों और कमर तलक आग आ गई थी, ऐसा होनेके बाद भी पायलेटने बहुत ही सावधानी पूर्वक प्लेन जमीनके ऊपर उतार दिया. किस प्रकार उतार सकता है? क्या उसे आग गरम नहीं लगती होगी जैसे कि हमें गरम लगती है? जब उसका आधा शरीर जल रहा होता है तो उसे क्या कष्ट नहीं होता होगा? उसे उद्वेग नहीं होता होगा? एक बात ध्यानसे समझो कि उसे दु:ख, त्रास, उद्वेग होता ही होगा लेकिन यह पेरा-सिम्थैटिक सिस्टम्के स्तरपर विचलित नहीं होता क्योंकि उसे अपनी ड्यूटीकी, जॉबकी समाधि लगी हुई है.

हमारे भीतर एक गलत भ्रमणा भर गई है कि ऐसे मुद्राकरके बैठे, आंख मींचे, सांस रोकें, तो ही समाधि लगती है. यह भी समाधि है ऐसा नहीं है कि यह समाधि नहीं है, लेकिन समाधिका यही रूप नहीं है समाधिके बहुत सारे रूप हो सकते हैं. क्रीडासमाधि हो सकती है, युद्धसमाधि हो सकती है, अपने जॉबकी समाधि हो सकती है, भक्तिकी समाधि हो सकती है, साधनाकी समाधि हो सकती है. यह जो समाधियां हैं यह लगभग ऐसा ही प्रभाव अपने शरीरपर डालती हैं जैसा प्रभाव निद्रा डालती है. एक बार कॉम एन्ड क्वाइट स्लीप तुम्हें आ जाये, बहुत कष्ट होता हो तो हम नींदकी गोली खाकर भी नींदको ला सकते हैं और अगर आ जाये तो दूसरे दिन हमको स्वस्थता

लगती है. ऑपरेशन करनेके बाद डॉक्टर जो हमें गोली देता है, नींदका इंजेक्शन देदे तो यह ऑपरेशन जैसी सर्जरीका भी कष्ट हम दो तीन दिन नींदमें बिता सकते हैं. अगर जागते रहें तो उद्वेग तो होगाही. लेकिन इस उद्वेगके साथ साथ फिरसे चिंता होने लगती है, अगर हमें अच्छी समझ न हो तो. अल्टीमेटली इस ऑपरेशनके होनेके बाद जो हमारा सड़ा शरीरका भाग काटनेमें आ गया तो उसके बाद तो मेरा जीवन बढ़ गया ना, लेकिन यह बढ़ेगा तब जब तुम चिंता न करो तब. इस दर्दकी तुम चिंता करने लगो तो दर्द तो होगा ही. ऑपरेशन तुमने कराया है तो ऐसा नहीं समझना कि कोई ऑपरेशन बगैर दर्दके होता है. लाभशंकरभाईके दांतकी तरह ऑपरेशन हो कि यह दांत तोड़ा, दूसरा दांत तोड़ा और पोपला होकर बैठ गया. कोई आधुनिक एलोपैथीका ऑपरेशन ऐसा सरल नहीं होता. यह जिस समय ऐनेस्थेसिया देकर थोड़ी देरकेलिये तुम्हें बेहोश करते हैं, लेकिन जब होश आता है तब भयंकर पीड़ा होती है जबकि इस पीड़ाको सहनेकेलिये तुम किसी पेरा-सिम्पैथैटिक सिस्टमको खड़ा नहीं कर सकते.

यह सिस्टम कहांसे खड़ा होगा? तुम्हारे विश्वाससे कि डॉक्टरने जो मेरा अंग काटा है इससे मेरा जीवनकाल बढ़ेगा. मेरी मृत्यु टल गई. ऐसा जो तुम्हारेमें दृढ़तर विश्वास हो तो तुम्हारी पीड़ा कभी चिंतामें नहीं बदलेगी. जबकि इस पीड़ाके कारण हमारा विश्वास बिखर जाता है कि अब मैं मरूंगा कि जीऊंगा? इतना अधिक दर्द हो रहा है, इतनी अधिक पीड़ा हो रही है, तो बस चिंताने इसका स्थान ले लिया. इस खुलासेसे तुमको चिंता और कष्ट अथवा चिंता और उद्वेग अथवा चिंता और दु:खका मूल तार्तम्य समझ लेना चाहिये. काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, मात्सर्यके उदाहरणोंसे भी कल मैंने समझानेका प्रयास किया था. महाप्रभुजी हम ऐसा नहीं कहते कि तुम पत्थर जैसे बन जाओ. जैसे महावीरकी कल तुमको कथा सुनाई कि उनके

कानमें कांटा भौंक दिया तो भी उन्हें कुछ विचार नहीं आया. समाधि लग जाती है तो बहुत अच्छी वस्तु है. महाप्रभुजी भी इन्कार नहीं करते लेकिन महाप्रभुजी अभी इस बारेमें तमसे ऐसी अपेक्षा नहीं रखते कि ऐसी समाधि लगा लो. महाप्रभुजी तुम्हारेसे जो अपेक्षा रखते हैं वह यह कि प्रभुमें ऐसा विश्वास रखना कि जिस विश्वासके कारण तुम्हारी पेरा-सिम्प्थैटिक सिस्टम वर्किंग ऑर्डरमें आये, और चिंताके स्थानपर तुम चिंतन कर सको.

यह चिंतन तुम करोगे तो तुम्हें जो कुछ पीड़ा हो रही होगी उसके ऊपर ऑपरेशन उपरान्त जैसे दर्दके ऊपर काबू पा सकते हैं वैसे ही तुम भी काबू पा सकते हो... ऑपरेशन करनेके बाद दर्द तुरन्त नहीं मिट जाता परन्तु पांच दस दिन, महीने तक भी चलता है, लेकिन यह पीड़ा पांच दस जितने दिन हमें सहनी है, वह मैं सह लूंगा. आखिरमें मुझे ठीक ही होना है. **भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीञ्च गतिम्** अगर तुम्हारा विश्वास दृढ़ है तो तुम्हें जीवनमें अनुभव होते किसी भी क्लेशकी अनुभूति, किसी भी त्रासकी अनुभूति, किसीभी पीड़ाकी अनुभूति चिंतामें परिणत नहीं होगी.

परमात्मामें जीवन जीनेका आत्माका अभिगम :

ऐसा विश्वास अगर तुम्हारा खो गया तो फिर तुम जो भी चिंतन करोगे उसमेंसे कष्ट उद्भव हो सकता है. चिंता न तो है विषयासक्ति, और न ही विषयविरक्ति, चिंता यह परमात्माकी अनुभूति भी नहीं है, क्योंकि परमात्माकी अनुभूति करते होगे और साथमें चिंता करते होगे तो फिर कुछ गड़बड़ होनी सम्भव है. चिंता यह परमेश्वरका आराधन भी नहीं है लेकिन चिंतन यह जीवात्माका परमात्मामें जीनेका एक अभिगम है कि मैं परमात्मामें जी रहा हूं. जैसे एक रोगी जिसका ऑपरेशन हुवा हो वह **मैं डॉक्टरके ट्रीटमेंटमें जी रहा हूं. अब मेरा रोग मिट गया है और मैं स्वस्थ होने वाला हूं.** ऐसे

अन्डर-ट्रीटमेंटमें जीनेकी जैसी अनुभूति है. यह जीवन जीनेकी प्रणाली है. हॉस्पिटलमें रहकर वह जीवनकी प्रणाली इसकी पीड़ाको चिंतामें विकृत नहीं होने देती. इसी प्रकार मैं जीवात्मा - परमात्माका अंश होनेके कारण परमात्मामें जी रहा हूं. बस यह जीवनका अभिगम तुमने प्राप्त किया, तो चिंता दूर हो जायगी. यह अभिगम तुमने खोया तो तुम भक्ति करते होगे तो भी चिंता होगी, शरणागति करते होगे तो भी चिंता ही होनी है और सेवा करते होगे तो भी चिंता ही होगी. एक बात ध्यानसे समझो कि सेवा करते चिंता न होती हो तो हम गोस्वामी लोग इतनी अधिक सेठ लोगोंकी चापलूसी किस कारण करते हैं? श्रीनाथजी तो हमारे घरमें बिराजे हैं फिर हमें इन लक्ष्मीवाहनोंकी चापलूसी क्यों करनी? लेकिन चिंता होती है हमें कि श्रीनाथजी तो बिराजे हैं लेकिन लक्ष्मीवाहन जब तक हमें कुछ पैसा नहीं दें वहां तलक सेवाको निभाना किस प्रकार? अर्थात् फिर पहुंचाओं समाधान, पहुंचाओ बीड़ा, भेजो समाधानी, छापो पेम्पलेट, और फिर ललचावो कि तुम इतना दोगे तो तुम्हारे नामकी **जयश्रीकृष्ण** संगमरमरकी तख्तीमें टंगवा देंगे. तुम इतना पैसा दो तुम्हारा नाम अखबारमें आ जायेगा मुख्य मनोरथीके तौरपर. यह सब हमारी लक्ष्मीवाहनोंको ललचानेकी ट्रिक ऑफ ट्रेड हैं. हम श्रीनाथजीके भक्तोंको भी भक्तिकी मार्केटिंगकेलिये ट्रिक ऑफ ट्रेड इस्तमाल करना पड़ता है. सेवा करते करते ही प्रयोग करते हैं वह इस बातका प्रमाण है कि सेवासे चिंताका निराकरण नहीं हो सकता. जो सेवासे चिंताका निराकरण हो सकता तो हमें यह ट्रिक ऑफ ट्रेड क्यों इस्तमाल करनी पड़ती. हम तो लक्ष्मीनाथ, लक्ष्मी = श्रीनाथकी सेवा कर रहे हैं तब लक्ष्मीके वाहनोंकी उपासना किस कारण करनी पड़ती है? करनी पड़ती है क्योंकि चिंता होती है. सेवासे चिंताका निराकरण नहीं होता. भूले चूके हमारे हृदयमें यह सेवा करते समय प्रभुकी भक्ति खिल जाय तो चिंता टिक नहीं सकती और चिंता टिके तो भक्ति नहीं टिक सकती. चिंता और भक्तिका

ऐसा कोन्ट्राडिक्टरी नेचर है. ऐसा नवरत्नका बोधपाठ समझमें आयेगा.

नवरत्नमें उपदिष्ट चिंतनके प्रकारोंको पेटेन्ट् मेडिसन् नहीं मान लेना :

और सबसे मुख्य मुद्देकी बात यह है, कौन जाने अतिशयोक्ति कर रहा हूं कि नहीं मुझे पता नहीं है लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि नाईन्टी नाईन पॉइन्ट नाईन्टी नाईन परसेन्ट हमलोगोंमें एक ऐसी गैर समझ फैलाई गई है कि नवरत्नमें जो कुछ उपाय वर्णनकरने में आये हैं वह ही उपाय बस ऐब्सौल्यूट उपाय हैं. ऐब्सौल्यूट उपाय अर्थात् क्या? जैसे पेटेन्ट औषधि होती है अर्थात् सिर दुखता है तो क्रोसीन खानेपर मिट जायेगा. सिरमें दर्द होते ही क्रोसीन खानेपर दर्द मिट जाता है. सिर दर्द दूर हो जाता है लेकिन किस प्रकारका दर्द क्रोसीन मिटा सकती है और किस प्रकारका नहीं मिटा सकती इसका भी फिर कुछ विवेक है. सोचो कि सिरमें कैन्सरका गूमड़ा हो गया हो तो तुम एक नहीं सौ क्रोसीन खाओ, कुछ होने वाला नहीं है. इसका दर्द तो होना ही है. एक बात समझो क्रोसीन खाकर सिरमें कोई डंडा मारदे तो क्रोसीन खानेसे डंडेकी पीड़ा दूर होगी? नहीं होगी, अतएव ऐसी बहुत सी पेटेन्ट दवाईयां होती हैं. लेकिन इन पेटेन्ट दवाईयोंकी एक मर्यादा है जो मर्यादामें पेटेन्ट दवाईयां दर्दको दूर करती हैं. नवरत्नमें जो जो उपदेश चिंतनके तौरपर देनेमें आये हैं वह पेटेन्ट औषधि नहीं हैं. जो चिंता तुमको हो रही है उस चिंताको दूर करनेका उपाय इस चिंतन द्वारा है, औषधि है. इसको तुम पेटन्ट सिद्धान्तकी तरह पकड़ कर चलोगे तो लाभ नहीं होगा. एक सामान्य उदाहरण दूं कि **निवदने चिंता त्याज्या** यह महाप्रभुजीका प्रमुख सिद्धान्त हो तो बात बन गई फिर ब्रह्मसम्बन्ध लेना किसलिये? **विनियोगेऽपि सा त्याज्या** तो फिर सेवाकी मुसीबतमें क्यों पड़ना? **समर्थो हि हरिः स्वतः** तो शरणमंत्रकी कंठी भी क्यों लेनी? समर्थ हरि तो स्वतः

सब कुछ जानते हैं ही अतएव **सैंया भये कोतवाल अब डर काहेका!**

इस प्रकारके नवरत्नमें कहे गये जो उपदेश हैं उन उपदेशोंको हम पेटेन्ट औषधिकी तरह अगर लेना चालू कर देंगे तो यह रोग पैदा करनेवाली अथवा बढ़ाने वाली औषधि होगी, रोगनिवारक औषधि नहीं. अतएव अतिशय सावधानी रखो इस बारेमें कि जब महाप्रभुजी चिंताके निवारणकेलिये जो चिंतन कह रहे हैं नवरत्नमें, वह उस चिंताके बारेमें है, दूसरी सिच्युऐशनमें यह लागू नहीं पड़ेगी. अतएव तुमको अगर यह चिंता नही होती तो गलत जल्दबाजीमें पड़नेकी जरूरत नहीं है कि विनियोग करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है. बच्चे बच्चियां जहां जाते हों वहां जायें, भाड़में जानेदो सबको. हमने तो निवेदन कर दिया है न, अरे! ऐसे कैसे चलेगा? व्यापारमें ऐसा चलाओगे? व्यापारमें ऐसा नहीं चलात, तुम्हारा लड़का व्यापारके ऊपर नहीं बैठता तो तुम्हारे पेटका पानी हिलने लग जाता है. तुम्हारा लड़का अगर स्कूलमें पढ़ने नहीं जाता, इधर उधर घूमता है तो तुम्हारे पेटका पानी हिल जाता है. लेकिन सेवामें नहीं आ रहा तो यह दैवी जीव नहीं होगा, आसुरी जीव होगा. हम क्या कर सकते हैं अगर सेवामें नहीं आता? प्रभु सर्वसमर्थ हैं. प्रभुको सेवा लेनी होगी तो लेंगे नहीं लेनी हो नहीं लेंगे. इसमें जीव क्या कर सकता है? जीव तो असमर्थ है, यह सिद्धान्त यहां प्रयोगमें नहीं लाते? यहां प्रयोगमें लानेकेलिये यह सिद्धान्त नहीं है भाईसाहब! तुम गलत समझ गये पेटेन्ट मेडीसिन नहीं है. पहले निदान बराबर करो कि रोग क्या है फिर दवा क्या लेनी समझमें आयेगा. पहले समझो किस प्रकारकी चिंता हो रही है. उस पर्टिक्युलर चिंताका निवारण करनेकेलिये महाप्रभुजीने किस प्रकारका चिंतन समझाया है? वह चिंतन उस चिंताके निवारणके लिये ही उपयोगी है, सर्व परिस्थितियोंमें वह चिंतन उपयोगी नहीं है. अतएव इस उपायका अनुसरण न करनेमें हम महाप्रभुजीका कोई अपराध नहीं कर

रहे. क्योंकि टीकाकार भी यहां ऐसा ही प्रश्न उपस्थित करते हैं कि फिर तो स्वछंद व्यवहार हो जायेगा. लोग तो मनमें आयेगा सो करेंगे. क्योंकि चिंता तो किसी प्रकारकी करनी ही नहीं है. अरे, लेकिन एक बात ध्यानसे समझो कि चिंता कहां नहीं करनी, यह चिंता नहीं करना यह किस चिंतनके संदर्भमें कहनेमें आरहा है और किस प्रकारका तुमको उद्वेग हो रहा है. क्या उद्वेगके कारण तुमको कुछ चिंता हो रही है? उस चिंताका किस चिंतनसे निराकरण करना इन सबकी सावधानी रखो. जैसे होमियोपेथीमें सिम्प्टम देखकर औषधि ली जाती है उसी प्रकार सिम्प्टम देखे बिना औषधि लोगे तो नहीं मरते होगे तो मर जाओगे पुष्टिमार्गमें. अतएव नवरत्न अतिशय गजबका ग्रंथ है पुष्टिमार्गमें लेकिन ऐसा नहीं है कि **दंडेन गोगर्दभो** अर्थात् एक डंडा हाथमें आ गया और फिर गाय या गधा सब ढोरोंको उसीसे हांको.

इसमेंके उपदेश, हरेक जगह लागू करनेके नहीं है. क्योंकि यह बाततो निदानके ऊपर निर्भर करेगी. अगर तुम ऐसा कहो कि महाप्रभुजीने उपदेश दिया है और इसे हर केसमें लागू करेंगे ही तो इसकी सच्चाई फिर क्या स्वरूप लेगी कि तुम्हारा लड़का पढ़ता न हो तो **भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीञ्च गतिम्,** उसे कोई लड़की न देता हो तो **भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकींच गतिम्,** जुआ खेलने जाता हो तो कोई तकलीफ नहीं **भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीञ्च गतिम्,** पुलिस पकड़कर ले जाये और घूस देनेके लिये पैसे न हों तो **भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीञ्च गतिम्,** पुलिस वहां चौकीपर खूब पिटाई करे तो भी **भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीञ्च गतिम्,** ऐसे करके बता सकते हो तो बात सच्ची. जो ऐसा कर सकते हो तो वास्तवमें **भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीञ्च गतिम्** उपदेशके तुम सच्चे अधिकारी!

सिद्धान्त तुम्हें समझमें आ गया लेकिन अगर तुम वकीलके चक्करमें पड़े, जो तुम्हें छुड़ाने जा रहा है, जो तुम्हारी जमानत देने जा रहा है तो भगवान कहां कुछ कर रहा है यार! तुम कर रहे हो. बातको अच्छी तरहसे क्यों नहीं समझते? गतिको कन्ट्रोल तुम कर रहे हो. भगवानके ऊपर तुम कहां छोड़ रहे हो? तो जिस प्रकार इन लौकिक विषयोंको तुम भगवानके ऊपर नहीं छोड़ते वैसे ही भक्तिके विषयमें भी गलत प्रकारसे भगवानके ऊपर हरेक जबाबदारी नहीं डाल देनी चाहिये. यह तो जो चिंता होती हो उस चिंताके निवारणकेलिये कोई ऐसा चिंतन करनेकेलिये कहनेमें आया है कि **भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीञ्च गतिम्.**

निवेदनं तु स्मर्तव्यं कहनेमें जो आ रहा है वह तो हम बीमार हो गये और अब हम कहें कि महाप्रभुजीने कहा है कि **निवेदनं तु स्मर्तव्यं** डॉक्टरके पास जाओ ही नहीं. और बहुत जोश आ गया तो **सर्वथा तादृशैः जनैः** डॉक्टरके पास नहीं जाना, तादृशीके पास जाकर निवेदनके अर्थका विचार करेंगे कि यह दारा, आगार, पुत्र, देह, सब प्रभुको समर्पित किया है. और अब बीमार पड़ गये तो प्रभुकी जबाबदारी है कि हम क्या कर सकते हैं? करते हो ऐसा? नहीं करते, डॉक्टरके पास जाते हो. सब प्रकारके उपचार लेनेका प्रयास करते हो. जब इस बारेमें तुम **निवेदनं तु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशैः जनैः** नहीं करते तब तुम्हें यह चिंता जो नहीं होती हो तो इसका चिंतन करनेकी जरूरत नहीं है. यह बात तुम्हें स्पष्ट रीतिसे समझ लेनी चाहिये. अतएव जितना चिंतन इस उपाय रूपमें, चिकित्सा रूपमें, वर्णन करनेमें आया है वह किसी प्रकारकी चिंताके रोगके उपाय रूप हैं. दवा एक अलग वस्तु है, स्वस्थ खुराक एक अलग वस्तु है. पथ्य एक अलग वस्तु है. स्वस्थ खुराक अर्थात् क्या? जिस खुराकको लेकर हम बीमार न पड़ें, जिस खुराकको खाकर हमें

कमजोरी नहीं आवे, अशक्ति नहीं आवे, उसका नाम स्वस्थ खुराक. पथ्य अर्थात् क्या? किसी दवाको जो खुराक माफिक आती हो उस रोगमें वैसी खुराक लेना दूसरा कुछ नहीं. जैसे दस्त हो गया और तुम कहो कि ढोकला खाऊंगा, फाफडा खाऊंगा, बासोंदी खाऊंगा, रबड़ी खाऊंगा, क्योंकि दवा तो ले ही रहा हूं. अरे लेकिन दवा ले रहे हो तो उसका हेतु यह नहीं है कि तुम रबड़ी खाआ, ढोकणा खाओ. क्योंकि दस्त हो गया है तो उस समय तुम्हें क्या पथ्य लेना चाहिये. दही भात लो, खिचड़ी लो, छाछ लो, ऐसा कुछ लो. तो पथ्य खुराककी एक अलग केटेगरी है. स्वस्थ खुराक एक अलग केटेगरी है. और फिर दवाके अनुपातमें, अब तो विक्स् फौरमूला ४४ की हम लोग पांच छ: शीशी रखते हैं, छींक आई विक्स फौरमूला ४४, सरदी हो गई विक्स फौरमूला ४४, रास्ते चलते प्यास लगी विक्स फौर्मूला ४४, पागल हो जाओगे मर जाओगे. **लम्बेके साथ ठिगना जाये मरे नहीं तो बीमार हो जाये.**

यह विक्स फौरमूला ४४ हरेक जगह लागू नहीं पड़ता इस बातको तुम ध्यानसे समझो. विकस फौरमूला ४४ लेनेका भी कोई अनुपात होता है. कोई इस प्रकार नहीं लिया जाता. च्यवनप्राश ले आये और कहा कि कितना खाना, एक दो सेर च्यवनप्राश खा गये. एक दो सेर च्यवनप्राश खाना होता है क्या? दवाको दवाके अनुपातमें ही लिया जाता है. पथ्यको पथ्यके तरीकेसे ही लिया जाता है. स्वस्थ खुराकको स्वस्थ तरीकेसे ही लेना होता है उसमें फिर थोड़ा बहुत फ्लक्च्युऐशन आयेगा तो तुम्हारा जीवन उसे संभाल लेगा. स्वस्थ खुराक लेते हुये थोड़ा बहुत फ्लक्च्युऐशन आयेगा जैसे कि आज चीज मुझे ज्यादा पसन्द आ गई तो चार खानी थीं लेकिन छ: खा लीं कि आठ खा लीं यह फ्लक्च्युऐशन है. पेट भारी हो जायेगा. दूसरे दिन रातका खाना मत खाओ तो ठीक हो जाओगे. ऐसी सारी फ्लक्च्युऐशनकी सावधानी लेनेकेलिये अपने शरीरमें बहुतसी

व्यवस्थायें मौजूद हैं. लेकिन इन व्यवस्थाओंकी रद्दो बदल करनेके उपद्रव जो तुम करते रहोगे कि पथ्यको तुम खुराककी तरह खाओ, खुराकको तुम दवाकी तरह खाओ, दवाको तुम खुराक की तरह खाओ तो फिर तो मरना ही, मरना ही और मरना ही है. अतएव नवरत्न जो है उसके उपदेश सावधानीसे समझो कि किन बीमारियाके औषधिरूपमें वर्णन किये गये चिंतन हैं.

यह हरेक परिस्थितिमें लागू करनेवाले चिंतन नहीं हैं. यह चिंताकी बीमारी जिस परिस्थिति, उद्वेगसे उत्पन्न हुई है अथवा जो उद्वेगको उत्पन्न करने वाली है अथवा तो उद्वेगरूपा यह चिंता है, उसके उपाय रूपमें किस चिंतनसे मिट सकती है वह उपाय महाप्रभुजीने इस नवरत्नमें वर्णन किये हैं. उन्हें हरेक जगह लागू करनेकी जरूरत नहीं है.

भगवानके बारेमें निश्चिंत नहीं होना :

जैसे ठाकुरजीको सरकारने ले लिया, भगवान हैं **कर्तुं अकर्तुं समर्थो हि हरिः स्वतः निजेच्छातः करिष्यति** मेरे माथे बिराजना चाहें ता मेरे माथे बिराजें, ट्रस्टीओंके माथे बिराजना होगा तो ट्रस्टीओंके माथे बिराजेंगे, सरकारके माथे बिराजना होगा तो सरकारके माथे बिराजेगे, म्युजियम्में बिराजना होगा तो म्युजियममें बिराजेंगे. भगवान तो कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथा कर्तुम् समर्थ हैं. ऐसा जो निश्चिंतताका भाव तुम रखते हो तो तुम प्रवाही जीव हो कि न हो लेकिन निश्चित आसुरावेशी जीव तो हो ही. भगवान तुम्हारे घर बिराजते हों तो इसके बारेमें तुम निश्चिंत हुवे कैसे? यह जो चिंताओंको निवृत्त करनेका चिंतनका जो विविध उपदेश दिया गया है यह किसी परिस्थितिको अनुलक्षकरके ही देनेमें आया है. उसका योग्य परिस्थितियोंमें सौ प्रतिशत असर सच्चा लेकिन इसे जब दूसरी परिस्थितियोंमें बिना विचारे तुम प्रयोग करने लगोगे तो मुसीबत तो खड़ी होगी ही.

दवाकी बोतलको कोकाकोलाकी तरह पीने लगोगे, बोतलकी बोतल ही चढ़ा लोगे, तो फिर सत्यानाश ही होगा. ऐसे नवरत्नके उपदेशके साथ यह भी एक सावधानी लेनी बहुत जरूरी है. अगर नवरत्नका सच्चा तात्पर्य समझना हो तो.

प्रश्न: आत्मनिर्भरतामें भी किसी वस्तुका आरम्भ होता है. तो आत्मनिर्भरता और आरम्भके बीचमें अन्तर क्यों?

उत्तर: इस बातको अच्छी तरहसे समझो. ठीक बात है, आत्मनिर्भर होनेमें भी किसी न किसी प्रकारका आरम्भ अर्थात् इनिशियेटिव हम लेते हैं. चलनेमें हम आंखका प्रयोग करते हैं कि नहीं करते? चलनेमें हम आंखका प्रयोग करते हैं तो आंखसे चल रहे हैं ऐसे नहीं कहा जाता? बहुतसी चीजोंको हमनें देखना हो तो चलकर ही देखना पड़ता है. जैसे तुमको प्रवचन सुनना है तो यहां चल कर आये हो कि नहीं? तो तुम पैरसे सुन रहे हो ऐसे तो नही कहा जायेगा? ऐसे ही आत्मनिर्भर होनेमें भी कोई न कोई आरम्भ तो रहा ही है. लेकिन उससे आरम्भ और आत्मनिर्भरतामें अन्तर नहीं है ऐसा नहीं कहा जा सकता. क्योंकि आत्मनिर्भरता मिलनेके बाद ही इनिशियेटिव और आत्मनिर्भर होनेकेलिये लें तो इनिशियेटिव दोनों इनिशियेटिवके अलग अलग केस हैं.

प्रश्न: ब्रह्मसम्बन्ध लेनेके बाद लगभग वैष्णवोंकी ऐसी समझ होती ह कि ठाकुरजी हमारे पति और हम उनकी पत्नि. तो महाराणीको मां तथा श्रीजीको पिता किस प्रकार समझना?

उत्तर: सबसे पहले मुद्दा यह समझो कि मनुष्य जब भी कोई भाषा बोलता है तब उस भाषामें प्रयोग होते शब्दोंका जो संदर्भ होता है उस संदर्भको पकड़कर चलेंगे तो फिर भाषा मेकेनिकल हो जायेगी, जीवंत नहीं रहेगी. आज भी कौम्प्यूटरको तुम गुजरातीसे हिन्दी कि इंग्लिशमेंसे गुजराती अनुवाद करनेको कहोगे तो कौम्प्यूटर कर सकता है. लेकिन जो बात

कौम्प्यूटरको समझमें नहीं आती वह **मेरा सिर चक्कर खा रहा है.** इसका इंग्लिश अनुवाद करेंगे तो वह होगा **माई हेड् इस ईटिंग सर्कल्.** ऐसा कौम्प्यूटर कर देगा. क्योंकि तुमने इसका इक्वेशन बताया है कि मेरा सिर अर्थात् माई हैड, चक्कर अर्थात् सर्कल्, खा रहा है अर्थात् ईटिंग. अब माई हैड इस ईटिंग सर्कलका अर्थ इंग्लिशमें क्या? और मेरा सिर चक्कर खा रहा है उसका हिन्दीमें अर्थ क्या? एक ही क्या? अन्तर पड़ गया कि नहीं? ऐसा अन्तर पड़ जाता है भाषाके प्रयोगमें. चक्कर आना ये हमारी हिन्दी भाषाकी एक लाक्षणिक विशिष्टता है, इंग्लिशमें ईटिंग सर्कल वाक्यमें ऐसी बात अभिव्यक्त नहीं होती. अतएव कौम्प्यूटर हमारी हिन्दी भाषाका अनुवाद नहीं कर सकता और इंग्लिशसे हिन्दीमें अनुवाद करना हो तो यही दिक्कत आयेगी. क्योंकि इसके जो कुछ प्रयोग होंगे वह फिरसे हिन्दीमें अनुवादित नहीं होंगे.

मेरा एक भतीजा, किसी स्कूलमें पढ़ता था. यह जिस स्कूलमें पढ़ता था उसमें एक पादरी था. वह दादाजीसे भी पढ़ा था. एक दिन वह कुछ ऊधम कर रहा था तो उस पादरीने उससे कहा **तुम गोस्वामी?** इसने कहा **हां गोस्वामी.** तो तुम गोस्वामी होकर ऊधम क्यों करते हो? मैं गोस्वामियोंको जानता हूं. मेरे दादाजीका नाम लिया, मेरा नाम लिया, तब मेरे भतीजेने पादरीसे कहा **हां हां दीक्षितजी महाराज मेरे ग्रैन्डफादर हैं.** ग्रैन्डफादर अर्थात् हमारे यहां तातजी कहे जाते हैं उसका इंग्लिश अनुवाद कर दिया. अब उस पादरीने मुझे लैटर लिखा **हियर इस ए बॉय हु क्लेमस् टु बी योर सन् एन्ड आई कन्सिडर दैट इस मोस्ट स्केन्डलस् रियुमर अगेन्स्ट यू.** मैंने कहा अरे! उन्हीं दिनोंके आस पास मेरी शादी हुई थी और इतना बड़ा मेरा लड़का जो कि कॉलेजमें पढ़ता हो और ऊधम करता पकड़ा गया, यह तो बहुत बड़ा स्केन्डल हो गया ना! मैं तो घबरा गया. मैंने कहा **इतना बड़ा लड़का मेरा हुवा किस प्रकार? अभी तो शादी**

हुवे ही दा साल हुवे हैं. कॉलेजमें ऊधम करता इतना बड़ा. मैं भी नर्वस हो गया. मैंने कहा **बिग स्केन्डल कुछ लगता है. आई एम नॉट रिस्पोन्सिबल फौर दैट** मैंने भी कह दिया. फिर पूछते पूछते पता चला कि अच्छा मेरा भतीजा है. मैंने उससे पूछा **ऐसे क्यों कहता है भाई?** वह बोला **तातजी महाराजका इंग्लिशमें अनुवाद क्या करना?** तातजी महाराजका जो इंग्लिशमें अनुवाद ग्रैन्डफादर हो तो मैं उसका पिता होता हूं, और दो साल मेरी शादीको हुवे हों और सोलह सत्रह सालका लड़का कॉलेजमें पढ़ता हो तो स्केन्डल हुवा कि नहीं! ऐसी बहुतसी भाषाकी समस्या है.

वैसी ही समस्यायें हमारे यहां भी लगी हुई हैं. क्योंकि पति कहते ही हमने एक रिजिड कन्सेप्ट मान लिया है. बारातमें गीत गाया जाता है **घोड़ीपे चढ़कर आया हमारा वरराजा.** ऐसे ही हमें लगता है कि ठाकुरजीभी ऐसे ही किसी घोड़ी पर चढ़कर आये हुवे वरराजा होंग. इस अर्थमें ठाकुरजी पति नहीं हैं. पति अर्थात् **पाति इति पति** रक्षण करे उसका नाम पति, और भाषामें जो रक्षण नहीं कर सकता स्वयं ही छोड़कर भाग जाये वह भी पति हो सकता है ब्याहला पति, ऐसा भी हो सकता है समझे! अर्थात् इस पतिका अर्थ और उस पतिका अर्थ एक जसा नहीं है. हम भूपति कहते हैं, वाकपति कहते हैं. तो वाकपतिका अर्थ पहले कन्यादान लिये हुवे वाला पति नहीं, धनपति कहें तो यह धनपतिका अर्थ ऐसा नहीं कि धन इसे कन्यादानमें हस्तमिलापके द्वारा मिला है. धनपतिका अर्थ धनका मालिक होता है, धनका जो रक्षण करता है, धनका उपभोग करता है वह धनका पति. इसी प्रकार परमात्मा हमारा पति है इस अर्थमें नहीं कि यह पुरुष है और हम स्त्रियां हैं. फिर साड़ी पहरनी और ब्लाउज पहरना. बिचारे परमात्माकी फजियत क्यों करते हो यार! इस अर्थमें ठाकुरजी पति नहीं हैं. इस अर्थमें यमुनाजी भी मां नहीं हैं.

मांका भी कोई एक अर्थ होता है. जिसका कॉम्प्यूटर जैसे अर्थ करने जायेंगे तो बहुत गड़बड़ हो जायेगी. पिताका भी एक अर्थ होता है, पतिका भी एक अर्थ होता है. हम सब गुजराती अच्छी तरह जानते हैं कि विवाहित लोग भी अपनी पत्निको बहुत बार बेन कहते हाते हैं. वहां बहेनका अर्थ क्या? मणीबेन आई, अरे भई तू मणीबेन क्यों कहता है? यह सभ्यताकी एक पद्धति जो चल रही है उसमें किसी भी स्त्रीको बहिन कहना आदर देनेके लिये तो अपनी पत्नीको किस कारण अपमानित करना? अतएव पत्नीको भी मणिबेन ही कहते हैं मणिभाई. तो यह मणीभाईकी जो मणिबेन पत्नी है जिसे वह बेन कह रहा है वह बेनके अर्थमें नहीं परन्तु आदरके अर्थमें. बहिनको जितना आदर देना उतना पत्नीको किस कारण नहीं देना अतएव मणीबेन. पति या मांके अर्थ कुछ शारीरिक हैं, कुछ भावनात्मक हैं, कुछ सामाजिक हैं, कुछ आध्यात्मिक अर्थ हैं. उन सब आध्यात्मिक और आधिदैविक अर्थमें प्रभु अपने पति हैं. यमुनाजी अपनी मां हैं. इन शारीरिक अर्थमें प्रभु अपने पति और श्रीयमुनाजी अपनी मां नहीं हैं. इतना खुलासा मुझे लगता है कि पर्याप्त है. फिर भी कोई संदेह हो तो पूछ सकते हो.

प्रश्नः (प्रश्न रिकार्ड नहीं हुवा)

उत्तरः उद्वेग पैदा करनेवाली कि उद्वेगसे पैदा होती चिंता ऐसा कहते ही भेद आ गया. जब हम इस प्रकारसे भेद कर रहे हैं तो चिंता और उद्वेगमें भेद आ ही गया ना! मैंने तीन प्रकारकी चिंता पुरुषोत्तमजीकी टीकामेंसे बतायी थी. एक चिंता छोड़ दी है वह उद्वेगरूपा चिंता. पुरुषोत्तमजी तीन प्रकारकी चिंता बताते हैं. उद्वेगजनिका, उद्वेगजनिता और उद्वेगरूपा ऐसे त्रिविध चिंता. यहां तो तीन चिंताकी बात नहीं करी परन्तु दो चिंताकी बात करी हैं.

<u>नवरत्न ग्रंथका स्वाध्याय</u> :

नीत्से करके एक बहुत बड़ा चिंतक हुआ है जर्मनीका. इसने मनुष्यकी एक मजेदार मजाक उड़ाई है वह कहता है **मुझे ऐसा लगता है कि यह सभी जानवर मनुष्यके बारेमें क्या विचारते होंगे?** तो उसने एक कल्पना करी. वह ऐसा कहता है **सभी जानवरोंको लगता होगा कि हमारे जैसा ही जानवर कैसे हंस रहा होगा? हमारे ही जैसे जानवर पैरोंसे चलत हैं, हाथसे कुछ लेते हैं, करते हैं, खाते हैं, सोते हैं, रोते कैसे होंगे?** आगे यह कहता है **यह रोता कि हंसे, खैर इनकी कोई ऐसी भाषा होगी.** जानवरोंको लगता होगा कि हमारी कुछ ऐसी भाषा है. जैसे हाथी चिंघाड़ता है, घोड़ा हिनहिनाता है, कुत्ता भौंकता है, वैसे ही इसका कोई स्टाइल होगा बोलनेका इस प्रकार, रोनेका और हंसनेका. आखिरमें इसे लगता है कि चिंता करके यह क्यों बैठता होगा? नीत्से वहां कहता है कि **जो हमारे जैसा जानवर है. उसे चिंता क्यों होती होगी? इसके लिये जानवर कहते हैं कि कोई हमारेमेंसे ही यह जानवर पागल हो गया लगता है.**

एक बात ध्यानसे समझो कि जो हम पागल न हो गये हों तो हमें चिंताके बारेमें कुछ निवृत्तिके उपाय खोजने ही पड़ेंगे. और उसमें सबसे पहला उपदेश श्रीमहाप्रभुजी देते हैं: **चिन्ता कापि न कार्या निवेदितात्मभिः कदापीति। भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीञ्च गतिम्।।**

आप लोगोंके पास जो कागज है इसे अगर आप पढ़ोगे तो विचारमें आ जायेगा. क्योंकि यह प्रवचन नहीं है, सघन स्वाध्याय है अतएव इसकेलिये एक प्रयोग कर रहा हूं. अगर समझमें न आये तो अच्छी तरहसे मुझसे पूछना इस प्रथम श्लोकका अन्वय हम एक बार अच्छी तरहसे समझ लेते हैं.

<u>श्लोकान्वय और श्लोकका मानसशास्त्रीय विश्लेषण</u> :

१.(आन्तरिकोपायोपदेश) : **निवेदितात्मभिः** (कर्तृप्रज्ञाविवेक) ***कापि चिन्ता*** **कदापि न कार्या इति पुष्टिस्थो भगवान्** (सम्प्रदानमतिविवेक) **अपि *लौकिकीं च गतिं* न करिष्यति.**

सरल भावानुवाद: अर्थात् जो निवेदितात्माऐं हैं, जिन्होंने आत्मनिवेदन किया है, उन्हें कोई भी चिंता कभी भी नहीं करनी चाहिये. क्योंकि पुष्टिस्थ भगवान कभी भी तुम्हारी लौकिक गति नहीं करेंगे.

अब इसमें तुम देखोगे कि बहुत सारी वस्तुऐं हैं. तुम्हें दीखेगा कि **निवदितात्मभिः** के अक्षर जो हैं वह बहुत छोटे सघन रखे गये हैं. एक दूसरेसे सटके हुये शब्द हैं. ***कापि चिन्ता***के अक्षर तिरछे टाइपमें लिखे गये हैं और ***लौकिकीं च गतिम्*** भी तिरछे टाइपमें हैं. जोकि इस श्लोकमें नहीं है लेकिन इसके नीचेके श्लोकमें तुम्हें दिखाई देगा कि कुछ वाक्योंके नीचे अन्डरलाइन है. अब यह सब मानसविश्लेषणके बहुतसे घटक हैं उनको एक बार अच्छी तरहसे समझ लो.

<u>सघन अक्षरोंसे आर्थिकोपदेशका निरूपण</u> :

नवरत्नमें जैसे मैंने तुमको समझाया कि चिंताका निरूपण और उसकी निवृत्तिके उपाय समझानेमें आये हैं. और उस निवृत्तिका उपाय कहीं महाप्रभुजीने शब्दोंसे प्रकट करा है तो कहीं अर्थसे प्रकट किया है. तो जब निवृत्तिका उपाय महाप्रभुजी शब्दसे प्रकट नहीं करते लेकिन अर्थसे प्रकट करना चाहते हैं उन अक्षरोंकों मैंने सघन कर दिया है जैसे यहां निवेदितात्मभिः तुम्हें दिखाई देगा. आगे तुम देखोगे तो सर्वेश्वर सर्वात्मा दिखाई देगा उसके अतिरिक्त यहां जो तीसरेमें प्रभु शब्दको मैंने सघन कर दिया है. फिर चौथेमें प्रभु के अक्षरोंको एकदूसरेसे

सघन बना दिया है. तो इस प्रकार जहां अक्षरोंको सघन किया है उनका सावधानीसे अर्थ समझो कि महाप्रभुजी कुछ आर्थिक उपदेश दे रहे हैं. शब्दमें कोई उपदेशकी टोन नहीं है. लेकिन अर्थगर्भित शब्द प्रयोग कर रहे हैं, अर्थगर्भित शब्द प्रयोग कर रहे होनेके कारण इनमें से कोई ध्वनि उपदेशकी निकल रही है.

वाचनिक और आर्थिक उपदेशमें अंतर :

उपदेश दो प्रकारके होते हैं वाचनिक उपदेश और आर्थिक उपदेश. इनका एक उदाहरण देता हूं. हमारे यहां एक बहुत प्रसिद्ध कहावत है: **कहना बेटीको और सुनाना बहूको.** तो बेटीको जो कहनेमें आ रहा है वह है वाचनिक उपदेश और बेटीको कहकर जो बहुको सुनानेमें आ रहा है वह वाचनिक नहीं है परन्तु आर्थिक उपदेश है कि मैं जो मेरी बेटीको भी यह बात कह रही हूं तो तुझे भी समझ लेनी चाहिये. इसका नाम आर्थिक उपदेश. तो कितने ही उपदेश आर्थिक होते हैं, आर्थिक अर्थात् टकाधर्मवाले नहीं, अर्थसे जुड़े हुवे उपदेश और वाचनिक उपदेश अथात् वचनसे जुड़े हुवे उपदेश.

नवरत्नमें वाचनिक और आर्थिक उपदेश :

नवरत्नमें जहां जहां भी महाप्रभुजीने वाचनिक उपदेश करे हैं वहां वहां उनके नीचे मैंने अन्डरलाईन करी है कि यह वचन उपदेशकेलिये दिये गये वचन हैं. देख लेना सबमें अन्डरलाईन हैं. जहां अन्डरलाईन नहीं करी और टाईपको कन्डेन्स् कर दिया है, सघन कर दिया है. वहां कोई उपदेशका वचन नहीं है. वचन एकदम तटस्थ हैं, लेकिन इसमेंसे भी कोई अर्थगर्भित तात्पर्य निकल रहा है. कुछ बताना चाह रहे हैं, कुछ सुनाना चाह रहे हैं महाप्रभुजी. जिसका पहला उदाहरण हमको मिला **निवेदितात्मभिः**. तुम्हें एक सामान्य उदाहरण देता हूं, कोई आदमी बहुत झगड़ा करता हो तो **अरे यार! ऐसे सयाने आदमी होकर तुम ऐसा करते हो?** यहां हम कोई उपदेश नहीं दे रहे

कि तुम ऐसा नहीं करो. एक **सयाना** शब्द लगानेसे उसमेंसे उपदेश निकल रहा है कि **अगर तुम सयाने हो तो तुम्हें ऐसा काम नहीं करना चाहिये.** अगर तुम ऐसा काम कर रहे हो तो उसका मतलब कि तुम सयाने नहीं हो. ऐसा कुछ महाप्रभुजी एक आर्थिक उपदेश दे रहे हैं **निवेदित्माभि:** द्वारा.

भक्तिमार्गमें प्रवृत्तको नवरत्नका उपदेश :

सबसे पहली वस्तु यह जो कि प्रवचनके प्रारम्भमें तुमने मैंने कही थी कि **भक्तिमार्गे प्रवृतस्य दाढर्यार्थम् इदम् उच्यते अन्धस्य सूर्यइव तद्विमुखस्य न अत्र अर्थिता.** (नवरत्नप्रकाश). जो भक्तिमार्गपर चलना चाहता हो उसकी भक्तिको दृढ़ करनेके लिये यहां कुछ कहनेमें आया है. अंधेके लिये सूर्य उगे कि थम जाये उससे कुछ फरक नहीं पड़ता. ऐसे नवरत्नमें कोईभी उपदेश जो भक्तिमार्गपर चलना नहीं चाहता उसके बारेमें लागू मानो तो वह गलत धारणा है. लागू तो पड़ जाये, अगर हम बंध पड़ती पागको पहर लें तो. लेकिन पाग बंधपड़ती हो और पहन लें अतएव वह तुम्हारी हो गई, ऐसी भ्रमणा मनमें मत रखना. पाग किसी कारणसे तुम्हारे सिरपर बंधती है अतएव तुमको फिट आ गई है. अतएव ये तुम्हारी पाग है ऐसा मत मान लेना. इसमेंसे कोई भी उपदेश जो तुम्हें भक्तिमार्गपर चलनेपर कठिनाईके रूपमें चिंता नहीं हो रही वैसी चिंताको निवृत्त करनेके लिये नहीं है.

यहांके उपदेश निवेदितात्माओंके लिये हैं. अतएव सबसे पहला शब्द है **निवेदितात्मा.** बस एक बातमें हरेक बात स्पष्ट हो गई कि जो वस्तु यहां कहनेमें आ रही है वह निवेदितात्माओंको कहनेमें आ रही है. पुष्टिमार्गमें भी सैद्धान्तिक दृष्टिसे हरेकको निवेदितात्मा होना जरूरी था. आज **पुरी एक अन्धेरीका जो कोई राजा. टके सेर भाजी टके सेर खाजा.** हमने पुष्टिमार्गको बना दिया है. जो आये उसे देदो ब्रह्मसम्बन्ध. एक बात ध्यानसे

समझो कि महाप्रभुजीको स्वयंकी हिम्मत नहीं पड़ती थी **तोसों सेवा नाहि निभेगी ताते तोकों ब्रह्मसम्बन्ध नाहि देत हों.** हम महाप्रभुजीके भी प्रभु हो गये अतएव सबको ब्रह्मसम्बन्ध दे रहे हैं. अतएव **टके सेर भाजी टके सेर खाजा.**

तो पुष्टिमार्गमें हरेक व्यक्ति निवेदितात्मा नहीं हो सकता तो सारा गांव निवेदितात्मा किस प्रकार हो सकता है? गांवकी चिंताके निवारणके बारेमें यहां कुछ भी कहनेमें नहीं आया है. यहां जो कहनेमें आ रहा है वह जो निवेदितात्मा हैं उनको होती चिंताके वारण करनेकेलिये कहनेमें आ रहा है. पहली शर्त है निवेदितात्मा होना. **निवेदितात्माभिः** अब एग्जेक्ट महाप्रभुजीकी टोन देखो. **ऐसे सयाने होकर यह सब बात करते हो**? ऐसे उस सयानेमें जो टोन आनी चाहिये, बोलते हुवे जो ध्वनि प्रकट होनी चाहिये वह ध्वनि तुम यहां विचारोः **क्यों निवेदितात्मा होकर तुम लौकिक विषयोंकी चिंता करते हो?** तो बात समझमें आ जायेगी कि महाप्रभुजी **निवेदितात्मा** शब्दसे किस प्रकारका आर्थिक उपदेश द रहे हैं? **निवेदितात्माभिः कापि चिन्ता न कार्या.**

<u>तिरछे अक्षरोंवाले शब्दोंसे रोगका वर्णन</u> :

कापि चिन्ता यह तिरछे हो गये हैं. जिन शब्दोंको मैंने तिरछा किया है तब रोग क्या है, उसे बतानेकेलिये. चिकित्साशास्त्रीय मीमांसा चार रूपोंसे होती हैः १. रोग २. रोगका कारण ३. रोगकी निवृत्ति और ४. निवृत्तिका उपाय.

रोगमें ही नहीं अपितु योगमें भी ऐसा वर्णन करनेमें आया है कि १. चित्तवृत्तिके भटकावके कारण, २. चित्तवृत्तिको निरुद्ध करनेका प्रयोजन, ३. चित्तवृत्तिको निरुद्ध करनेके उपाय और उन्हें निरुद्ध कर लेनेसे प्रकट होते परिणाम. जब भी शास्त्र ऐसे चिकित्सात्मक उपदेश देता है इनमें हर समय इन चार पौइन्टकी सावधानी लेनेमें आती हैं. १. कष्टका स्वरूप, २.

उसके कारणका निदान, ३. उसकी निवृत्तिके उपाय और, ४. निवृत्तिका स्वरूप. तो चिंताके जिन जिन स्वरूपोंका निदान यहां महाप्रभुजीने पकड़ लिया है उन सब स्वरूपोंको मैंने तिरछा कर दिया है. अतएव इस कागजको तुम अच्छी तरहसे देख लेना.

जहां जहां अक्षर तिरछे मिलें वहां वहां तुम्हें समझ लेना चाहिये कि रोगका वर्णन है. जहां जहां अक्षर कन्डेन्स् मिले वहां वहां कोई पथ्यका वर्णन है. औषधिका वर्णन नहीं है कि इस औषधिके साथ पथ्य कैसा लेना है? तुम्हें १. स्वस्थ खुराक, २. पथ्य और ३.औषधि ऐसे तीनोंका भेद समझा दिया. अतएव जहां आर्थिक उपदेश है वहां किसी पथ्यका वर्णन करनेमें आया है कि इसके साथ पथ्य क्या होना चाहिये.

अन्डरलाईनसे औषधिका वर्णन :

जहा अन्डरलाईन है वहां औषधिका वर्णन है कि इस चिंताको मिटानेकेलिये किस प्रकारका चिंतन करना चाहिये कि जिससे चिंताके ऊपर तुम काबू पा सको. यह मुख्य सारा हमारा सिस्टम है. देखते जाओगे तो ख्यालमें आयेगा तत्काल याद करना तो कठिन काम है. **निवेदितात्मभिः कापि चिन्ता कदापि न कार्या इति पुष्टिस्थो भगवान अपि लौकिकीं गतिम् न करिष्यति.**

प्रवाहीजीवको लौकिक गतिके कारण उद्वेग नहीं होता :

इसमें ध्यानसे देखोगे तो *कापि चिन्ता* और *लौकिकीं गतिं* यह रोगका स्वरूप है. कोईभी चिंता मत करो, लौकिक गति तुम्हारी नहीं होनेकी. निवेदितात्मा जीवकी लौकिक गति होना यह उद्वेगका कारण है, उद्वेग उत्पन्न करनेका कारण है. तुम इसे ऐसे कहते हो कि **तुम्हारी लौकिक गति हो रही है** तो इसे कुछ उद्वेग होना चाहिये कि नहीं, जो अपनेको निवेदितात्मा मानता हो तो?

यहां तो **सैंया भये कोतवाल अब डर काहेका.** ऐसी बात कहनेमें आ रही है! अरे उद्वेग होना चाहिये. इसकी चिंता नहीं करनी चाहिये, महाप्रभुजी ऐसा कह रहे हैं. लौकिक गतिका तुमको उद्वेग भी नहीं होता तो फिर बोतल चढ़ाओ, जुआ खेलो, मस्जिदमें जाओ. जो मन भावे सो काम करो. चर्चमें जाओ कहीं भी जाओ, क्यों? **कापि चिन्ता न कार्या लौकिकीं गतिं भगवान न करिष्यति.** बात बन गई तो पुष्टिमार्गकी जरूरत ही क्या है? नवरत्न कहनेकी जरूरत ही नहीं थी, मस्त रहो, खाओ, पीओ, मौज मारो! ऐसा नहीं है उद्वेग तो करना ही पड़ेगा तुमको इसकेलिये.

लोकमें प्रवृत्ति निवेदितात्माको उद्विग्न करेगी :

मैंने तुमको इतना इसलिये समझाया कि जो तुम निवेदितात्मा होगे तो तुम्हारा ऑटोनोमस् सिस्टम् तुमको उद्विग्न बनायेगा. जैसे तुम आंखवाले हो तो कोई भी ज्यादा रोशनी आई तो तुम्हारी आंख बन्द हो जायेगीं. जो तुम कानवाले हो तो कोई भी बॉम्बका धमाका होगा तो कानमें सीटीयां बजने लग जायेंगी. यह तुम्हारे हाथकी बात नहीं है, कान और शब्दका एक दूसरेके साथ ऐसा वर्ताव ही उनका स्वभाव है. उसी प्रकार जो तुम निवेदितात्मा हो और तुम्हारी लौकिक गति जिस समय होने जा रही है उस समय उद्वेग होगा, होगा, और होगा ही. जो नहीं करनेका है वह क्या है? चिंता नहीं करनी अर्थात् इस उद्वेगको इतना अधिक मत तानो. इसका कुछ चिंतन करो कि जिस चिंतनके कारण तुम्हारी यह लौकिक गति न होनेके लिये किसी प्रकारका स्पीड ब्रेकर लगा रहे. कोई बम्पर मिले और तुम्हें मानसिक रीतिसे भी किसी प्रकारका स्वास्थ्य मिले कि जिससे इस लौकिक गतिको तुम किसी प्रकार कम्पनसेट कर सको. जैसे मनुष्यको दस्त हो जाता है तो हम क्या करते हैं?

जो स्वाभाविक खुराक है उसे थोड़ा घटा देते हैं. कुछ ऐसी हलकी खुराक दही भात जैसी कि खिचड़ी जैसी खाकर हम उन दिनोंको बिता देते हैं कि जिससे हम मर भी न जायें और डीहाईड्रेशन भी न हो. बीमारी अधिक न हो जाये उस प्रकारका कोई मध्यममार्गका उपाय अपनाना पड़ता है. बिल्कुल ऐसी ही सिच्युऐशन यहां भी काम कर रही है.

जुआ खेलने गया था वहां लाख रुपया मिल गया, उसके बाद क्लबमें गया तो सबको बोतल भेंट करी. उसके बाद तो लड़कियां मेरे साथ नाचने आईं अतएव नाचने लगा और फिर तो आनन्द ही आनन्द हो गया! उसके बाद चिंता किस बातकी रही? इससे अधिक फिर हमारे महाप्रभुजीने कह ही रखा है कि **निवेदितात्मभिः कापि चिन्ता कदापि न कार्या भगवान् अपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीञ्च गतिम्.** ऐसे विकृत विचारोंका समूह भी खड़ा हो रहा हो तो उद्वेग तो करना जरूरी है परन्तु चिंता करनेसे कोई लाभ नहीं होगा. उद्वेग तो होना ही चाहिये. तुम निवेदितात्मा होगे तो तुम उद्विग्न हो जाओगे, नौर्मल कोर्समें उद्विग्न हो जाओगे. जैसे धूमधमाका होनेपर कान उद्विग्न हो जाते हैं, यह धूमधड़ाके कि पुष्टिसिद्धान्तोंके विपरीत गो.बा. के प्रवचनके शब्द कानमें जांय तो हार्टबीट बढ़ जाती हैं. पसीना भी छूटने लगेगा. उद्वेग होगा लेकिन तब करूं क्या? उपरोक्त बनारसकी गलीओंकी तरह भागना क्या? दुकान ऊपर चढ़ जाऊं क्या? कि समझलूं कि यह भैंस करेगी क्या अंतमें?

जेन, जोकि बुद्धमतकी जापानमें सम्प्रदाय है, उनके साधुओंका एक बहुत सुंदर प्रसंग आता है. एक जेन साधुके गांवमें किसी शत्रुकी सेनाने आकर मारकाट मचाना शुरु किया. सब घरोंको लूट लिया. अब इस जेन साधुका जो मठ था उसमें भी लूट पाट करनेकेलिये सैनिक लोग आये. जेन साधु खड़ा था अविचलित रूपमें. दूसरे सब जो नागरिक थे वह तो सब रो रहे

थे, डर रहे थे, पैरों पर पड़ रहे थे, सब प्रकारकी चापलूसी कर रहे थे. जैसे विजेता सैनिकके सामने करनी पड़ती है. परन्तु यह जेन साधु तो एकदम मस्तीमें खड़ा था. तो लूटपाट करने वाली सेनाके कमांडरने पूछा **तू कौन है इतना घमंडसे भरा हुवा? तुझे पता नहीं है कि एक पलमें तेरी गरदनको मैं धड़से जुदा कर सकता हूं.** जेन साधुने बहुत ही गजबका जबाव दिया **खुद तुम्हें निश्चय है कि नहीं कि एक पलमें मेरी गरदन धड़से जुदा हो सकती है.** इतनी निश्चिंतता महाप्रभुजीने जीकर बताई है **तथा देहे न कर्तव्यं वरः तुष्यति नान्यथा** (अन्तःकरणप्रबोध). वह कमान्डर भाग गया वहांसे इतनी निश्चिंतता है तो लूटपाटकरने वाला भी तुम्हें लूट नहीं सकता और इतनी निश्चिंतता नहीं है तो साहूकार भी तुम्हारी जेबमें हाथ डाल ही देगा. लूटेगा नहीं लेकिन तुम्हें बेवकूफ ऐसा बना देगा कि तुम्हें लगेगा कि मेरे ऊपर बहुत बड़ा उपकार किया भाईसाहिबने.

यह उपदेश निवेदितात्माकी चिंतानिवारणके लिये है :

एक बात समझो कि निश्चिंतता यह पहली शर्त है. और उस निश्चिंतताका उपदेश महाप्रभुजी यहां देना चाहते हैं, लेकिन यह निश्चिंतता तुम्हारेमें आयेगी कहांसे और कब? जब तुम्हें उद्वेग नहीं होगा तब. उद्वेग तुम्हें कब होगा? लौकिक गति होनेके कारण जब तुम अपने आपका निर्धार करोगे. यह मैंने ऐरिक्सनका जो सिद्धान्त बताया वह इसलिये बताया है कि बार बार तुम्हें इसका उपयोग करना पड़ेगा. जब तुम तुम्हारा आत्मनिर्धार तुम्हारी ईगोकी आइडेन्टिटी कि आत्म-तादात्म्यका बोध कि तुम निवेदितात्मा हो, ऐसे करके करते होगे तो. यह आत्मनिर्धार तुमको नहीं है, तुम्हें विश्वास नहीं है प्रभुके ऊपर, कि सृजनशील होनेका कोई कार्यक्रम तुम्हारे जीवनमें नहीं है, उस बारेमें तुम्हारा कोई उद्यम नहीं है, आरम्भ नहीं है. और कुछ नहीं तो लौकिक गति तो होगी ही. तुम कहोगे आनन्द आनन्द हो गया. लीला लहर आ गई. आज तो मैं मिट्टीमें हाथ

डालूं तो सोना निकलता है. ऐसा तुम्हें लगने लगेगा और इस प्रकार वहां सोनेकी मोहरोंकी बरसात हुई... वार्तामें आता है कि **यह विष्टा कहांसे आ गई झाडू देकर निकालो.** ऐसा लगा. यह किस कारण कहा? फर्क कहां पड़ गया? फर्क वहां पड़ गया कि इन्हें निर्धार था कि मैं निवेदितात्मा हूं. हमारा निर्धार डिग गया है कि मैं निवेदितात्मा हूं. इसकेलिये ही तो इन लक्ष्मीवाहनोंकी चापलूसी करनी पड़ती है कि आओ, मनोरथ कराओ, तुम पलनाके मनोरथी नहीं बनोगे तो हमारे ठाकुरजी पालना कैसे झूलेंगे? अरे! दो लप्पड़ मारने चाहियें. इस प्रकार कहा जाता है? निवेदितात्माओंके ऐसे शब्द होते हैं? अतएव निवेदितात्मा होगे तो तुमको उद्वेग होगा. उद्वेग होगा तो उससे होती चिंताका निवारण है. यह इनको ऐसे वर्णन करनेमें आया उपदेश नहीं है.

मुझे लगता है कि मैंने मेरी बात स्पष्ट कर दी है लेकिन फिर भी किसीका कुछ पूछना है तो पूछो.

प्रश्न: **लौकिकीं गतिं न करिष्यति** यह लौकिक गति किसकी होती है?

समाधान: एक बात ध्यानसे समझो. जो घोड़ेपर सवार होता है वही गिरता है. **न शयानो पतत्यध:** जमीनके ऊपर सोता मनुष्य किसी भी दिन गिर सकता है क्या? अब तुम आत्मनिवेदनके घोडके ऊपर तो चढ़े ही नहीं. तो जमीन ऊपर ही पड़े हो ना और फिर डरते हो कि कहीं किसी दिन मैं गिर तो नहीं जाऊंगा? लेकिन गिरनेका चान्स तुम्हें कहां है? जगह कहां है तुम्हारे गिरनेकी? आत्मनिवेदनके घोड़ेके ऊपर तुम चढ़े नहीं तो गिरोगे कैसे? अतएव एक बात मुद्दे को समझो कि **निवेदितात्मभि: लौकिकगति विषयिणी चिन्ता न कार्या** इन सब बातोंका महाप्रभुजी **निवेदितात्मा** विशेषणसे खुलासा कर रहे हैं. तुम निवेदितात्मा हो कि नहीं? जो हो तो तुम्हें उद्वेग होगा

ही. लौकिक गति हो रही होगी उस समय मैं तुम्हें याद दिलाता हूं कि तू लौकिक गति होनेकी चिंता करता है इसके बजाय आत्मनिवेदनका चिंतन कर. तू अपने आपका विचार कर. तेरा माद्दा प्रभुने जो तुझे दिया है कि तू आत्मनिवेदन करके प्रभुका भगवदीय हुआ है कि तदीय हुवा है, तो तुझे लौकिक गतिकी चिंता किस कारण करनी चाहिये? लेकिन यह सारी बात तुम्हें तब समझमें आयेगी जब तुम्हें निवेदितात्मा होनेका आत्मनिर्धार होगा तो, नहीं तो समझमें नहीं आयेगा. इसलिये वो कन्डेन्स है समझे! एकदम सघन मनुष्य जैसे यह शब्द हैं. मक्खनको जैसे बिलोकर छाछमेंसे ऊपर निकाला जाता है वैसे यह **निवेदितात्मा** शब्द यहां नवनीतकी तरह बिलोकर ऊपर निकाले हुवे शब्द हैं.

मैंने कल तुम्हें समझानेका प्रयास किया था हमारी अनुभूतिके बहुतसे रूप हैं. एक तो हमने किल्फोर्ड मौर्गनकी तरह देखा एक तो वह. दूसरा जो प्रकार मैंने तुम्हें समझाया उस प्रकार. अब एक तीसरे दृष्टिकोणसे इसी बातको समझनेका प्रयास करते हैं. **संशयोऽथ विपर्यासो निश्चय स्मृतिरेव च। स्वाप इत्युच्यते बुद्धेः लक्षणं वृत्तित्तः पृथक्।।**

बुद्धि जब किसी भी विषयका अवगाहनरूप व्यवसाय करती है, अर्थात् उसके साथ लेना देना करती है, तब किस किस प्रकार करती है? जागृत बुद्धि या तो विषयमें संशय करती है. या फिर विषयके आभासका बहाना बनाकर कुछ भ्रम उत्पन्न कर लेती है. या फिर विषयके बारेमें कुछ निश्चय उत्पन्न करती है. अथवा एक विषयके अनुभव उपरान्त उसके जैसे ही किसी दूसरे विषयके बारेमें स्मृति उत्पन्न कर लेती है. अथवा विषयके बारेमें कुछ स्वप्न देखने लगती है. इन सब प्रकारके लेन-देन बुद्धि विषयके साथ करती है. विषयके साथ बुद्धि जब इस प्रकारका लेन-देन करती है तो उसमें किसी जंक्चरपर चिंता कि चिंतन खड़ा हो जाता है उद्वेगके कारण.

कुछ उद्वेग हमें विषयके बारेमें होते संशयके कारण होता है. कुछ उद्वेग हमें विषयके बारेमें हाती भ्रमणाके कारण हो जाता है. विषय जैसा भी हो लेकिन हम इसे किसी अलग प्रकारसे ही समझ लेते हैं. उसके कारण हमको उद्वेग हो जाता है. हम कोई हमारा विषय देख रहे हैं उसमें कोई प्रोब्लम नहीं है लेकिन उससे भूतकालकी याद आ रही है. उसके कारण चिंता खड़ी हो जाती है. कोई विषय भविष्यमें हमारे लिये ऐसा रूप ले लेगा उसके कारण आशा-निराशा जगाते होते हैं. उसके कारण फिरसे उद्वेग हो जाता है. उस उद्वेगके कारण चिंता होती है तो बुद्धि जितने विषयोंके साथ लेना-देना करती है, उनमें किसी भी जंकचरपर उद्वेग हो सकता है और उसकी हम धुनाई या जुगाली करें तो चिंता तक पहुंच जाते हैं.

विषयके साथ लेन-देन करती बुद्धिके प्रकार :

शास्त्रोंमें तुम देखोगे कि बुद्धिके कुछ दूसरे भी प्रकार बतानेमें आये हैं. उन्हें भी हमें समझना पड़ेगा. महाप्रभुजी कई तरीकोंसे हमें समझा रहे हैं उनको समझनेके लिये इन सूत्रोंको लिख लो: **स्मृतिः व्यतीतविषया बुद्धिः तात्कालिकी मता। मतिः आगामिनी प्रोक्ता प्रज्ञा त्रैकालिकी मता।। प्रतिभा नवनवोन्मेषशालिनी कथिता बुधेः।**

कुछ लोग स्मृतिका प्रयोगकरके जब विषयके साथ लेन-देन करते हैं तो उनमें प्रत्येक समय बुद्धि वर्तमानमें है और उसका विषय भूतकालमें होता है. परन्तु विषय भी उपस्थित होता है और बुद्धिभी उपस्थित होती है. तो इसे केवल बुद्धि कहते हैं. क्योंकि **बुद्धिः तात्कालिकी मता** अब मति किसे कहते हैं? **मतिः आगामिनी प्रोक्ता** शब्दकोषमें बुद्धि कहो कि मति कहो ये दोना पर्यायवाची शब्द हैं. लेकिन अर्थछाया कोम्प्युटर जिसका अनुवाद नहीं कर सकता वैसी परिस्थिति यहां है. तो मति हम किसे कहते हैं कि जिसे दूर दृष्टि कहते हैं. कुछ होना है तो उसके होनेसे पहले बोध हो जाये दूरदृष्टि होती हो तो

उस व्यक्तिको हम बुद्धिमान न कहकर मतिमान कहते हैं. उदाहरणके तौरपर स्त्री एक जैसी, परन्तु किसीसे पैदा हुई उसकी पुत्री, किसीको ब्याही उसकी पत्नी और किसीको पैदा कर रही है तो उसकी मां. यहां स्त्री तीन नहीं हैं, स्त्री एकही है. इसी प्रकार एकही बुद्धि जब विषयसे पैदा होती है, विषयकी पुत्री जैसी उसे हम स्मृति अथवा बुद्धि कहते हैं. विषय समाप्त होनेके बाद भी विषयजन्य जो बुद्धि बची रही होती है तो वह स्मृति और विषय भी वर्तमान हो और उससे जन्मती बुद्धि भी विद्यमान हो तो केवल बुद्धि कहलाती है. विषयको उत्पन्न करनेवाली बुद्धिके फिरसे दो भेद: १. मति और २. प्रतिभा.

प्रज्ञाका स्वरूप :

प्रज्ञा त्रैकालिकी मता किसीको हम कहें कि यह प्रज्ञावान है. तो प्रज्ञा किसी दिन किसी भी कालमें बंधती नहीं है. जो त्रैकालिक विषयोंका अनुभव कर सके उसे प्रज्ञा कहते हैं. अर्थात् मैं कोई एक बात कह रहा हूं यह आज सत्य है लेकिन कल यह सत्य न रह जाती हो तो यह बात मुझे प्रज्ञासे समझमें नहीं आई बुद्धिसे समझमें आई है. एक बात मैं कह रहा हूं, भूतकालमें सच्ची थी लेकिन आज सत्य नहीं है, तो यह मेरी स्मृति हो गई. आज मुझे कोई बात समझमें आ रही है लेकिन वर्तमानमें कुछ वैसा है नहीं परन्तु सौ पचास साल बादमें आने वाली है तो इसे न तो स्मृति कहा जाता है और न ही बुद्धि लेकिन इसे मति कहा जाता है. प्रज्ञा परन्तु, त्रैकालिकी होती है. प्रज्ञासे हमको जो अनुभव होता है वह कोई देशिक कि कालिक वास्तविकता नहीं लेकिन सर्वकालिक वास्तविकता होती है. अतएव प्रज्ञा विषयको ब्याही हुई विषयकी अर्धांगिनी होती है.

प्रतिभाका स्वरूप :

प्रतिभा विषयको प्रकट करनेवाली बुद्धिकी एक वेराइटी है. प्रतिभा अर्थात् विषयसे उत्पन्न होती बुद्धि नहीं लेकिन

विषयको उत्पन्न करनेवाली जो बुद्धि, तुम्हें जैसे अच्छा लगे वैसे विषयको तुम प्रस्तुत कर सकते हो. अतएव मोटे तौरपर कवियोंमें प्रज्ञा नहीं होती, कवि इतिहासकार नहीं होते क्योंकि इतिहासकारमें स्मृति काम करती होती है. कवि केवल फिक्शन ही करते हैं ऐसे भी नहीं होते. किसीको कवि कब कहा जाता है कि जब कोई मनुष्य अपनी प्रतिभा प्रयोगमें लाता है, अपना कुछ अलग सृजन कर सकता ह कि जिसे दुनियांमें किसीने देखा कि जाना न हो. कवि कहे तो समझमें आये. इसे हम प्रतिभा कहते हैं. जिसमें प्रतिभा होती है वह ब्रह्माके कोम्पिटीशनमें कुछ नया सृजन कर सकता है.

कर्तृप्रज्ञा विवेक :

बुद्धिके चार डाइमेन्शन चार आयाम हैं. चिकित्सा जब चिंता कि चिंतनकी करनी हो तब इन चार आयामोंमें से किसी एक आयामको पकड़ करके करनी होगी. उसीको **निवेदितात्मभिः** में कर्ताकी प्रज्ञाके विवेकको महाप्रभुजी ढिंढोर रहे हैं कि तू निवेदितात्मा फॉर ऑल दि टाइम है कि नहीं मुझे जवाब दे? तू तेरी प्रज्ञा इस प्रकार प्रयोगमें ला सकता है कि नहीं? तूने जिस दिन तुलसी समर्पी ठाकुरजीके चरणोंमें उस दिवससे निवेदितात्मा बना कि नहीं? अगर आज निवेदितात्मा रह ना गया हो तो बात खत्म गई ना! आ तू तेरी प्रज्ञाका प्रयोग कर और समझ कि जो निवेदितात्मा है यह फॉर आल दि टाइम निवेदितात्मा है. इस प्रज्ञासे इस शास्वत वास्तविकताको तू समझ सकता है कि नहीं समझ सकता? बोल जवाब दे, आर्थिक उपदेश है. यह प्रज्ञासे होता जो विवेक तुझे निवेदितात्मा द्वारा सूचन करनेमें आया है. यह बात तुम्हें समझमें नहीं आये तो पूछो फिर. लेकिन मुझे लगता है कि मैंने अपेक्षित सरलता कर दी है.

सम्प्रदानमतिका विवेक :

पुष्टिस्थो भगवान्में संप्रदानमतिके विवेकका प्रयोग करनेका उपदेश है. ध्यानसे समझो अब तुम्हें मतिका अर्थ समझमें आयेगा कि **मति: आगामिनी प्रोक्ता पुष्टिस्थो भगवान् इति.** पुष्टिस्थ हैं यह तुम्हारी किसी भी दिन लौकिक गति होने ही नहीं देंगे! स्वयं पुष्टिमार्गमें जब है, जब तू पुष्टिमार्गमें आया है तो फिर तेरी लौकिक गति कैसे होने देंगे? तो जिन्होंने आत्मनिवेदन किया है उसे **सम्प्रदान** कहा जाता है. जिसने आत्मा और आत्मीय वस्तु समर्पित करी है उसका विवेक, उसके स्वरूपका विचार कि वह पुष्टिस्थ है? वह पुष्टिस्थ है यह जो तुझे बराबर समझमें आता है, मतिमें आवे कि मतिका प्रयोग करके इतना समझ सके कि भगवान मेरा ऐसा कदापि नहीं करेंगे. बस तो तुझे बात समझमें आ गई. चिंता करनेका कोई कारण रह नहीं जाता.

निवेदितात्माको किसी भी प्रकारकी चिंता नहीं करनी :

यह प्रथम श्लोक तुम ध्यानसे समझ लोगे तो आगेके श्लोकोंमें भी प्रयोगमें आते उपाय अच्छी तरहसे समझ सकोगे कि यह नवरत्नका उपक्रम श्लोक है. वैसे इसमें कोई एक पर्टिकुलर चिंता कहनेमें नहीं आई. जब किसी चिंताका निषेध करनेमें आयेगा उन सब चिंताओंकी यहां शुरुआत करी है महाप्रभुजोने. अतएव इसमें कोई स्पेसिफिक चिंता वर्णन करनेमें नहीं आई लेकिन निवेदितात्मा अधिकारी कौन है? और ऐसी चिंता कभी भी नहीं करनी ऐसे एक जनरल बात कह कर यहांसे महाप्रभुजीने उपदेशकी शुरुआत करी है.

आत्मचिंतनकरने वाली बुद्धि मनसे नहीं दौड़ती :

जो बुद्धि आत्मचिंतन कर रही है वह बुद्धि कभी मनके पीछे नहीं दौड़ेगी. हमेशा एक नियम है, उदाहरणके तौरपर तुमको आत्मचिंतन ऐसा होता हो कि मैं रोगी हूं, डॉक्टरने मुझे चलनेके लिये मना किया है कि **चलोगे तो तुमारी जोड़ी हुई**

हड्डी फिरसे टूट जायेगी. तो तुम्हें बराबर आत्मविवेक है कि जो मैं पलंगसे खड़ा होउंगा तो जो हड्डी जुड़ी है वह फिरसे टूट जायेगी. आत्मविवेक होगा तो तुम्हारे मनमें कितनी भी इच्छा होती होगी खड़े होनेकी कि चलनेकी इन सबपर तुम काबू पा सकोगे. तुम खड़े होनेका कभी साहस नहीं करोगे. तो हर समय आत्मचिंतन जो व्यक्ति करता है उसकी बुद्धि कदापि मनके पीछे नहीं दौड़ती. मन तुमको ललचायेगा इशारा करेगा, लेकिन मनके पीछे आत्मचिंतन करनेवाली बुद्धि कभी नहीं दौड़ेगी. मनके पीछे रोमियो कि लैला बनकर दौड़ती बुद्धि कभी आत्मचिंतन नहीं कर सकती. क्योंकि मनका जो मेकेनिज्म् है वह ऐसा है कि एक जगह पर टिकता नहीं. एक क्षणमें यहां जाये, दूसरे क्षण वहां जाये अतएव इसके साथ जो बुद्धि भी रखड़ती हो तो यह चिंतन कर नहीं सकती, इसे तो चिंता ही करनी पड़ेगी. मनके साथ रखड़पट्टी करती बुद्धिका चिंताके अतिरिक्त दूसरा कोई भवितव्य नहीं हो सकता.

परमात्मानुगामिनी बुद्धि विषयसे विचलित नहीं होती :

एक मन, दूसरी आत्मा और उसके पीछे आता है पुष्टिस्थ परमात्मा. परमात्माके पीछे चलती तुम्हारी बुद्धि.... मैं बुद्धि शब्द प्रयोगमें ला रहा हूं प्रज्ञा नहीं प्रयोगमें ला रहा, मति प्रयोगमें नहीं ला रहा हूं, स्मृति नहीं प्रयोगमें ला रहा. परमात्माके पीछे चलती तुम्हारी बुद्धि कभी आत्मचिंतन कि विषयचिंतन नहीं कर सकती. यह आत्माको भी समझेगी तो परमात्माके अंशरूपमें समझेगी. विषयको भी समझेगी तो परमात्माके अंशरूपमें समझेगी. यह किसी भी दिन परमात्मासे अलग अपने आपका चिंतन करा ही नहीं सकती. अतएव परमात्मानुगामिनी बुद्धिमें विषयकी चिंता सम्भवित हो नहीं सकती. बुद्धि परमात्मानुगामिनी बनती है आत्मनिवेदनसे. जो प्रक्रिया महाप्रभुजी बताना चाह रहे हैं वह प्रक्रिया यह है कि तुम्हारी बुद्धि इस प्रकार परमात्मानुगामिनी हो कि तुम इतने

निश्चिंत हो जाओ कि तुमसे कोई विषयरूपी कमान्डर आकरके पूछे कि **तुझे एक मिनिटमें मैं विचलित कर सकता हूं भक्तिमार्गसे.** और हम भी कह सकें कि **हां तू मुझे एक मिनिटमें विचलित कर सकता है कि नहीं यह तुझे पता है कि नहीं**? तो वह विषय स्वयं ही घबरा जायेगा, उद्वेग हो जायेगा उस समय. क्योंकि विषय तुम्हें इशारा कर रहा है और तुम उसे कहो कि हां मैं जीवके तौरपर इतना लाचार हूं लेकिन मैंने परमात्माको आत्मनिवेदन किया है अतएव वह परमात्मा कभी भी मेरी लौकिक गति नहीं होने देगा **भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीं च गतिम्.**

इस परमात्मचिंतन द्वारा तुम्हारेमें भक्ति बढ़ानेकेलिये यहां यह नवरत्नका उपदेश देनेमें आ रहा है: **यथा भक्तिः प्रवृद्धा स्याद्... भक्तिमार्गे प्रवृत्तस्य दाढर्यार्थम् इदम् उच्यते.** इस बातको ध्यानमें रखो प्रथम श्लोकमें सबसे पहले भक्तिकी दृढ़ताकी बेसिक प्रोब्लेम है. यह प्रोब्लम यहां महाप्रभुजीने समझाई है यहां संप्रदानमति और कृर्तप्रज्ञाके कौम्बिनेशनमें. आप लोगोंमें जिनने एक्युप्रेशर और एक्युपंक्चर ट्रीटमेंटके बारेमें सुन रखा होगा कि जाना होगा तो आपको ख्याल होगा कि रोग कहीं भी हो सकता है लेकिन इसका बिन्दु निर्धारित होता है. कहां उसे पंक्चर करना कि कहां उसे प्रेशर देना. किस बिन्दु पर दबानेसे कौनसा रोग मिटेगा, ऐसे ही महाप्रभुजी किस बिन्दुको प्रेशराइज् कर रहे हैं? जिस बिन्दुको प्रेशराइज् करनेसे तुम्हारी चिंताका दर्द मिट सके. उनमेंसे एक बिन्दु है तुम्हारी खुदकी निवेदितात्मा होनेके आत्मनिर्धार और दूसरा बिन्दु है जिस परमात्माको तुमने निवेदन किया है उस परमात्माके बारेमें उसके पुष्टिस्थ होनेका विश्वास. इस परमात्माके पुष्टिस्थ होनेके बिन्दुको थोड़ा प्रेशर मारो, उसके बाद तुम चिंतासे मुक्त हो जाओगे. इन दो ठिकानों पर प्रेशर दोगे तो फिर चिता नहीं होगी नहीं तो चिंता तो होनी ही है.

एक बात दृढ़ करके रखो कि अपने आत्मनिवेदी होनेके पॉइन्टको तुम प्रेशराइज् नहीं करते, परमात्माके पुष्टिस्थ होनेके पॉइन्टको जब तुम प्रेशराइज् नहीं करते तो उस समय तुम्हारी बुद्धिमें जब किसी बहुत आकर्षक विषयका कमांडर आयेगा और कहेगा कि **अरे! तुझे पता है कि नहीं तुझे भक्तिमार्गसे एक क्षणमें विचलित कर सकता हूं. क्योंकि तेरे घरमें बिराजते ठाकुरजी पूर्णपुरुषोत्तम न होकर केवल गुरुभावसे बिराजते हैं. वे पूर्णपुरुषोत्तम तो हमारे गो.बालकोंके घर ही बिराजते हैं. अतएव इन छोटे ठाकुरजीकी चिंता छोड़कर हमारी हवेलियोंमें दर्शन-भेंट-मनोरथ-प्रसादमें पूर्णभाव रख.** तो तुम्हारे मनमें विश्वास होना चाहिये कि **भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीं च गतिम्.** तुम विचलित न हो जाना. लेकिन इस पॉइन्टको तुमने प्रेशराइज् किया होगा तो फिर तुम छाती ठोकके कह सकोगे कि कुछ नहीं होगा, तू विषयसे मुझे ललचाकर देख ले परन्तु **यान् आस्थाय नरो राजन् न प्रमाद्येत कर्हिचित् धावन् निमील्य वा नेत्रे न पतेत् न स्खलेत् इह.** मैंने किसे पकड़ा है? पुष्टिस्थ प्रभुको पकड़ा है. पुष्टिस्थ प्रभुको मैंने किस सम्बन्धसे पकड़ा है? आत्मनिवेदनके संबंधसे पकड़ा है. अब मुझे लौकिकगतिकी चिंता करनेकी रही ही नहीं. उद्वेग होगा तो सहन कर लूंगा. और इस उद्वेगकी भी चिंता करनेकी मुझे जरूरत नहीं है. उद्वेग हो रहा है तो यह पोजिटिव साइन है.

अस्तपतालमें जब तुम एडमिट होते हो तब डॉक्टर पैरके नीचे कुछ कांटेदार इन्स्ट्रुमेंट लगाता है, हथोड़ी मारता है इससे क्या होता है? यह हथोड़ी मारता है और हमारे पैरमें झटका लगता है तो हमारी चेतना बराबर काम कर रही है. हथोड़ी मारे और तुम ऐसे ही पड़े रहो कि मुझे तू ही रख., तो डॉक्टर समझ जाता है कि मरनेके आस पास है यह मनुष्य. एक बार हथोड़ी मारे और तुम्हारे पैरमें झटका नहीं लगता इसका

तात्पर्य कि तुम मरनेके करीब हो. तुम्हें झटका लग रहा है अर्थात् तुम्हारेमें जीवनके चान्सिस हैं. तुम आत्मनिवेदी हो और लौकिक गतिके हथोड़ेसे तुमको झटके लग रहे ह तो तुम आत्मनिवेदीके तौर पर जीवित हो. अब तुमने प्रेशर पॉइन्टकी टेकनिक्से स्वस्थ करा जा सकता है **भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीं च गतिम्.**

तुम्हें झटका ही नहीं लग रहा है तो डॉक्टर समझ जाता है कि हथोड़ी मारनेकी जरूरत नहीं है यह तो मरा हुवा ही है. जिसको चाकू पैरमें चुभाने पर चुभन न होती हो, हथोड़ी मारें तो पैरमें झटका नहीं लगता हो, तो **रामनाम सत्य है सत्य बोलो गत्य है** हो गई इसकी. तो फिर अधिक चिंता इसके बाद करनेकी नहीं होती. जाने दो ना, बस ऐसे हो जाता है. यह सारा नवरत्नका उपक्रम महाप्रभुजीने किया है.

<u>'नवरत्न सूत्र है और विवेकधैर्याश्रय उसका भाष्य है' विधानकी परीक्षा</u> :

महाप्रभुजीने जो उपाय चिंतानिवृत्तिके नवरत्नमें उपदेशित किये हैं उनका ही विस्तारपूर्वक उपदेश आपश्रीने विवेकधैर्याश्रयमें किया है. अतएव यहां वर्णित चिंताके विविध प्रकारोंमें किसो चिंताके निवारणके लिये आपश्री विवेक तो किसी चिंताके निवारणके लिये धैर्य तो किसी चिंताके निवारणार्थ आश्रयका उपदेश दे रहे हैं. अतएव विवेकधैर्याश्रयमें उपदिष्ट चार प्रकारके विवेक, चार प्रकारके अविवेकोंको दूर करनेकेलिये उपदेशित किये हैं. वह अविवेक अगर दूर न हों तो हमारे भीतर चिंताको पैदा कर सकते हैं. उसी प्रकार जो चार प्रकारके धैर्योंका उपदेश दिया वैसे धैर्योंके अभावमें उदभव होते अधैर्य हमारे अन्दर चिंता प्रकट कर सकते हैं. इसी प्रकार ही आश्रयसिद्धिके चार उपाय दिखाये हैं उनके अभाव होनेपर

शरणागत कि भक्त जीवके चिंताके घेरेमें फंस जानेके पूरे पूरे चान्सिस हैं.

आत्मनिवेदीका आत्मनिर्धार ही सहज उद्वेग उत्पन्न करता है :

यह जितने भी चिंतन हैं वह चिंताको निवृत्त करनेके उपाय हैं. दूसरी जगह इनकी एप्लीकेशन करोगे तो कुछ गलत अर्थ ही निकलेगा. अर्थात तुम पथ भ्रष्ट हा जाओगे, बहक जाओगे. लेकिन जब इस पर्टिकुलर प्रकारकी चिंता हो रही हो तो एक चिंताका कोई एक पर्टिकुलर उद्वेग कारण होगा. यह उद्वेग इस कारण है कि तुमने किसी प्रकारका आत्मनिर्धार अपनेलिये किया होगा कि तुम कौन हो? उसके कारण तुमको उद्वेग हो रहा है. किसी लड़कीको कोई लड़का छेड़ता हो तो इसमें मुझे उद्वेग होगा? लेकिन मेरी बहिन या लड़की या पत्नि हो तो उद्वेग होगा कि नहीं? क्यों उद्वेग होगा? क्योंकि तुमने आत्मनिर्धार किया है कि मैं इसका भाई हूं, मैं इसका पिता हूं, मैं इसका पति हूं, मैं इसका लड़का हूं, अब ऐसा आत्मनिर्धार करनेके बाद इससे कोई छेड़छाड़ करे तो मुझे उद्वेग हो तो उसके बाद मुझे चिंतन कि चिंता जो कुछ करना हो तो कर सकता हूं लेकिन मेरा आत्मनिर्धार ही न हो कि जिस लड़कीको छेड़ा जा रहा है उसका मैं कौन? यह जो मुझे पता न हो तो फिर चिंता करनेकी क्या जरूरत है? छेड़नेवाला छेड़ रहा है और छिड़नेवाली छिड़ रही है इसमें मेरा क्या जाता है.

अतएव आत्मनिवेदनका भाव होगा तो यह चिंता तुमको होगी कि मैंने ब्रह्मसम्बन्ध लिया है और प्रभु मुझसे सेवा नहीं ले रहे हैं, घरके बाकी सब सदस्य सेवा कर सकते हैं तो उद्वेग हाना तो स्वाभाविक ही है. यह उद्वेग होना बहुत ऊंची कक्षाकी बात है. ऐसा उद्वेग हरेकको नहीं होता. ऐसा उद्वेग अगर होता है तो अपनेको महान सौभाग्यशाली समझना चाहिये. उस उद्वेगकी

धुनाई या जुगाली करके अगर तुम चिंता करोगे तो उसका निवारण महाप्रभुजीने इस श्लोकमे किया है.

चिंतानिवृत्तिके लिये कायिक, वाचिक और आन्तरिक उपाय :

कल एक बार मैंने चार वाक्योंका विश्लेषण करके आपको समझानेका प्रयास किया था. सबसे पहले तीनों कागजोंके ऊपर एक बार दृष्टिपात करके तुम देख लोगे तो तुम्हें विचार आयेगा कि एकसे आठवें वाक्य तक आन्तरिक उपायोपदेश हैं, नवमें वाक्यमें कायिक और आन्तरिक उपायोपदेश हैं. दसवें वाक्यमें फिरसे आन्तरिक उपायोपदेश हैं और ग्यारहवें वाक्यमें वाचनिक उपायोपदेश हैं. तो मूलमें एक यह बात विशेष ध्यानमें रखनेकी है कि चिंता निवृत्त करनेकेलिये महाप्रभुजीने कायिक, वाचिक, मानसिक अथवा आन्तरिक तीनों प्रकारके उपाय बताये हैं. आन्तरिक कहो कि मानसिक कहो बात एक ही है. आन्तरिक कहनेपर बहुत सारे आन्तरिक क्रिया कलापोंको हम संकलित कर सकते हैं. मानसिक कहनेपर केवल मन ही कहलाता है. आन्तरिक कहना अर्थात् अंत:करण. अंत:करण चार प्रकारका होता है मन, बुद्धि, अंहकार और चित्त. आन्तरिक कहनेपर हमने चार उपाय संग्रहित किये ऐसा कहा जायेगा. तो ऐसे आन्तरिक उपायोंके अतिरिक्त कायिक उपाय चिंता निवृत्त करनेके और वाचनिक उपाय, तात्पर्यत: हमारी एक त्रिपुटी कहलाती है. साधनामें कायिक, वाचिक, मानसिक इन तीनों चिंता निवृत्त करनेके उपायोंको महाप्रभुजीने काममें लिया है.

नवरत्न-विवेकधैर्याश्रय ग्रंथोंकी संगति :

यह जो नंबर डाले हैं तो इनके ऊपर तुम दृष्टि डालोगे तो तुमको स्पष्ट रीतिसे विचार आ जायेगा. अब जिस प्रकार कहा गया है उसे एकके बाद एक करके देखेंग. उसके अतिरिक्त जिन आन्तरिक उपायोंका उपदेश आठ वाक्योंमें महाप्रभुजीने दिया है उसमें विशेष करके मैं आप लोगोंको दो

तीन दिनोंसे कह रहा हूं कि नवरत्न यह सूत्रात्मक ग्रंथ है. अंत:करणप्रबोध उसका व्यवहारिक डिमोन्स्ट्रेशन है. इन सिद्धान्तोंको महाप्रभुजी स्वयं किस प्रकार अपने व्यवहारमें लाये उसकी कथा कहनेवाला ग्रंथ है. और विवेकधैर्याश्रय जो कुछ अंत:करणमें कहनेमें आया है उसका भाष्य है, विस्तार है. अब भाष्य या विस्तार किस प्रकार है? इस बारेमें अगर हमको ध्यान देना हो तो हम सब अच्छी तरहसे जानते हैं कि विवेकधैर्याश्रय ग्रंथमें करीब करीब तीन बात कहनेमें आयी हैं, एक विवेककी बात, एक धैर्यकी बात और एक आश्रयकी बात. **विवेकधैर्य सततं रक्षणीये तथाश्रय:**

महाप्रभुजीने उसी प्रकार शुरुआत करी है, विवेक, धैर्य, और आश्रय इन तीनोंका रक्षण हमको करना चाहिये. और विवेक क्या? तो **विवेकस्तु हरि सर्व निजेच्छात: करिष्यति.** यह बात नवरत्न और विवेकधैर्याश्रयकी एकसी ही बात है. इसमें किसी प्रकारका विस्तार नहीं है. यह तुम नवरत्नका पाठ और विवेकधैर्याश्रयका पाठ करके समझ सकते हो.

उसी प्रकार- **त्रिदु:ख सहनम् धैर्यम् आमृते: सर्वत: सदा.** अर्थात् आधिभौतिक, आध्यात्मिक, आधिदैविक तीनों दु:खोंको सर्वदा सह लेना यह धैर्यकी परिभाषा करनेमें आई है और आश्रयकी परिभाषा करते हुवे महाप्रभुजीने एक बात कही **ऐहिके पारलोके च सर्वथा शरणम् हरि.** चाहे कोई ऐहिक हमारा प्रयोजन हो कि कोईक पारलौकिक प्रयोजन हो किसी भी प्रयोजनमें कि किसी भी संदर्भमें **शरण** अर्थात् मेरे रक्षक श्रीहरि ही हैं. यह बात किसी भी दिन भूलनी नहीं चाहिये. यह बात हमारे मनमें से निकले नहीं तो हमें आश्रय सिद्ध हुवा कहलायेगा.

विवेक-धैर्य-आश्रयके शिखरपर पहुंचनेकेलिये तलेहटीसे शुरुआत करनी पडेगो :

अब यह विवेक, धैर्य और आश्रयकी परिभाषा करनेमें आई. परिभाषा अर्थात् समझो कि कोई हिमालयके एवरेस्टकी एक आदर्शात्मक शिखरकी स्थिति क्या है? और इस हिमालयके ऊपर तुम्हें चढ़ना हो तो जहांसे चढ़ाई शुरु करोगे वहां कोई सत्ताईस हजार फुटकी हाईट नही होती दस कि पांच हजारकी होगी, अलग अलग हाईट हो सकती हैं जहांसे तुम चढ़ाई शुरु कर सकते हो. उसी प्रकार विवेक, धैर्य अथवा आश्रयकी ओर जब तुम अग्रसर होओगे, उस समय यह जो परिभाषा देनेमें आ रही हैं शिखर जैसी, क्योंकि पर्वतकी जो हमको गणना करनी हो तो यह इसकी तलेहटीसे नहीं होती, शिखरसे होती है. जैसे हिमालयमें कितने पहाड़? ऐसा कोई हमें कहे तो हम साधारणतय: कितनी तलेहटीयां हैं ऐसा नहीं कहते. हम ऐसा कहते हैं कि कितनी शिखर हैं. जितनी शिखर उतने पहाड़.

जब हम पर्वतारोहणका कोई मनोरथ लेकर अग्रसर होते हैं तो उस समय यह शिखर हमारी बुद्धिमें लक्ष्यरूपमें होनी चाहिये. अब हेलीकौप्टरसे तुम्हें वहां कोई डालदे तो यह कथा अलग है. अन्यथा तुम सीधे शिखरके ऊपर पहुंच नहीं सकते. बड़ा हो कि छोटा, संभव हो कि असंभव, शक्य हो कि अशक्य, कभी भी शिखरकी ओर तुमको जाना हो तो शुरुआत उसकी तलेहटीसे ही करनी पड़ेगी. और यह तलेहटीकी ऊंचाई वह नहीं होती जो शिखरकी होती है.

यह बात तुम हृदयमें एकदम नोट करके रखो कि किसीभी बातकी शुरुआत हमें करनी हो अर्थात् जीनेकी भी शुरुआत करनी हो तो जन्मते हो कोई जवान पैदा नहीं होता. जन्मते समय तो छोटा बच्चा पैदा होता है जो कि चलना बोलना कि भाषा समझना भी नहीं जानता, धीरे धीरे, जैसे जैसे

हम उसे पालते हैं वैसे वैसे उसके गुण, उसकी सामर्थ्य उभरनेके साथ खिलती जाती है. एक दूसरी वास्तविकता और होती है कि किसी भी पहाड़के ऊपर चढ़कर तुम चोटी पर्यन्त पहुंच भी गये और उसके बाद चलोगे तो नीचे ही उतरोगे. इसी प्रकार जवानीके बाद बुढ़ापा भी आता ही है. और **बच्चे बूढ़े एक समान.** आखिरमें हो ही जाते हैं. बच्चेके दांत नहीं होते वैसे ही बहुत बूढ़े लोगोंके भी दांत नहीं होते. यह भी बुद्धु होता है और वह भी बुद्धु ही होता है. ऐसे ही बहुतही बूढ़ा हो जाता है तो बुद्धिभी हमारी किसी ऐसे बुढ़ापेमें फंस जाती है कि बहुत बार सामान्य बात भी समझमें नहीं आती.

अब ही मुझे कोई भाई कह रहे थे कि किसीको ऐसा समझमें आ गया कि मैंने यहां ऐसा प्रतिपादन किया कि नवरत्नके एक एक श्लोकको बोल बोल कर यज्ञमें आहुति देनी. अब या तो यह बच्चा होगा अथवा तो कोई बूढ़ा! जो युवाचित्त होगा उसे तो समझमें आयेगा कि ऐसी बात कमसे कम मैंने तो नहीं कही कि **चिन्ताकापि न कार्या स्वाहा, निवदितात्मभिः कदापीति स्वाहा, भगवानपि पुष्टिस्थः स्वाहा** तुम करो. मैंने तो मजाक किया कि ऐसा कभी मत करने लगना. न करनेके लिये कहा था लेकिन पहले ही जो बूढ़ा हो कि बच्चेका मन हो उसे कभी ऐसे भी समझमें आ जाता है. श्याममनोहरजीने इतनी बार स्वाहा स्वाहा किया ता फिर हम न करें तो अच्छा लगेगा? प्रवचन क्या सुना हमने? बुढ़ापेमें ऐसी प्रोब्लम हो जाती है. मेरे भी बाल सफेद हो गये हैं लेकिन इतना बूढ़ा नहीं हूं कि जितना तुम समझ रहे हो. अतएव ऐसी बाल्यावस्थामें और बुढ़ापेमें कुछ न कुछ ऐसा ही सिम्पटम खड़ा हो जाता है.

तलेहटीकी ऊंचाई और शिखिरकी ऊंचाईका भेद समझना पड़ेगा :

शिखरकी जो ऊंचाई है वह ऊंचाई तलेहटीमें तुमको नहीं मिलेगी. इसीलिये महाप्रभुजी विवेक, धैर्य और आश्रय और उनकी तलेहटीयां भी हमको समझाते हैं और उनके शिखिर कैसे हैं वह भी समझाते हैं. सबसे पहले विवेककी तलेहटी कहांसे शुरु होती है? तो महाप्रभुजी पहली तलेहटी यह बताते हैं कि तुम भगवानके सामने प्रार्थना करना बंद करो. भगवानके आगे प्रार्थना करना बंद किया तो तुम पुष्टिमार्गीय विवेककी तलेहटीमें पहुंच गये. प्रार्थना अर्थात् अपने कीर्तन नहीं, और प्रार्थना अर्थात् ठाकुरजीको हम भोग धरते हैं और उस समय कानि देना वह प्रार्थना भी नहीं. प्रार्थना शब्दका अच्छी तरहसे अर्थ समझो. प्रार्थना अर्थात् हे प्रभु! मेरे लड़का नहीं होता तुम लड़का दो, मेरा धंधा नहीं चलता तुम मेरा धंधा चलादो, अरे! भगवान कोइ केपिटल लोन देनेका बैंक खोलकर नहीं बैठा कि तुम्हें लाख रुपयाकी केपिटल दे कि जिससे तुम धंधा शुरु कर सको. फिर तुम इसमेंसे खाली पचास हजारका मनोरथ करो ठाकुरजीका, वह भी फिर बड़ा मंदिर हो तो तुम लाख रुपयेका मनोरथ करो और अगर छोटा मंदिर हो तो पचास हजारका करो. यह सब होते हुये कोई बालक तुम्हारे पास छप्पनभोगके लिये आये तो तुम दस पंद्रह हजारमें टिल्लिलीली कर दो. और फिर दर्शन करने भी मत जाओ. तो भगवान कोई ऐसा पागल नहीं है कि तुम्हारा ऐसा धंधा चलाने बैठे. बड़े मंदिरमें छप्पनभोग करानेपर तुम्हारा नाम अखबारमें छपाना हो तो तुम लाख रुपया दो. अगर अखबारमें छपती खबरमें कुछ कमी लगे तो तुम पचासमें पटा लो महाराजको कि अभी फूल नहीं तो फूलकी पंखुड़ी. कोई छोटा मोटा महाराज आये जिसमें कुछ पब्लिसिटी वेल्यु तुमको न लगती हो तो पंद्रह हजारमें ही तुम उनको तुम विदा करदो. दर्शन करनेकेलिये चाहे जाओ या न जाओ. पंद्रह हजार तुमने छप्पनभोगके दिये हों और ये कहे कि दर्शन करने तो आना तो तुम फिर यह कह देना कि प्रसाद घर भिजवा देना, तो इस प्रकारकी मनोवृत्ति हमारी होती हैं.

१. **<u>प्रभुसे प्रार्थना नहीं करनी यह प्रथम विवेक</u>** :

भगवान इतना भी पागल नहीं है कि तुम्हारा धंधा चलानेके लिये कुछ केपिटल दे. अतएव ऐसी केपिटलकी हम भगवानके आगे प्रार्थना करें तो ऐसी प्रार्थनाकी महाप्रभुजी ना करते हैं: **प्रार्थिते वा ततः किं स्यात् स्वाम्यभिप्रायसंशयात्.** प्रभु तमको क्या देना चाह रहे हैं उसकी समझ अगर तुमको अच्छी तरहसे नहीं हो और तुम मांग मांग करके कोई क्षुद्र वस्तु मांग लो तो तुम्हारा अहित होगा. कदाचित प्रभु तुम्हें इसके बजाय अधिक देना चाह रहे हों? प्रभु तुम्हारे स्वामी हैं. मांगकर तुम एक साथ प्रभुके ऊपर दो आरोप लगाते हो. एक आरोप तो यह कि तुम समझते नहीं हो कि मेरी जरूरात क्या हैं? और तू निर्दयी है कि मेरे मांगनेके बाद ही देता है, इससे पहले अपने आप तो देता ही नहीं. ऐसे दो दो आरोप लगा दो प्रभुपर और फिर कहो कि मेरा धंधा चलाओ, मेरा कष्ट दूर करो. इस प्रार्थनाकी वृत्तिके ऊपर तुम काबू पाओ तो विवेकका पहला कदम तुमने रखा, विवेककी तलेहटीमें तुम पहुंच गये.

२. **<u>अभिमान नहीं करना यह दूसरा विवेक</u>** :

अब इसके बाद विवेकका दूसरा कदम महाप्रभुजी कहते हैं कि तुम प्रार्थना नहीं कर रहे तो यह बहुत अच्छी बात है लेकिन अगर तुममें अभिमान आ गया कि प्रभुके आगे प्रार्थना ही नहीं करनी तो फिर मैं ही सारे कामकाजका कर्ता हूं. फिर मुझे प्रभुकी क्या गरज? जिसे कोई प्रार्थना ही नहीं करनी कि जिसके आगे हाथ फैलाना ही न हो तो वह भगवान होगा अपने धामका. मुझसे उससे क्या लेना देना जो मेरे कुछ काम ही नहीं आता. **हम उसीको खुदा समझते हैं जो मुसीबतमें काम आये.** जो हमारी मुसीबतमें काम नहीं आता तो होगा कोई आसमानका खुदा उससे हमें क्या लेना देना? ऐसा अभिमान अगर तुममें आ गया तो इस प्रार्थना न करनेकी प्रवृत्तिकी तलेहटीपर से नीचे

किसी खंदकमें तुम गिर गये. अतएव दूसरा विवेक महाप्रभुजी कहते हैं कि प्रार्थना नहीं करनेका साइड इफेक्ट तुम्हारेमें ऐसा नहीं हो जाना चाहिये कि तुम्हारे अन्दर अभिमानकी वृत्ति पैदा हो जाये. प्रार्थना ही नहीं करनी तो भगवान कौन होता है? प्रार्थना करनी हो तो तब ही मैं भगवानको भगवान मानूं. अतएव प्रार्थना नहीं करनी वह पहला विवेक, अभिमान न करना यह दूसरा विवेक.

३. **हठाग्रहत्याग यह तीसरा विवेक** :

अभिमान न करना यह बात ठीक लेकिन मनुष्य दो प्रकारसे जी सकता है या तो दीन होकर अथवा अहंकारी होकर. कोई हमें दीन होनेके लिये ना कर दे तो हम अहंकारी बन जाते हैं. अगर अहंकारी न बननेके लिये कहते हैं तो दीन बन जाते हैं. यह जो दो प्रकारके एक्स्ट्रीम हैं वह महाप्रभुजीको अच्छे नहीं लगते. इसका कारण समझो क्योंकि कल भी मैंने तुमको समझाया था कि यह सर्वेश्वर भी है और सर्वात्मा भी है. तो परमात्मा हमारी आत्मा भी है और इस कारणसे इसके सामने दीन होनेकी क्या जरूरत है? और यह सर्वेश्वर भी है तो इसके आगे अहंकार करनेकी क्या जरूरत है? **सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा निजेच्छात: करिष्यति.**

इन दोनों पदोंके ऊपर तुम ध्यान दोगे तो तुमको विचार आयेगा कि परमात्माके साथ हमारे संबंधमें, न तो कोई हमें अहंकार करने जैसा कोई प्रश्न और न ही हमें कोई खोटी दीनता करनेकी आवश्यकता है. महाप्रभुजीसे मिलनेसे पहले सूरदासजी ऐसे समझते थे कि **हौं पतितनि को टीको.** ऐसी गलत दीनता महाप्रभुजीने तोड़ दी **सूर व्हेके काहे घिघियात है!** अतएव गलत अहंकार भी नहीं रखना. ऐसा कोई एक संतुलित अभिगम हमें रखना है परमात्माके साथ अपना संबंध निभानेमें. वह संतुलित अभिगम हममें कब रहेगा कि जब हठकी वृत्ति हम

छोड़ देंगे. हठकी वृत्ति छोड़ेगे तो यह बात समझमें आयेगी और हठकी वृत्ति नहीं छोड़ेगे तो यह समझमें आयेगा कि दीनता नहीं करनी तो मैं अहंकार करूंगा. अगर अहंकार नहीं करना तो दीनता करूंगा.

एक बार मैं इब्राहिम रहेमतुल्लारोड बसस्टेन्डसे बसमें कहीं जानेके लिये चढ़ा. वहां बीच रास्तेमें एक बहुत ही तगड़ा आदमी भी चढ़ा. कंडक्टरने उसे राक दिया. उतर जाओ बस स्टोपके बगैर कैसे चढ़े? फिर दोनों एक दूसरेसे खूब झगड़े. अब झगड़ेमें तो स्वाभाविक है जैसे तू क्या कर लेगा - तू क्या कर लेगा? ऐसे होता है तो उसमें कन्डक्टरने अचानक उसे ऐसा कह दिया कि मोटू तेरा चश्मा उतार लूंगा! कदाचित उसका नम्बर ज्यादा होगा. अतएव वह तुरन्त उतर गया डरके मारे. मनुष्यको दो ही भाषा समझमें आती हैं या तो दीनताकी या फिर अहंकारकी. कंडक्टरने धमकी दी कि चश्मा उतार लूंगा तो पहला आदमी कंडक्टरकी तुलनामें तगड़ा था, अगर दो लप्पड़ कन्डक्टरको मारता तो कंडक्टर गिर जाता. लेकिन चश्मा ऐसी कमजोरी कि कोई उतार ले तो फिर लप्पड़ मारने किसको और कहां? हवामें मारने लप्पड़? अर्थात् मनुष्यकी यह लाचारी है कि या तो दीन बन सकता है अथवा तो अहंकारी. उस आदमीने अगर गलत हठ नहीं पकड़ी होती कि स्टोप बगैर भी बसमें चढ़ गया तो भी उतरेगा नहीं तो न तो उसे अहंकार दिखानेका अवसर मिला होता और न ही कंडक्टरकी तुलनामें अधिक शक्तिशाली होनेके उपरान्तभी दीनता दिखानेका अवसर. उसे मुंह नीचे करके उतरना ही पड़ा. मुझे शर्म आने लगी कि इतना तगड़ा मनुष्य कैसे उतर गया? अब चढ़ ही गया है तो थोड़ा बहुत झगड़ा करे. जबकि ऐसी इच्छा रखनी अच्छी बात नहीं है तो भी उसका शरीर देखकर मुझे भी थोड़ा उत्साह हुवा कि इतना तगड़ा आदमी थोड़ासा भी झगड़ा होता तो एक सीन बसमें खड़ा हो जाता. लेकिन चश्मेके बगैर न देख पानेकी लाचारी

ऐसी ही होती है. अतएव दीनता और अहंकार दोनोंसे बचना हो तो उसकी पहली शर्त है कि मनुष्यको हठाग्रह जीवनमें से छोड़ देना चाहिये. अगर हठाग्रह छोड़ दे तो इन दो एक्स्ट्रीमके ट्रेपसे बच सकता है. जिसकी वृत्ति हठीली है वह इन दोनोंमें से किसी एकमें कभी भी फंस ही जायेगा. अतएव तीसरा विवेक महाप्रभुजीने बताया है कि हठाग्रह नहीं करना.

४. **कर्तव्याकर्तव्यके बारेमें सजगता – चौथा विवेक** :

चौथा विवेक अपने कर्तव्याकर्तव्यके बारेमें सतत सजगता. वह कब जानी जाती है कि जब पहले कहे हुवे तीनों विवेक जाने हुवे हों. अगर मनुष्यके भीतर स्वयं कर्तव्याकर्तव्यकी सजगता अच्छी है तो उसके लिये उद्विग्न होनेकी शक्यता घट जाती है. यह नियम जैसे सामान्य बातोंपर लगता है वैसे ही भगवत्सेवा भगवद्भक्ति कि भगवदाश्रयके बारेमें भी जान लेना चाहिये.

इन चारों प्रकारके विवेकोंको निभानेवाला व्यक्ति ही धैर्य धारण करनेमें सक्षम बन सकता है इस कारण विवेकके बादमें धैर्यके चार प्रकारका उपदेश महाप्रभुजीने दिया है.

धैर्यके चार प्रकार सहज प्रतीकार या अनाग्रह, सहन, त्याग और असामर्थ्यभावना :

इन चार विवेकोंके साथ साथ महाप्रभुजीने धैर्यके भी चार प्रकार बताये हैं: अनाग्रह, सहन, त्याग और असामर्थ्यभावना.

बौद्धिक अनाग्रह :

हठाग्रह नहीं करना वह बौद्धिक विवेकका एक हिस्सा है. इसीलिये कहा गया है कि **बुद्धेः फलम् अनाग्रहः** एक बौद्धिक आग्रह होता है और एक लगनवाला आग्रह. जबकि बौद्धिक

हठाग्रह हम रखते हैं कि बस अब ऐसे समझमें आ गया तो वास्तविकता ऐसी ही है. दूसरा प्रकार अब इस वास्तविकता का हो ही नहीं सकता. उसमें हम कहें कि भाई सुनो तो जरा! तो कहेगा कि मुझे सुनना ही नहीं है! इसका नाम बौद्धिक हठाग्रह.

लगनवाला अनाग्रह :

उसी प्रकार किसी बातका आग्रह करना कि नहीं करना उस बारेमें हृदयकी लगनवाली मनोवृत्ति भी कुछ हो सकती है. हमारी जिस प्रकार लगन बंध गई है उसमे हठाग्रही हो जाना. अर्थात् मोटे तौरपर छोटे बच्चोंको हम ऐसे कह देते हैं कि तेरी मम्मी मेरी है. ऐसा बोलने वाला बिचारा मामा ही हो तो भी बच्चेको गुस्सा आ जाता है. क्योंकि इसकी लगनको चोट पहुंचती है कि मेरी मम्मीको अपनी कहने वाला तू कौन? अपनी मां प्रति जो इसकी लगनका आग्रह है वह चोट खानेके कारण रोने भी लगता है, झगड़ा भी करने लगता है कि नहीं तेरी नहीं मेरी है मां. मोटे तौरपर ऐसी बचकानी भरी हुई लगनका हठाग्रह होता है.

व्यवहारिक अनाग्रह :

बुद्धि और लगनकी तरह व्यवहारमें भी आग्रह प्रकट होता है. इसके लिये मकोड़े बहुत प्रसिद्ध हैं. मकोड़ेको तुम दस बार उसके ट्रेकसे अलग कर दो तो भी वह फिरसे उसी ट्रेकपर आ जाता है. कौन जाने परमात्माने उसके भीतर क्या शारीरिक व्यवस्था डाली है कि दस बार इसे पीछे घसीटो फिर भी वहींका वहीं आ जाता ह. तो मकोड़ेको बौद्धिक या लगनका आग्रह नहीं होता कि मेरा अपमान कैसे कर दिया तुमने, तुमने मुझे क्यों घसीटा, अब मैं फिरसे वापिस आ जाऊंगा. मुझे नहीं लगता कि इतना गंभीर चिंतन कि इतनी गंभीर लगन मकोड़ेमें होगी. लेकिन इसके शरीरकी बनावट कुछ इस प्रकार की है कि दस बार इसे घसीटो तो भी फिरसे वहींका वहीं आ जाता है.

<u>बौद्धिक, लगनवाला कि व्यवहारिक हठाग्रह नहीं रखना</u> :

व्यवहारमें भी ऐसी आग्रहिलता होती है, भावनाओंमें भी ऐसी आग्रहिलता होती है, वैसे ही वैचारिक आग्रहिलता भी होती है. इन तीन प्रकारकी आग्रहिलताओंको नहीं रखना यह भी एक धैर्य धारणका असरकारक उपाय है.

<u>धैर्यकी परिभाषा</u> :

धैर्य अर्थात् सहन करना. उसकी परिभाषा महाप्रभुजी इस प्रकार करते हैं- **त्रिदु:ख सहनम् धैर्यम् आमृते: सर्वत: सदा.** आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक तीनों दु:खोंको सहन कर लेना उसका नाम धैर्य है. और वह भी दो चार मिनिटके लिये नहीं परन्तु आजीवन. जो दु:खसुखकी साइकल चलती रहे उसमें दो चार मिनिट सहनेका हो तो कोई भी सह लेगा. इसमें कोई धैर्यकी बात नहीं है. वह तो रोजमर्राकी बात है. लेकिन **आमृते: सर्वत: सदा.** आजीवन कि आमरण दु:खोंको सहन करना उसका नाम धैर्य. अब इस परिभाषाके शिखिरके ऊपर जाकर धैर्यको देखने जाओगे तो अपना धीरज ही छूट जायेगा. ऐसा धीरज कौन रख सकता है? कोई नहीं रख सकता. मैं किशनगढ़में विवेकधैर्याश्रयके ऊपर प्रवचन कर रहा था. मेरी कुटेवके कारण सात दिन तलक विवेकके ऊपर ही प्रवचन चालू रहा. आठवें दिन एक भाईने खड़े होकर मुझसे पूछा कि महाराज! इतने दिनोंसे आप विवेकके ऊपर बोल रहे हो, धैर्य कब आयेगा? मैंने कहा तुम्हारा धैर्य छूट रहा है तो मैं भी अपना प्रवचन पूरा करता हूं. और प्रवचनका समापन हो गया. धैर्य निभाना बहुत मुश्किल बात है उसके आदर्शरूपमें. लेकिन व्यवहारमें थोड़ासा धैर्य थोड़े समयके लिये हम निभा सकते हैं. इसमें कुछ मुश्किल नहीं आती. यह जो पारिभाषिक धैर्य है **आमृते: सर्वत: सदा** तीनों दु:खोंको झेलना यह आदर्शकी ऊचांई है.

लगनके अनाग्रह द्वारा धैर्यको प्राप्तकरनेकी शुरुआत :

इस आदर्शको पानेके लिये शुरुआत किस प्रकार करनी? जैसे किंगकांग एक आदर्श पहलवान है लेकिन तुम आजसे घी खाना चालू करो तो कोई किंगकांग नहीं बन जाओगे. धीमे धीमे थोड़ा थोड़ा घी खाना शुरु करो तो किसी समय जाकर तुम किंगकांग जैसे बन जाओगे. अब किंगकांगकी जितनी खुराक थी उसे तुम आज खाकर तगड़े बन सको तो अच्छी बात है परन्तु किंगकांग बननेकी बजाय तुम्हें दस्त हो गये तो क्या होगा? अतएव घी खानेसे तगड़े ही बन जाते हैं इसकी कोई गारन्टी नहीं है. बीमार भी हो सकते हैं. तुम्हें तगड़ा बनना है तो इसके लिये तुम्हें प्रोग्राम बनाना पड़ेगा. धीरे धीरे तुम्हें घी खाकर उसे पचानेकी शक्ति बढ़ानी पड़ेगी तो तुम इतने तगड़े बन सकते हो. किसी भी बारेमें प्रमुखता कमिट्मेन्टकी होती है. उसी प्रकार धैर्यमें महाप्रभुजी कहत हैं भावनाके अनाग्रहसे धैर्यकी शुरुआत होती है.

लगनके हठाग्रहसे धैर्य खंडित होगा :

लगनका हठाग्रह बहुत मत रखो. लगन रखो. लगन मत रखो यह महाप्रभुजी नहीं कह रहे हैं धैर्यकी शुरुआतमें. जिसके प्रति तुम्हें जैसी लगन है.... हमने ऐरिक्सनके आठ सिस्टम् देखे हैं उनमेंसे जैसी भी लगन हो; अथवा तो किल्फोर्ड मोर्गनके ज्ञानके प्रकारोंमें देखा उसमेंसे कोई लगन हो, जिस विषयके प्रति कि जिस व्यक्तिके प्रति कि जिस सन्दर्भमें देखना हो वैसी लगन रखो इसमें कोई मुश्किल नहीं है. लेकिन जब भी कोई एक लगन तुम हठाग्रहकी बांध लोगे तब तुम्हारा धैर्य खंडित होता है. लगनके कारण धैर्य खंडित नहीं होता, लगनके हठाग्रहके कारण धैर्य खंडित होता है. अतएव धैर्य प्राप्त करनेका पहला कदम है कि लगन रखते हुवे भी उसका हठाग्रह नहीं रखना. तुम किसीके लिये मित्रताकी लगन रखते हो बहुत अच्छी

बात है. तुम परन्तु ऐसा हठाग्रह रखो कि यह मेरा मित्र है तो हरेक संदर्भमें कि हरेक परिस्थितिमें इस मित्रके अनुसार ही बर्ताव करना तो वह नहीं चलेगा. मनुष्य है ना, नहीं बरत सकता चूक सकता है. कोई काम इससे जाने अनजाने ऐसा हो जायेगा कि तुम्हारी मित्रता इससे आहत हो जायेगी. केवल मित्रके तौरपर लगन रखो और उसे निभा सको तो बहुत बहुत धन्यवाद! और न निभा सको तो अलविदा! ऐसा थोड़ा अनाग्रह रखोगे तो धैर्यका गुण खिलानेमें सहायक होगा. अगर आग्रहिल हो जाओगे तो तुम धैर्यका गुण नहीं खिला पाओगे. कोई तुम्हारा विश्वास तोड़े तो उसे किस प्रकार सहन करना ऐसे अनाग्रही बनकर तुम धैर्य प्राप्त कर सकते हो. तुम हठाग्रह रखोगे कि किसीको मित्र माना तो उसकी हिम्मत कैसे पड़ी विश्वास तोड़नेकी? तो फिर क्या करना कि उसका मर्डर करना? उसे जेलमें भिजवाना? करना क्या खुलासा करो ना, विश्वासघात किया लेकिन अनाग्रह होगा तो तुम्हें दूसरा कदम लेनेमें सुविधा होगी. इसने विश्वासघात किया. तुम्हारे दिलको बहुत दु:ख हुआ लेकिन इस दु:खको तुम सहन कर सकोगे. इस दु:खकी तुम धुनाई या जुगाली मत करो. तुम्हें चिन्ता नहीं होगी कि जिसे मैं जीवन भर मित्र मानता रहा उसने मुझसे विश्वासघात किया. अब या तो मैं इसे मारूं अथवा खुद जाकर सुसाइड कर लूं. इस संसारमें कौन किसका सगा है? यह सब नदी–नावके संयोग हैं. विश्वासघात किया तो किया, स्नेह दिया तो दिया. जो मिला उसे देखते रहो तो बस आनन्द आयेगा. जो मिले उसे एन्जोय करते रहो तो बहुत आनन्द आयेगा. उसकी धुनाई या जुगाली करोगे तो कुछ न कुछ लफड़ा होगा ही. जो पहला कदम अनाग्रहका तुम्हारेमें होगा तो फिर तुममें सहन करनेकी कला आयेगी कि जो तुमको अभिलषित हो कि अभिलषित न हो उसे तुम सहन कर सको.

लगनके अनाग्रहसे त्यागकी कला प्राप्त होती है :

जब तुम्हारेमें सहनशक्ति आयेगी तब तुम त्याग कर सकोगे, नहीं तो त्याग करते हुवे तुम्हें रोना आयेगा. किसी वस्तुको छोड़ना बहुत मुश्किल बात है समझे! लेकिन किसी वस्तुको हम कब छोड़ सकते हैं? शास्त्र बहुत सुंदर कहता है: **आयातम् आयान्तम् अपेक्षणीयं गतं च गच्छन्तं च उपेक्षणीयम्। अलं वृथा खेदनमोदनाभ्यां यद् अस्मदीयं नहि तत् परेशाम्।।** जो आ रहा है उसका सत्कार करो. जो जा रहा है उसको विदा दो. **आयातम् आयान्तम् अपेक्षणीयं गतं च गच्छन्तं च उपेक्षणीयम्।** जो गया अथवा जानेकेलिये कहता है उसे उपेक्षणीय मानो. **अलं वृथा खेदनमोदनाभ्यां** खेदन कि मोदन इस बारेमें मत करो. जो आ रहा है उसका सत्कार करो जो गया अथवा जाना चाह रहा है उसे विदा दो. **यद् अस्मदीयं नहि तत् परेशाम्** जो तुम्हारे साथ रहनेकेलिये निर्मित है वह दूसरेके पास नहीं जा सकता और जो तम्हारे साथ नहीं रह सकता वह तुम्हारा कभी होने वाला नहीं है. अतएव टेक इट ईजी. आरामसे लो. यह आरामसे लेना हम सीखेंगे तो त्यागकी कला आ जायेगी.

मैं जब तुलसीविलामें रहता था तब एक भाई पढ़नेकेलिये आता था. बोरीवलीसे मेरे यहां लगातार तीन दिन पढ़ने आया तो इसे कोई पाकीटमार पहचान गया कि मुंबईसे बाहरका है. अतएव तीनों दिन जेब काट ली. अब चौथे दिन मुट्ठीमें रुपिया रख कर आया और मेरे फ्लेटमें आकर मुझसे पूछा कि आप आज्ञा दो तो मुट्ठी खोलूं. मैंने कहा क्या है मुट्ठीमें? बोला रुपिया लाया हूं कि कोई पाकिटमार न मार ले इसे. सब हल्कापन इसका खत्म हो गया. तीन बार पाकीट कटी अतएव आदमी फिर रूपयेको हलकेसे नहीं ले सकता. फ्लेटमें घुसनेके बाद भी मुझसे पूछ रहा है कि आप आज्ञा दो तो अब मुट्ठी खोलूं. मुट्ठीमें बांध कर रूपये लाया.

ऐसे हरेक संबंधको, लगनको, उपलब्धिको, हम मुट्ठीमें बांधकर रखें कि कोई मेरी जेब न काट ले. जो मेरे संबंध हैं, जो मेरी लगन हैं, जो मेरी उपलब्धियां कि एचीवमेंट हैं, इन हरेकको मुट्ठीमें जकड़कर रखना चाहते हैं कि कोई इन्हें छीनकर न ले जाये. हमारेमें त्यागकी सामर्थ्य नहीं है. त्यागकी सामर्थ्य नहीं है अतएव हम अधीर हो जाते हैं. महाप्रभुजी कहते हैं कि त्याग कब तुम कर सकते हो कि जब तुम अनाग्रह और सहनका बोधपाठ अच्छी तरहसे समझ लो. फिर कोई जाना चाहता हो तो उसे विदा देनेमें तुमको कभी भी तकलीफ नहीं होगी. कोई आता हो तो उसके सत्कार करनेमें तुमको जरा भी तकलीफ नहीं होगी. तुम टोकोगे नहीं कि क्यों तू तो जाना चाह रहा था अब फिर क्यों वापिस आया. ऐसे टोकनेकी गरज तुमको नहीं रह जायेगी क्योंकि तुम्हारी वृत्ति अनाग्रहिल हो गई है. आती है तो आ, जाती है तो जा, दोनोंकेलिये तुम्हारे दिमागके किवाड खुले होने चाहियें. जो आता हो उसे सत्कार दो, जो जाता हो उसे विदा दो. वास्तविक त्याग ऐसा होता है. इस प्रकार धैर्यके भी चार प्रकार गिन सकते हैं.

१. **अनाग्रहिलतया प्रतीकार शक्य हो तो वह धैर्यमें बाधक नहीं परन्तु साधक कदम** :

अतएव दु:खोंको सहन करना कि उनका प्रतीकार करना इस बारेमें अनाग्रहिल होनेकेलिये महाप्रभुजी बताते हैं. क्योंकि वैसा करनेसे भक्ति कि प्रपत्तिके मार्गपर तुम निरउद्वेग आगे बढ़ सकते हो. महाप्रभुजी ऐसे नहीं कहते कि अनाग्रही हम बने हैं तो शक्य होनेपर भी दु:खोंका कोई प्रतीकार नहीं करना. अतएव दु:खोंका सहज प्रतीकार हो सकता हो तो कर लेनेसे हम धैर्यके रास्तेसे विचलित हो जायेंगे ऐसी भ्रमणा मनमें नहीं रखनी चाहिये.

२. <u>प्रतीकार शक्य न हो तो दु:खोंको सह लेना यह धैर्यका दूसरा कदम</u>:

उसके बाद अगर प्रतीकार शक्य न हो तो दु:खोंको सहन कर लेनेकी अपनी मनोवृत्ति रखनी चाहिये तो ही धैर्य धारण हो सकता है अन्यथा नहीं.

३. <u>स्वत: कुछ आरम्भ नहीं करना यह धैर्यका तीसरा कदम</u> :

यहां लगनका प्रश्न प्रमुख बन रहा है कि हम जानते हैं कि जैसे अपनेसे प्रतीकार शक्य नहीं है वैसे ही दु:खोंको सहन कर लेना भी अगर शक्य न हो तो फिर जड़भरतकी तरह स्वयं कोई भी कायिक वाचिक कि मानसिक प्रवृत्तिका आरम्भ करनेके अभिगमसे विरत अर्थात् त्यागकी मनोवृत्ति प्राप्त करनी चाहिये. गुजरातीमें इसकेलिये एक बहुत अच्छी कहावत है जैसेको तैसा देनेकी प्रवृत्ति आरम्भ करनेका अभिगम हमारा नहीं होना चाहिये. ऐसा जो शक्य हो तो कभी उद्वेग चिंतामें परिवर्तित नहीं होगा.

४. <u>असामर्थ्यकी भावना चौथा कदम</u> :

अगर इनमेंसे कुछ भी तुमसे नहीं हो सकता कि तुम न तो अनाग्रह प्राप्त कर सकते हो कि न ही तुममें प्रतीकारकी शक्यता है, और न ही तुम सहन कर सकते हो तो महाप्रभुजी चौथा धैर्यका स्वरूप ऐसे समझाते हैं कि तुम सब ओरसे असमर्थ हो, समर्थ नहीं हो तो फिर तुम चुप रहो. जो मैं उड़नेमें समर्थ नहीं हूं तो अभी मैं कितने ही हाथ पैर ऐसे वैसे पक्षीकी तरह करूं लेकिन आकाशमें तो उड़ नहीं सकता? जिस बातमें समर्थ होऊं वह बात कर सकता हूं. पक्षी जैसे पंख फड़फड़ाता है और थोड़ी देरमें आकाशमें उड़ जाता है, सोचो कि आधा पौना घण्टे मैं हाथ ऐसे वैसे करूं तो क्या एक इंचभी ऊंचा जमीनसे ऊपर उठ सकता हूं? नहीं उठ सकता. क्योंकि मेरे हाथोंमें पक्षीके पंख जैसी सामथ्य ही नहीं है. अब सामर्थ्य नहीं है तो मुझे समझ

लेना चाहिये कि आकाशमें उड़नेकी गलत भावनासे हाथ ऐसे वैसे मुझे नहीं करने चाहिये. शांतिसे बैठना चाहिये, नहीं उड़ सकता तो क्या होगा? मुझे भी पानीमें तैरनेकी बहुत इच्छा होती है लेकिन मछलीकी तरह पानीके भीतर रह नहीं सकता और थोड़ी देरमें पानीके भीतर घुटन महसूस होनेपर फिरसे पानीके ऊपर आना ही पड़ता है क्योंकि सामर्थ्य नहीं है. जितने अंशमें सामर्थ्य हो उतने अंशमें हमें उसे प्रयोगमें लाना चाहिये. अतएव असामर्थ्य भावना यह चौथा धैर्यका प्रकार महाप्रभुजीने बताया. यह सब बात तुम्हें इसलिये समझा रहा हूं कि नवरत्नमें हमें यह बात सूत्ररूपमें मिल रही है और भाष्य समझ लेंगे तो सूत्र समझमें आ जायेगा. सूत्र समझोगे तो भाष्य समझमें आ जायेगा.

आश्रयकी परिभाषा :

उसके बाद जो शरणागतिकी **ऐहिके पारलोके च सर्वथा शरणं हरिः** इहलाक और परलोकमें हरि ही एक शरण है. शरण अर्थात् रक्षक है. अब फिरसे यह बहुत ऊंची हाइट है. एवरेस्टकी तुलनासे भी ऊंची समझे! सोचो कि तुम्हें खांसी आई तो यह एक ऐहिक प्रोब्लम् है कि नहीं? अब **शरणं हरिः** तो तुम क्या चरणामृत लोगे कि दवा लोगे? अथवा तो विक्स फौर्म्युला फोरटीफोर लोगे अथवा क्या लोगे? अब तुम कहो कि ना विक्स फौर्म्युला फोरटीफोर लें तो शरणागति टूट गई. तो ऐसी पंचायत अगर होती है तो क्या करना? **ऐहिके पारलोके च सर्वथा शरणं हरिः**.

यह शरणागतिकी शिखिर कक्षाकी कि टौपकी बात है. इस टापके ऊपर पहुचनेसे पहले बहुत सारे मुकामोंसे हमको गुजरना पड़ेगा और इन बहुत सारे मुकामोंसे ही हमारा काम होगा.

१. **आश्रयका पहला मुकाम मन-वाणीसे प्रभुकी शरणागति** :

इसमें पहला मुकाम महाप्रभुजी शरणागतिका ऐसे समझाते हैं कि मन और वाणीसे शरणकी भावना करनी. हरेक बातमें तुम्हें प्रभुका रक्षकपना अनुभवित हो कि नहीं उसकी भावना तो कर सकते हो. तुम्हारेसे शरणकी ऐसी दृढ़ता नहीं निभती हो अर्थात् तुम्हें खांसी आनेपर डाक्टरके पास जाना पड़ता हो तो जाओ लेकिन मनमें भावना इस प्रकार रखो कि डाक्टर मुझे क्या ठीक करेगा, प्रभु मुझे स्वस्थ रखना चाहेंगे तो मैं बिल्कुल ठीक हो जाऊंगा. नहीं स्वस्थ रखना चाहते होंगे तो डाक्टरकी दवा भी मुझे ठीक नहीं कर पायेगी. ऐसी भावना तो तुम अपने मनमें कर सकते हो ना? तो मनसे और वाणीसे ही ऐसी भावनाकी तुम शुरुआत करो तो वह शरणागतिकी ओर जानेका पहला कदम होगा.

यह भावना जो तुम न कर सकते हो तो फिर प्रोब्लम है. अब एक कदम तो आगे भर नहीं रहे और कहो कि **ऐहिके पारलोके च सर्वथा शरणं हरिः.** हरेक बातमें हमारे तो हरि ही शरण हैं. तो फिर यह बात कहने भरकेलिये सच्ची है परन्तु जीवनकी वास्तविकता नहीं बना सकते तुम. पाठ करना हो तो पाठ कर सकते हो, यह संभव है. प्रवचन करना हो तो मेरी तरह प्रवचन भी कर सकते हो. इसमें कोई मुश्किल नहीं लेकिन प्रवचन अर्थात् प्रवंचन समझे! यह सब संभव है और वैसा करनेकेलिये हम उत्तम अधिकारी हैं. जघन्य मध्यम अधिकारी नहीं. इतनी भावना जो तुम मनमें ला सको कि ऐहिक कि पारलौकिक जो कुछ लाभ, जिस किसी स्रोतसे होता हो वह लेते रहो लेकिन भावना ऐसी करनी कि हरि ही मुझे इस रूपमें लाभ पहुंचा रहे हैं. **ऐहिक पारलोके च सर्वथा शरणं हरिः.** ऐसा करोगे तो हौले हौले तुम्हारा शरणागतिका भाव दृढ़ हो जायेगा.

२. <u>आश्रयका दूसरा मुकाम मन-वाणी-कायासे अन्याश्रय नहीं करना</u> :

दूसरा उपाय शरणागतिका अर्थात् दूसरा कदम महाप्रभुजीने बताया है वह यह कि कायिक, वाचिक अथवा मानसिक रूपसे अन्याश्रयका त्याग करना. अब पहला कदम भर सके कि हरेक बातमें प्रभुही शरण हैं ऐसी भावना करनेकी.... इसका उलटा अर्थ मत ले लेना कि अच्छा अच्छा अब हम समझे कि खाली माननेकी बात है. नहीं तो फिर यह श्याममनोहरजी मर गये. ऐसा मत समझना, यह मुद्दा मेरा ऐसा नहीं है. हम सब बहुत होशियार हैं. जरा सी बातसे चोंचको जगह मूसलको भी घुसानेकी. भावना करनेकी बात करते ही तुम कहने लगोगे **अरे! पहले ही कहना चाहिये था ना कि यह तो खाली कहने सुननेकी बात है. करना धरना कुछ नहीं है. पहलेसे तुमने खुलासा क्यों नहीं किया, नहीं तो हम भी शरणागत हो जाते.** इस अर्थमें सर्वथा नहीं.

अन्याश्रय कहने पर अन्य कौन ?

तुम्हारी काया वाणी और अन्त:करणसे तुम किसीभी अन्यदेवका आश्रय नहीं करो. यहां अन्य अर्थात् जिसे हमने पुष्टिमार्गमें आराध्य देवके तौरपर नहीं लेते वह देव. नहीं तो अन्यका अर्थ तो महान विस्तृत है. अन्य अर्थात् यमुनाजी भी. और यमुनाजी अन्य नहीं तो महादेवजी किस कारण अन्य? महादेवजी क्या अलग हैं भगवानसे? महादेवजी भी ठाकुरजीका ही स्वरूप हैं. **ब्रह्मैव तादृशं यस्मात् सर्वात्मकतया उदितौ** (बालबोध-१२) ऐसी आज्ञा स्वयं महाप्रभुजी कर रहे हैं. ब्रह्म स्वयं ही अर्थात् हमारे कृष्ण ही, महादेवजी रूपमें भी पकट हुवे हैं. यमुनाजीरूपमें भी प्रकट हुये हैं. तो यमुनाजी अन्य नहीं तो महादेवजी किस प्रकार अन्य हो गये? और महादेवजी अगर अन्य तो यमुनाजी अन्य कैसे नहीं?

एक बात ध्यानसे समझो कि यहां अन्य कौन है और अन्य कौन नहीं यह प्रश्न तत्वसंबंधी प्रश्न नहीं है. लेकिन

सम्प्रदायकी जो भक्तिरूपा साधनाप्रणाली है इसमें कौन आराध्यके तौरपर तुमको लाया गया है. और कौन आराध्यके तौरपर नहीं लाया गया यह मुद्दा है. जिसको आराध्यके तौरपर तुम देखते हो वह अन्य नहीं है. जिसको आराध्यके तौरपर नहीं देखते वह अन्य है. वैसे देवोंका आश्रय नहों करना. वैसे देवोंका आश्रय करनेपर अन्याश्रय होता है.

डॉक्टर या वकील इत्यादिके साथका व्यवहार आश्रय नहीं होता :

लौकिक व्यक्तिको हम देव मानतेही नहीं. जब देव ही नहीं मान रहे तो उसकी सहायता लेनी वह आश्रय ही नहीं है. जैसे डॉक्टरके पास तुम जाते हो दवा लेते हो तो डॉक्टरको देव मानकर थोड़े ही जाते हो? डॉक्टरके साथ तुम्हारा सीधा सौदेका संबंध है कि तू मेरा निदान कर और औषधि दे और मैं तुझे तेरी फीस देता हूं. तू तेरे घर और मैं मेरे घर इसमें कोई डॉक्टरका हम आश्रय नहीं ले रहे. झगड़ा हो गया हो तो अदालतमें वकीलके पास जाना पड़े, तो वह कोई वकीलका आश्रय नहीं है. क्योंकि वकीलकी और तुम्हारी समझ साफ है कि वह अदालतमें वकालत करता है और तुम्हारे पास अदालतका कोई मुद्दा आया है तो वह वकालत बतायेगा और तुम उसको फीस देकर छूट जाते हो. इसमें हमने कोई आश्रय नहीं लिया. अतएव यह अन्य है कि अन्य नहीं है यह प्रसंग अप्रासंगिक बन जाता है. जैसे धन फेंकनेवाले मनोरथी और महाराजश्रीओंके बीच जैसा व्यवहार वह आश्रय लेनेका नहीं है बल्कि वह तो मनोरथी आकर महाराजको धन दे देता है कि आप मनोरथ करा लेना और बादमें तुम छूटे और महाराजभी. तुम तुम्हारे घर और हम हमारे घर. यह तो वकील और डॉक्टर जैसा ही संबंध है. आश्रयका संबंध इतने हल्केपनसे लेनेका नहीं है. आश्रय लेना इसमें एक गंभीर भावना रही हुई है.

आश्रय अर्थात् किसीकी दिव्यतामें निष्ठा रखनी कि यह कोई देव है. यह अपने पुष्टिमार्गीय नहीं तो नहीं तो भी किसी मर्यादामार्गीय कि अन्य किसी साधनाप्रणालीके आराध्य देव हैं. ब्रह्मवादी दृष्टिकोणसे देखनेके उपरान्त हमारे प्रभु द्वारा लिया गया ही एक दिव्य रूप है. ऐसी भी भावना जब रखो तब इसमें आश्रयका प्रसंग आयेगा. नहीं तो आश्रयका प्रसंग ही नहीं आयेगा व्यापारिक प्रसंग है. आश्रयका प्रसंग और व्यापारिक प्रसंग अलग अलग बात हैं. वकीलका हम आश्रय नहीं करते, वकीलके साथ सौदा करते हैं उसकी वकालतके ज्ञानको वह बेचता है और हम उसे खरीद रहे हैं. हम महाराजश्री मठडी बेच रहे हैं और तुम उसे खरीद रहे हो. यह सादेका संबंध है आश्रयका संबंध नहीं. यह मनोरथ बेच रहे हैं और तुम खरीद रहे हो. अपने ठाकुरजीको पलनेमें झुलानेकी झांकी वह बेच रहे हैं और तुम ग्राहक बन कर उसे खरीद रहे हो. यह सब सौदेके संबंध हैं, आश्रयके संबंध नहीं हैं. आश्रयका संबंध बहुत गंभीर संबध है यह इतना हल्का संबंध नहीं है.

<u>आराध्यदेवका ही आश्रय</u> :

जहां आश्रय करना हो वहां अन्य कौन है और अन्य कौन नहीं उसका प्रश्न आता है. अतएव महाप्रभुजी कहते हैं कि शरणागतिका दूसरा कदम यह है कि किसीभी अन्य देवका आश्रय नहीं करना. अब आश्रय नहीं करना तो क्या गालो देनी? नहीं. इनका अपमान करना? नहीं. इनके देवत्वको स्वीकारना और स्वीकार करके इनका आश्रय नहीं करना. जब तुम्हारा विवाह नहीं हुवा है तो हरेक स्त्री अच्छी है, हरेक पुरुष अच्छा है. लेकिन जब विवाह हो गया तब ही कोई दूसरी स्त्री होती है. तुम्हारा विवाह हुवा तो कोई परपुरुष होता है. एक बार तुम्हारा विवाह हो गया तो एक पॉइन्ट खड़ा होता है कि अब जिससे तुम्हारा विवाह हुवा है उसके सिवाय स्त्री परस्त्री, उसके सिवाय दूसरा पुरुष परपुरुष. ऐसे ही किसीको तुमने आराध्यदेवके

तौरपर आराधनामें स्वीकार किया तब वहां प्रश्न खड़ा होता है कि यह आराध्यदेव और यह अन्यदेव. कायिक, वाचिक या मानसिक अन्याश्रयका त्याग यह महाप्रभुजी कहते हैं कि आश्रयका दूसरा कदम तुम भर सकते हो. मानसशास्त्रका कितना सूक्ष्म विचार महाप्रभुजीने किया है, यह तुम्हें पता चले तो तुम उसका आनन्द ले सकते हो.

३. **आश्रयका तीसरा मुकाम प्रभुपर चातक जैसा विश्वास** :

जब तुमने दूसरा कदम भरा तब महाप्रभुजी कहते हैं कि अच्छा यह कदम तुमने अच्छी तरहसे साध लिया तो पहली परीक्षामें पास हो गये तो दूसरी कक्षामें जाते हैं, दूसरीमें पास हुवे तो तीसरी कक्षामें जाते हैं, मेट्रिकमें पास हुये तो कॉलेजमें जाते हैं, कॉलेजमें पास हुये तो युनिवर्सिटीमें जाते हैं. ऐसे स्टेप बाई स्टेप आगे बढ़ा जाता है. वैसे ही यह कदम तुमने अच्छी तरहसे साध लिया तो तीसरा कदम आता है **ब्रह्मास्त्र चातकौ भाव्यौ.** अर्थात् जिस प्रकार चातक स्वातिकी बूंदपर विश्वास रखता है, मर जाता है लेकिन दूसरा अन्य पानी नहीं पीता. ऐसा विश्वास तुम्हें तुम्हारे पुष्टिमार्गपर होना चाहिये. शुरुआतके दो कदम जो तुमने नहीं भरे होते तो ऐसा विश्वास हो ही नहीं सकता. संभव ही नहीं है. यह विश्वास तब तुम प्राप्त कर सकते हो जब शुरुआतके दो कदम तुमने अच्छी तरहसे साध लिये हो तो तीसरेमें तुम्हें बहुत परेशानी नहीं होगी. लेकिन शुरुआतके दो स्टेप्स् तुमने लीये ही न हों, तो यह तीसरा स्टेप् लेनेमें टूट जाओगे एकदम. एकदम नर्वस् ब्रेकडाउन् तुम्हारा हो जायेगा. इतना अधिक विश्वास प्रभुके ऊपर कैसे रखा जा सकता है?

मैंने एक भाईको ठाकुरजी पधरा दिये. उसके बाद इसके परिवारमें कुछ झगड़ा हुवा. तो उसने मुझे आकर कहा कि **महाराज! यह ठाकुरजी कुछ ऐसे विचित्र चरणसे पधारे हैं कि जबसे घरमें पधारे हैं तबसे घरमें झगड़ा ही चलता है.** मैंने

कहा **तुम्हारे घरमें कोई बहु आई होगी. उसके पैर भी तो हो सकते हैं. तुम दुकान चलाते हो तो कोई ग्राहक आया होगा उसके पैरके कारण ऐसा हुवा होगा. दुकान चलाते हो तो कोई ऐसा पैसा आ गया होगा कि जिसके कारण झगड़ा हो सकता है. एक ठाकुरजीको ही तुमने क्यों चुना?** इस दौरान क्या कोई दूसरी वस्तु नहीं आई होगी घरमें? बहुत सारी वस्तुयें आयी ही होंगी. एक मनुष्य जो गृहस्थी जीवन जी रहा है उसके घरमें कितनी सारी वस्तु एन्टर होती होंगी. किसी बिल्लीका पैर भी ऐसे हो सकता है. बिल्ली नहीं घुसी क्या तुम्हारे घरमें? लेकिन किसी और पर नहीं केवल ठाकुरजीके ऊपर आरोप लगाना कि जबसे ठाकुरजी पधारे तबसे घरमें क्लेश घुस गया है. हमारे बड़े मंदिरमें एक बार बिचारे गिरिराजजी ऐसे ही पधारे थे. यह जबसे पधारे तबसे सबको ऐसा लगता था कि झगड़ा हो गया भाईयोंमें. आखिरमें इनको विदा करना ही पड़ा जतीपुरा तक. अब पधारो प्रभ! बहुत कृपा हो गई, महाराज क्या समझ रखा है आपने, हमें जीने दोगे कि नहीं?

यह जो तीसरा स्टेप् है यह बहुत कठिन स्टेप् है, कि प्रभुके ऊपर विश्वास रखना कि जो कुछ झगड़ा हो रहा है वह **अपनो दोष विचार सखीरी, उनसों कछु नहीं कहिये.** बहुत मुश्किल बात है. गाना हो तो विहागमें गाकर सुना दूं, कहो तो कल्याणमें गा देता हूं, यमनमें कहो तो उसमें, केदारमें कहो तो उसमें भी गा देता हूं. गाना बहुत सरल है लेकिन निभानेमें हाड़पिंजर हिल जाता है आदमीका. इतनी मुश्किल बात है यह. इतना सुदृढ़ विश्वास भगवानके ऊपर कि मेरा जो कुछ अच्छा या कि खराब हो रहा है उसके दोष उनके ऊपर नहीं डालूं. तुम्हारे चरणोंको दोष नहीं दूं कि आप जबसे पधारेहो तबसे यह क्लेश घरमें घुस गया. ऐसा नहीं विचारूं. ऐसा चातक जैसा विश्वास प्रभुमें होना चाहिये.

प्रभुके ऊपर श्रद्धा रखनी बायें हाथका खेल है. मनुष्य श्रद्धाके लिये तो जैसे मोमबत्ती जलती हो तो मोम टपकता है, श्रद्धा मनुष्यमेंसे ऐसी ही रीतिसे टपकती ही है. बत्ती जली कि मोम टपकने ही लगता है टप, टप, टप. ऐसे ही हरेक मनुष्य चाहे आस्तिक हो चाहे नास्तिक हो, ईश्वरवादी हो कि अनीश्वरवादी, संत हो कि शैतान, ऐसा कोई मनुष्य हो ही नहीं सकता कि जिसमें श्रद्धा न हो. जिसमें श्रद्धा न हो वह तो सुसाइड् ही कर लेता होता है. बल्कि मुझे तो लगता है कि सुसाइड् करनेवाला भी बहुत श्रद्धालु होता है. क्योंकि इसे श्रद्धा है कि मर जाऊंगा तो सब तकलीफोंका निवारण हो जायेगा. **घबराक कहते हैं कि मर जायेंगे, मरकर भी चैन न पाया तो किधर जायेंगे.** श्रद्धा डिग गई तो सुसाइड्में भी लफड़ा हो जायेगा. सुसाइड् भी तुम नहीं कर पाओगे. अर्थात् तुम्हें अगर सुसाइड करना हो तो जबरदस्त श्रद्धा होनी चाहिये. सुसाइड करनेकेलिये आकाश जितनी विशाल श्रद्धा तुम्हारे हृदयमें हो कि सब तकलीफोंका खात्मा कर रहा हूं तो हो सकता है. अतएव श्रद्धा तो परमात्मा ऊपर कि शैतानके ऊपर मोमबत्तीमेंसे जैसे मोम टपकता है ऐसे मनुष्यमेंसे श्रद्धा टपक ही रही है.

एक भद्दा श्लोक है कहना नहीं चाहिये आजकी तारीखमें लेकिन एक उदाहरणके लिये कह रहा हूं **रहो नास्ति क्षणं नास्ति नास्ति प्रार्थयिता नरः तेन नारद नारीणाम् सतीत्वम् उपजायते.** कोई एकान्त नहीं मिलता, कोई हमसे प्रार्थना करनेवाला नहीं मिलता, और समय नहीं है अतएव सभी स्त्रियां सती हैं ऐसा कहनेमें आता है. जबकि यह बात गलत है. ऐसा नहीं होता लेकिन श्रद्धाके बारेमें यह बात सच्ची है कि कोई रिक्वेस्ट् नहीं करता अतएव हमें श्रद्धा नहीं है. बाकी कोई रिक्वेस्ट् करे कि आज हमारे यहां हवेलीमें छप्पनभोग है, तो **अच्छा अच्छा आ जाऊंगा** हो ही जाता है. ना करें तो कुछ अनर्थ हो जाये तो? समाधानी तुम्हारे घर आये और कहे कि

आज राजभोग-मंगलाका मनोरथ कराओ, तुम्हें श्रद्धा है और पैसे भी नहीं हैं तो भी तुम पैसा जमा करा दोगे.... दो भाई! ना करें तो ना जाने कौनसी मुसीबत आ जाये जीवनमें. आ गया है तो दे दो फिर सब इसका जस्टिफिकेशन देगें कि हम कोई सामनेसे ता गये नहीं थे लेकिन समाधानी आये तो उसे किस प्रकार मना कर सकते हैं. ऐसे तो गुंडा आ गया तो तुम दोगे? नहीं दोगे. छुरा लेकर तुम्हें लूटने आ जाये तो तुम दोगे उसे क्या? पुलिसमें रिपोर्ट करोगे कि नहीं? इसके लिये ही मैंने एक गीत बनाया है **समाधानी मारे घेर आवी आवीने 'जयश्रीकृष्ण! कही मांगे मनोरथो, जयश्रीकृष्ण! कही मांगे, मारा घरना ठाकोरनी श्री लई जाय, थया छे घणा देवलकजी'** तो यह बात समझो कि हम दे देते हैं, किस कारण देते हैं? कोई मांग नहीं रहा अतएव तुमको श्रद्धा नहीं है. तुम सब जानते ही होगे कि कितनही चिट्ठीयां लिखते हैं कि यह कार्ड तुम्हें लिख रहा हूं, ऐसे दस कार्ड तुम भी लिख देना. नहीं तो तुम्हारे घरमें विपत्ति आ जायेगी. अब अगर तुम्हारेमें श्रद्धाकी कमी हो तो ही तुम कार्ड नहीं लिखोगे. बाकी श्रद्धा तो मोटे तौरपर मनुष्योंमें ऐसी होती है कि कौन जाने क्या विपत्ति आयेगी, क्या होगा? लिखो न कार्ड हमारा क्या जाता है? दस आदमीयोंको तुम फिर कार्ड लिख ही देते हो. अतएव श्रद्धा तो मोमबत्तीके मोमकी तरह भीतरसे बाहर टपक रही है. गीतामें इसकेलिये ही भगवान आज्ञा करते हैं **श्रद्धामयो अयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धय: सएव स:** मनुष्यके शरीरमें रक्त जितना नहीं बहता जितनीकी श्रद्धा बहती है.

परमात्मामें विश्वास यह आश्रयका महत्वपूर्ण अंग है :

मनुष्यकी जो प्रोब्लम है वह है विश्वासकी. विश्वासकी बहुत बड़ी कमी है. परमात्माके ऊपर विश्वास करना बहुत मुश्किल है. श्रद्धा लानी तो बायें हाथका खेल है लेकिन कोई कहे कि **परमात्माके अस्तित्वमें तुमको विश्वास है?** नाईन्टी नाईन पॉइन्ट नाईन परसेन्ट लोग भाग जायेंगे. विश्वासका प्रश्न

बहुत कठिन है. एक सामान्य उदाहरण देता हूं अगर तुमको विश्वास हो तो तुम झूठ किस प्रकार बोल सकते हो? अगर तुमको विश्वास हो तो तुम चोरी क्यों कर सकते हो? क्योंकि परमात्मा देख रहा है. परमात्मा जान रहा है. पुलिस देख रही हो और पुलिस जानती हो तो तुम चोरी करोगे? कभी नहीं करोगे. क्योंकि विश्वास है तुम्हें कि पुलिस देख रही है. एक गानेमें आता है **बड़ा ही सी.आई.डी. है नीली छत्रीवाला.** लेकिन हमें इसके ऊपर विश्वास नहीं है. अतएव हम सब काले सफेद धंधे करते ही रहते हैं. श्रद्धा फिरसे हमारेमेंसे बहुत ही टपकती होती है कि परमात्मा है. हम ईश्वरको मानते हैं लेकिन जब विश्वासकी बात आती है तो डगमगा जाते हैं. सारे ऐसे प्रवंचन करनेवाले मेरे जैसे लोग भी डिग जाते है जब विश्वासका मुद्दा खड़ा करनेमें आता है. एक बार परमात्मामें विश्वास आ जाये तो मनुष्य मनुष्य नहीं रह जायेगा, मुझे लगता है, देव बन जायेगा. अतएव ऐसे विश्वासको महाप्रभुजी तुरन्त नहीं कहते. तीसरे स्टेप्के तौरपर इसे सजेस्ट कर रहे हैं. **ब्रह्मास्त्र चातकौ भाव्यौ** चातककी तरह बादमें विश्वास तुम्हें प्राप्त होगा. ऐसा अनन्याश्रय प्राप्त होना. अनन्याश्रयकी जीवन प्रणालीमें तुमने जीनेका कोई प्रयास शुरु किया तो विश्वास तुम्हें परमात्मामें मिलेगा ही.

४. आश्रयका चौथा मुकाम 'प्राप्तं सेवेत निर्ममः' :

आश्रयका चौथा और फाइनल स्टेप् बहुत ड्रास्टिक स्टेप है. महाप्रभुजी कहते हैं कि जो कुछ तुमको मिलता है **प्राप्तं सेवेत निर्ममः. यत् पृथिव्यां बलं ज्ञानं गुणाश्च सुयशो धनम्। यतो नैकस्य पर्याप्तं स्वार्जितं निरहं भजेत्।।**

इस श्लोकमें ऐसे कहनेमें आया है कि पृथ्वीमें जो कुछ बल, ज्ञान, सद्गुण, सुयश कि धन हा सकता है वह सब किसी एक मनुष्यको कभी मिला नहीं और न ही मिलने वाला है. कितने ही हाथ पैर मार लो तुम, **यतो नैकस्य पर्याप्तं स्वार्जितं**

निरहं भजेत यतो नैकस्य पर्याप्तं स्वार्जितं निरहं भजेत् अतएव जो तुमको मिला है उसका तुम अहंकार कि ममता रखे बिना आनन्द लो. निर्मम-आनन्द अर्थात् क्या? ममता रखे बिना जो मिला है उसका मजा लेना. अर्थात् थालीमें जो परोसा गया है उसका स्वाद लेना सीखो, कुल मतलब इसका यह. यह अनन्याश्रयका सबसे आखरी कदम है. यह तुमको सिद्ध हो गया तो **प्राप्तं सेवेत निर्ममः** वाली बात सरल बन जायेगी. तुम देखो कि **ऐहिके पारलोके च सर्वथा शरणं हरिः** बहुत आसान स्टेप हो जाता है कि नहीं? जो **प्राप्तं सेवेत निर्ममः** अर्थात् मुझे प्राप्त हुआ है उसमें मुझे आनन्दित होना चाहिये. जो प्राप्त नहीं हुवा उसका मजा लेनेकेलिये मैं मोहताज नहीं. ऐसा जो भाव तुमको दृढ़ हो जाये, ऐसा दृढ़ाश्रय सिद्ध हो तो **ऐहिके पारलोके च सर्वथा शरणं हरिः** तुमको परिभाषा नहीं लगेगी परन्तु जीवनकी वास्तविकता लगेगी. तुम्हें कोरा आदर्श नहीं लगेगा परन्तु तुम्हारी जीवनप्रणाली लगेगी. बस अंतर वहां पड़ जाता है. पहला स्टेप नहीं लिया उस समय **ऐहिके पारलोके च सर्वथा शरणं हरिः** एवरेस्टकी चोटी जैसी ऊंचाई दिखेगी. यह फाइनल स्टेप जब हमने ले लिया **प्राप्तं सेवेत निर्ममः** का तो फिर तुम थोड़े आगे बढ़ो तो वहां एवरेस्टके ऊपर तुम हो ही, तेनसिंघ-हिलेरीकी तरह. लेकिन स्टेप बाइ स्टेप आगे बढ़ना है. महाप्रभुजीने इसकी पूरी सावधानी ली है कि किस स्टेपके बाद तुमको कौनसा स्टेप लेना है जिससे कि तुम बीचमें ही घबरा न जाओ. बीचमें हिम्मत हार न जाओ. बीचमें तुम टूट न जाओ. भक्तिकी साधनामें भगवानको तुमने भजनीय बनाया है उसके भजनीय होनेका और तुम्हारे भक्त होनेका संबंध बराबर निभता रहे उस बारेमें यह सब सावधानियां इसमें बतायी गई हैं. और वह इस विवेकधैर्याश्रयमें समझाई गई हैं.

नवरत्न सूत्र है और विवेकधैर्याश्रय भाष्य है :

जब हम ऐसा कह रहे हैं कि आन्तरिक उपाय तो अब इन चार विवेकोमेंसे कोई न कोई एक विवेक महाप्रभुजी सूत्रात्मक रीतिसे कह रहे हैं. इस बातको फिरसे तुम्हें समझना पड़ेगा, यह आठ वाक्य, जो मैंने तुमको नंबर लगा कर दिये हैं, इनमें देख लो. फुरसतसे तुम मिलान करोगे तो तुमको बहुत मजा आयेगा कि कितने मजेका सूत्र और कितने मजेका इसका भाष्य महाप्रभुजीने नवरत्न और विवेकधैर्याश्रिय रूपमें हमको उपदेशित किया है. तुमको आनन्द आयेगा वास्तवमें एक फ्लेवर है, इसका एक टेस्ट है जो कि तुम्हें मिलेगा कि कैसी सूत्रात्मक वाणी और कैसी भाष्यात्मक वाणी एक ही व्यक्तिकी! अपनेही सूत्रका कैसा सुंदर व्याख्यान करनेमें हमारे वाक्पति आचार्य समर्थ हैं. उसका आनन्द तुमको मिलेगा. अतएव जब आन्तरिक उपायोदेश मैं कह रहा हूं तब विवेकधैर्याश्रियमें से कोई न कोई विवेककी अपेक्षा महाप्रभुजी तुम्हारेसे रख रहे हैं कि यह कि वह विवेकका प्रयोग तुम करो. जबकि विवेकधैर्याश्रियकी तरह नवरत्नग्रंथमें महाप्रभुजीने प्रार्थनाका निषेध नहीं किया.

अतएव अब महाप्रभुजी दूसरे श्लोकमें कहते हैं:

निवेदनन्तु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशैः जनैः।
सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा निजेच्छातः करिष्यति।।२।।

श्लोकान्वय और श्लोकका मानसशास्त्रीय विश्लेषण :

२. (आन्तरिकोपायोपदेश) : **सर्वथा तादृशैः जनैः (साकं) निवेदनं तु (सर्वथा) स्मर्तव्यं** (कर्तस्मृतिविवेक), **सर्वेश्वरः सर्वात्मा** (संप्रदानप्रज्ञाविवेक) च **निजेच्छातः करिष्यति.**

सरल भावानुवादः तादृशीजनोंके साथ हिलमिलकर स्वयं करे हुवे आत्मनिवेदनका स्मरण तो करते ही रहना चाहिये.

बाकी प्रभु स्वयं सर्वेश्वर भी हैं और सर्वात्मा भी हैं अतएव अपनी इच्छानुसार सब कुछ करेंगे.

इस दूसरे श्लोकका अन्वय, मानस विश्लेषण और सरल भावानुवाद हमने देख लिया. इसमें सबसे पहले यह आंतरिक उपायोपदेश हैं उनको देखो. वास्तवमें नवरत्न ग्रंथ सूत्ररूप है और विवेकधैर्याश्रय उसका भाष्य है. इस प्रमाणसे विवेकधैर्याश्रयमें महाप्रभुजीने जो चार विवेक समझाये हैं उन चार विवेकोंमें कोई न कोई एक विवेकको महाप्रभुजी यहां उपायके तौरपर बता रहे हैं. अतएव जब मैं विवेक शब्द प्रयोग करूं तब तुम सावधानीसे इसका मिलान विवेकधैर्याश्रयसे कर लेना. यहांका विवेक वहांका कोई विवेक है. जब मैं धैर्य कहूं तब भी विवेकधैर्याश्रयमें जो चार प्रकारके धैर्य कहनेमें आये हैं उनमेंसे कोई एक प्रकारके धैर्यका उपदेश समझ लेना. उसी प्रकार जब मैं आश्रय कहूं तब भी विवेकधैर्याश्रयमें देखकर आश्रयके चार प्रकार कहनेमें जो आये हैं, उनमें से कौनसा आश्रय यहां महाप्रभुजी उपायक तौर पर बता रहे हैं.

<u>संप्रदानप्रज्ञाविवेक</u> :

यह आन्तरिकोपायोपदेश अर्थात् किसी न किसी विवेकका उपाय महाप्रभुजी बता रहे हैं कि कौनसे विवेक करनेसे तुमको यह चिंता नहीं होगी. इस आत्मनिवेदनके कर्ताके बारेमें किसी प्रकारकी प्रज्ञा प्राप्त होना विवेक है जो विवेकधैर्याश्रयमें वर्णित की गई है. इसके विस्तारमें हम अभी नहीं जा सकते लेकिन कभी फुरसतके समय इसे भी हम देखेंगे.

<u>निवेदनन्तु स्मर्तव्यं (कर्तृस्मृतिविवेक</u>) :

दूसरा ऐसा ही विवेक **सर्वथा तादृशैः जनैः निवेदनं तु स्मर्तव्यं, सर्वेश्वरः सर्वात्मा च निजेच्छातः करिष्यति** शब्दोंमें कहनेमें आया है. अब देखो जो **कापि चिन्ता**के अन्तर्गत कही गई

लौकिक गतिकी चिंता तुमको हो रही है, उस चिंताको दूर करनेकेलिये वाचनिक उपदेश महाप्रभुजी क्या देते हैं? वाचनिक उपदेश महाप्रभुजीने अब यहांसे शुरु किया है. उसे मैंने अन्डरलाईन किया है कि **सर्वथा तादृशैः जनैः (साकं) निवेदनं तु स्मर्तव्यम्.** अर्थात् अपने करे हुवे आत्मनिवेदनको याद करनेसे लौकिक गति होनेके डर अथवा चिंताके ऊपर काबू पाया जा सकता है

पहले जो आर्थिक उपदेश दिया था वह एक अलग बात थी. इसमें सयाना कहने जैसी पद्धति थी. इसमें वाचनिक उपदेश देकर महाप्रभुजी तुमको कह रहे हैं कि तुम्हें अपना जो आत्मनिर्धार न होता हो अथवा जो आत्मनिर्भरता आत्मनिवेदनमें न खिली हो अथवा तो तुम्हारा खुदका जो आत्म-तादात्म्यका बोध अच्छी तरहसे न खिला हो तब ही तो कुछ चिंता करने जैसी बात है. **तादृशैः जनैः निवेदनंमतु स्मर्तव्यम्** इनके साथ बैठकर तुम आत्मनिवेदनकी चर्चा कि चिंतन करो. पहले तुम तुम्हारे मनका परमात्माके साथ आदान प्रदान कर रहे थे अब तादृशी जनके साथ तुम तुम्हारे भाव और विचारोंका लेन-देन शुरु करो. जिस लेन-देनके कारण तुम्हारी फिरसे निवेदनकी स्मृति सुदृढ़ हो जाये.

तुम आत्मनिवेदन करनेके बाद निवेदनका स्वरूप और प्रयोजन भूल गये. कितने सारे वैष्णव मेरे पास आते हैं कि मैं पांच वर्षका था तब ब्रह्मसंबंध लिया था. उसमें क्या तुम्हारे द्वारा देनेमें आया था? तो कहते हैं कि यह तो किस प्रकार याद आये? अच्छा किसने दिया था? तो कहते हैं यह तो मैं कबका भूल गया. क्या देनेमें आया था? तो कहते हैं कि यह भी याद नहीं है. तो अब जब सब कुछ भूल गये तो ऐसी स्थितिमें क्या हो सकता है? **निवेदनं तु स्मर्तव्म्** जिसको आत्मनिवेदनका स्मरण है उनके साथ तुम संगति करोगे, उनके साथ सत्संग करोगे तो वह चिंतन

तुम्हारे निवेदनके संस्कारको फिरसे जागृत कर देगा. अर्थात्
निवेदनं तु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशै: जनै:.

अर्थात् **स्मर्तव्यम्**में कर्तृस्मृतिविवेक है. किसे निवेदन किया था? वह स्वयं निवेदन किया था कि किसी और ने कराया था? जो किया था उसे तू याद कर, तू खुद याद नहीं कर सकता तो किसीकी हेल्प लेकर याद कर, इस कर्तृस्मृतिका यहां विवेक बतानेमें आया है.

सर्वेश्वर: च सर्वात्मा (संप्रदान के बारेमें प्रज्ञा प्राप्तकरनेका विवेक) :

उसके बाद **सर्वेश्वर: सर्वात्मा च** यह संप्रदानकी प्रज्ञाको प्राप्त करानेवाला विवेक है. किसके सामने आत्मनिवेदन किया था? किसी ले भागूको आत्मनिवेदन नहीं किया था! क्या किसी ऐसे शैतानको निवेदन किया था कि जो तुम्हारा शत्रु था कि किसी कारणसे तुम्हारे साथ दुश्मनी मोल ले? नहीं. तुमने निवेदन तो सर्वेश्वर-सर्वात्माको किया है. जो ईश्वर हो वह आत्मा हो यह जरूरी नहीं है. वैसे ही जो आत्मा हो तो वह ईश्वर हो वह भी जरूरी नहीं है. कोई भी परिवार संस्था कि राष्ट्रका प्रमुख स्वयं स्वयंके आधीन परिवार संस्था कि राष्ट्रके अन्दर ईश्वर ही होता है. लेकिन उसका आत्मा होना जरूरी नहीं है. वैसेही परिवार संस्था कि राष्ट्रके आत्मा समान कोई संनिष्ठ व्यक्ति, बहुत बार एक छोटासा मनुष्यही होता है, ईश्वर नहीं. हम पुष्टिप्रभुको केवल ईश्वरके तौरपर ही नहीं मानते लेकिन आत्माके तौरपर भी मानते हैं. और केवल आत्माके तौरपर ही नहीं मानते ईश्वरके तौरपर भी मानते हैं.

पुष्टिप्रभुके साथ हमारे दो प्रकारके रिलेशन्स् हैं. वह पुष्टिप्रभु मेरी स्वयंकी आत्मा है और मेरी स्वयंकी आत्मा होते

हुवे भी मैं स्वयं पुष्टि प्रभु नहीं हूं. गलत अर्थ मत लगाना कि मेरी आत्मा पुष्टिप्रभु हैं अर्थात् मैं स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम सिद्ध हो गया. श्रीकृष्ण ही मेरी आत्मा भी हैं और मेरा परमेश्वर भी है. इन दोनों प्रकारके संबंधोंसे जब हम पुष्टिप्रभुके साथ बंधे हुवे हैं इस प्रज्ञाको जो तुम हमेशाकेलिये जान सको तो तुम्हें विचार आयेगा कि **सर्वं निजेच्छातः भवति**के सिद्धान्तोंका सच्चा मर्म यह **निजेच्छातः करिष्यति** है. और वह विवेकधैर्याश्रयमें उपदिष्ट विवेक ही है. क्योंकि वहां कहनेमें आया है **प्रार्थिते वा ततः किं स्यात्? स्वाम्यभिप्रायसंशयात् सर्वत्र तस्य सर्वं हि सर्वसामर्थ्यमेव च** (विवेकधैर्याश्रय : २) सर्वत्र वह सर्वरूप भी है और सर्वसमर्थ भी है. सर्वरूप होनेके कारण सर्वात्मत्व और सर्वसाम्थ्र्यके कारण सर्वेश्वरत्व. यह विवेक आते ही चिंता करने जैसी कोई बात रह नहीं जाती. फिर फिरकर याद दिला रहा हूं कि यह चिंता दुश्मन, पुत्र, धन, धन्धा, प्रतिष्ठाके बारेमें होती चिंताकेलिये नहीं कह रहा हूं, यह तो आत्मनिवेदनकर्ता ऐसी परेशानीमें स्वयं फंसा हुआ हो तो उसके कारण होती लाकिक गतिकी जो चिंता होती है उसकेलिये ही कहनेमें आ रही है.

उसके बाद आता है तीसरा उपदेश. वह महाप्रभुजी इस प्रकार देते हैं:

सर्वेषां प्रभुसम्बन्धो न प्रत्येकमिति स्थितिः।
अतोऽन्यविनियोगेऽपि चिन्ता का स्वस्य सोऽपि चेत्।।३।।

श्लोकान्वय और श्लोकका मानसशास्त्रीय विश्लेषण :

३. (आन्तरिकोपायोपदेश) : प्रभु सम्बन्धो न प्रत्येकम् (कर्तृकर्मबुद्धिविवेक); अतः *सर्वेषाम् अन्यविनियोगे अपि* **स्वस्य का चिन्ता! इति स्थितिः.**

सरल भावानुवाद: अपनी सकल आत्मीय वस्तु और संबंधीयोंके साथ जीवात्माका एक साथ समग्रतासे प्रभुके साथ संबंध आत्मनिवेदन द्वारा बंधता है, एक एक करके नहीं. इस कारण सबका जो अन्यविनियोग होता हो तो उसमें स्वयंको चिंता करने जैसा कुछ नहीं होना चाहिये. सब कुछ समर्पण करने वालेका कभी अन्यविनियोग होता हो तो उसमें भी चिंता करने जैसी कोई बात नहीं है.

तुम्हारे पास वह कागज हो तो दूसरे पन्नेमें तुम एक दूसरी बात अभी देखो कि दूसरे श्लोकमें तीन और चार आंतरिक उपायोंवाला अन्वय है. अब सुननेवालोंमें कदाचित सबको यह विचार नहीं आये लेकिन जिन लोगोंने डिबेटमें भाग लिया था उनको इस तकलीफका अच्छी तरह विचार आयेगा. ग्रंथोंके स्वाध्यायमें तुम्हें रुचि है तो तुम यह बात अच्छी तरहसे समझोगे कि गुसांईजीने इस क्रमसे यह बात नहीं कही. जिसे मैं चौथा वाक्य कह रहा हूं उसे गुसांईजी तीसरा वाक्य कह रहे हैं. जिसे मैं तीसरा वाक्य कह रहा हूं उसे गुसांईजी चौथा वाक्य कह रहे हैं. मैंने यह गड़बड़ नहीं करी परन्तु यह परिवर्तन मैंने किस कारण किया? इसका एक हेतु तुम स्पष्ट रीतिसे समझ लो.

<u>अपनोंका अन्यविनियोग होता हो तो भी चिंता नहीं करनी</u> :

मेरा अन्यविनियोग कि मेरे गृह कि परिवारका अन्यविनियोग इसमें गुसांईजीने मेरे गृहपरिवारका अन्यविनियोगके कारण चिंता नहीं करनी और प्रभुसंबंध प्रत्येकके साथ नहीं है **सर्वेषां** है ऐसा कहकर अन्यविनियोगकी चिंताका निवारण किया. इसमें **प्रभुसंबंधो न प्रत्येकम्** वाक्यांशके साथ अन्डर लाइन करी है. महाप्रभुजी द्वारा बताया गया यह विवेकका उपाय है. इसकारण ही ऊपर ब्रेकेट्में वह कर्तृ-कर्म-बुद्धि-विवेक अर्थात् निवेदन करनेवाला और निवेदनमें किस किस वस्तुका इसने निवेदन

किया है उसमें किसीभी प्रत्येकका अधिकार नहीं है ऐसे विवेकका उपदेश है.

निवेदनका भान रखो अभिमान नहीं :

तुमने आत्मनिवेदन किया है. इस आत्मनिवेदनमें तुमने जो तुम्हार गृह परिवार इत्यादि सबका निवेदन प्रभुको किया, उस निवेदनके उपरान्त प्रभुमें उनका विनियोग नहीं होता हो और दूसरे कामोंमें विनियोग होता है. इससे निवेदनकर्ताके तौरपर तुम्हारे किसी अहम्को ठेस पहुंचती हो कि मैंने निवेदन किया उसके उपरान्त प्रभु मेरे लड़केस सेवा क्यों नहीं लेते? इसकी बुद्धि क्यों नहीं सुधारते? इसको ऐसी भावना क्यों नहीं देते कि यह प्रभुकी सेवामें प्रवृत्त हो जाये. मैंने निवेदन किया है लेकिन मेरी पत्नीमें यह भावना क्यों नहीं जागती अथवा मैंने निवेदन किया है तो मेरे पतिमें यह भाव क्यों नहीं जागता कि यह मेरे साथ सेवामें लगे, जैसे कि दुकानमें लगा रहता है. यह सब अहंकार होते हैं अपने. उसके लिये विवेकधैर्याश्रयका फिरसे पाठ करो तो तुमको विचार आयेगा कि निवेदनकर्ता होनेका अपना जो अभिमान है उस अभिमानको महाप्रभुजी यहां निवृत्त करना चाह रहे हैं. ऐसा अभिमान मत रखो. तुम निवेदन करो और उस निवेदनका भान रखो लेकिन उसका अभिमान मत रखो. कल भी मैंने तुमको उदाहरण दिया था कि तुमने खानेवालेको पांचदस प्रकारकी सामग्री परोसी है, खानेवालेको जो अच्छा लगेगा वह खायेगा, नहीं अच्छा लगेगा तो नहीं खायेगा. तुम्हारा कर्तव्य एक गृहस्थके तौरपर कब पूरा होता है कि जब तुम्हारे घर कोई खानेके लिये आया हुवा हो तो तुम उसे एकही सामग्री खिलाकर उसे विदा नहीं कर देते, परन्तु जो तुम्हारे घर खानेकेलिये आया है तो तुम उसके लिये दस सामग्री तैयार करो और उत्साहसे दसोंकी दस सामग्री उसकी थालीमें परोस दो. ऐसे नहीं करते कि दो चार परोसकर बाकी सब अपने उपयोगके लिये बचा कर रखो, ऐसा स्वार्थपूर्ण व्यवहार नहीं करते तो

तुम्हारा निवेदन तुम्हारे अतिथिके प्रति ठीक ठाक है. अब निवेदन अच्छी तरह हो गया तो उसके बाद कितना खाना कि नहीं खाना, उसे क्या अच्छा लगता है क्या अच्छा नहीं लगता यह उसके ऊपर तुमको छोड़ देना चाहिये, अगर अभिमान नहीं करते हो तो. भान तुमको इतना सहायक होगा, अभिमान तुमको बाधक होगा. बात तुमको समझमें आयी लेकिन यह बात चौथे वाक्यमें गुसांईजीने कही है, तोसरेमें नहीं कही.

<u>निवेदनके स्वरूपका विचार जरूरी</u> :

तीसरेमें गुसांईजीने जो बात कही है वह यह कि मैंने जो निवेदन किया है तो मेरेसे प्रभु सेवा नहीं लेते और मेरे बच्चे बच्ची सेवामें नहाते हैं. मुझे तो कोई दूसरेही काममें अटके रहना पड़ता है. यहां निवेदनकर्ताक तौरपर अपने अहंको ठेस लगती दिखती है. वहां अपने ममको ठेस लगती है. अहंतामूलक जो ममता है उसे ठेस लगती है. यहां अपनी अहंताको डायरेक्ट ठेस लग रही है तो उसका भी उपाय एक महाप्रभुजी बताते हैं कि –

सर्वेषां प्रभुसम्बन्धो न प्रत्येकमिति स्थितिः।
अतोऽन्यविनियोगेऽपि चिन्ता का स्वस्य सोऽपि चेत्।।

अर्थात् यहां भी इसका उपाय यह बताया कि निवेदनका नेचर तुम अच्छी तरहसे समझ सको. टीकाकारोंने यहां बहुत अच्छी तरहसे विवेचना करी है. कोई भी आत्मनिवेदन करनेवाला, आत्मनिवेदन करनेसे पहले अपनी मुख्यताका अनुभव न करे तो आत्मनिवेदन कर ही नहीं सकता. मुझे आत्मनिवेदन करना है, आत्मनिवेदनमें मैं प्रभुको क्या कहता हूं कि मेरा देह, मेरा परिवार, मेरा धन, मेरे मित्र, मेरे जो भी सगे सम्बंधी हैं उन सबका निवेदन करता हूं. जैसे कोई सर्वानुमतिसे प्रस्ताव पास किया जा रहा हो और उसमें कोई हाथ उठाकर विरोध प्रकट करे कि मेरा निवेदन मत करना, तो क्या करना? प्रभुको

ऐसे कहना कि प्रभु मैं मेरा सर्वस्व तुमको निवेदन करता हूं लेकिन एकको छोड़कर. सरदारजीके लिये जैसा कहा जाता है कि **कोना छोड़कर भाईयों और बहिनों.** ऐसे एकको छोड़कर सबका निवेदन करता हूं. अब एक बार हम ऐसा चान्स दें तो ऐसे दस चीजें पीछेसे छूट जायेंगी. यह कहेंगे कि मेरा भी निवेदन मत करना, बेकारके लफड़ेमें मुझे क्यों फंसा रहे हो. ऐसे पांच दस लोग इक्कठे हो जायें तो सबही कहने लगेंगे. किसने कहा तुमको मेरा निवेदन करनेकेलिये? तुम्हें अपना निवेदन करना हो तो करो, मरना हो तो मरो, जीना हो जीओ, मेरा निवेदन क्यों कर रहे हो? ऐसे एक एक जन विरोध प्रकट करता जाये तो मुसीबत हो गई ना! निवेदनका समय ही नहीं आयेगा. हमें पहले अखबारमें एक सार्वजनिक सूचना देनी पड़ेगी कि अमुक दिन, अमुक तारीखको अमुक महाराजके ठाकुरजीके सन्मुख मैं आत्मनिवेदन करने जा रहा हूं. अतएव सूचना दी जाती है कि इस आत्मनिवेदनमें मैं मेरे सगे सम्बन्धी हरेकका निवेदन करूंगा. जिसे विरोध करना हो तो वह अमुक तारीखसे पहले अपना विरोध लिखवा दे नहीं तो फिर उसका विरोध मान्य नहीं किया जायेगा.

अगर ऐसे ब्रह्मसम्बन्ध लेना हो तो कहीं पार पड़ेगा? महाराज तो किसी भी समय गाममें आ जायेंगे. व्रतभी नहीं कराते और ब्रह्मसम्बन्ध दे देंगे. आज ब्रह्मसम्बन्ध ले लो कल व्रत कर लेना. इसमें इतना अधिक औफिशियल कदम लेने जायें तो तो **वो दिन कहां के मियांके पैरमें जूती.** सब पैर पटकते रह जायेंगे ब्रह्मसम्बन्धसे. अतएव इतना अधिक कुछ औफिशियल कदम तो अपनने लेना नहीं होता ब्रह्मसम्बन्धके समय. यहां तो फटाफट काम होता है. अतएव एक बात ध्यानसे समझो कि आत्मनिवेदन करनेसे पहले हमें किसीकी जरूरत है कि किसीका विरोध है कि नहीं? हमें ऐसा समझना चाहिये कि मेरे जो कुछ

संबंध हैं उनका सर्वेसर्वा मैं हूं. अतएव निवेदन करनेसे पहले अपनी प्रधानता है और है ही!

पुराने जमानेमें जब दो देशोंके बीचमें झगड़ा अथवा युद्ध होता था तब एक देशका राजा युद्धमें हार जाता था तो उस सरेन्डर करना पड़ता था. जब तलक सरेन्डर नहीं होता था वहां तलक वह उस देशका राजा, और जिस क्षण उसने विजेता राजाके आगे सरेन्डर कर दिया तदुपरान्त वह अपने देशका राजा न रह कर प्रजा बन जाता था. अब जिसके सामने सरेन्डर किया वह उस देशका राजा बन जाता था.

हम सब जानते हैं कि हिन्दुस्तानमें कितने सारे स्टेटस् थे. वल्लभभाईने सबको सरेन्डर करा दिया. अब यह सब राजा लोग क्या हो गये? प्रजा हो गये. बादमें तो इनकी सालाना पेन्शनभी बंद कर दी गई तो भी सुप्रीमकोर्टने उनकी शिकायत नहीं सुनी. कितने नीचेके दरजेके यह प्रजा हो गये. हमारा कोई नुक्सान होता है तो कोर्ट हमको सरकारसे कौम्पनसेशन दिलाती है. लेकिन राजाओंको कुछ भी कम्पेन्सेशन नहीं मिला. सुप्रीमकोर्ट ने ना कर दी. क्योंकि सरकारको अधिकार है तुम्हें सालाना पेन्शन दे कि नहीं? लोग दलील देने लगे कि राजा लोग क्यों नहीं धंधा करते किस कारण सालाना पेन्शनके ऊपर निर्भर हैं? यह राजा लोग बिचारे कहते थे कि हमने सारा राज्य दे दिया तो उसकी सालाना पेन्शन मिलती है भीख नहीं. कॉंग्रेसी लोग कहते थे **दिया होगा, किस कारण दिया? नहीं देते?** राज्य देनेके बाद तुम इस प्रकारकी मांग नही कर सकते. जब सरेन्डर कर दिया तो उसके बाद तुम राजा नहीं रह गये. अब कहनेके लिये कोई अपनेको भूतपूर्व राजा लिखे, ऐक्स रूलर लिखे लेकिन ऐक्सका तात्पर्य जो कि अंग्रेजीमें नहीं है कि समाप्त हो गया वैसा होता है. जैसे ऐक्सपार्टी जो मनुष्य चला गया हो अथवा उपस्थित

न हो वह. ऐक्स रूलर लिखो तो इसका मतलब यह कि हम तुम्हारे कोई राजा नहीं है.

निवेदन करनेसे पहले इसका जो कुछ भी राजापना है लेकिन निवेदन करनेके बाद जैसे राजा सरेन्डर हो जाता है और उसका राजापना नहीं रह जाता है वैसे निवेदनका भी अपना जो कुछ गृह-परिवार जो वस्तु कि जो व्यक्ति है उसके ऊपर अपना राजापना नहीं रह जाता. इस प्रकार निवेदन करनेके बाद परमात्माके पास हम सब निवेदित ही हैं. इसमें न तो है कोई निवेदक और न ही कोई निवेदित. लेकिन निवेदन करनेके समय एक निवेदक और दूसरा निवेदनीय हो सकता है. तुलसीदल हाथमें लेकर निवेदनकी क्रिया करनेवाला व्यक्ति निवेदक होता है. और इस निवेदनमें जो गृह-परिवारको निवेदित करे वह निवेदनीय वस्तु हैं. निवेदन अर्थात् ठोस शब्दोंमें समझो कि तुलसीदल हाथमें लेकर जो शपथ तुम प्रभुके सन्मुख लेते हो यह तुलसीदल प्रभुके चरणोंमें समर्पनेमें आती है अर्थात् तुम्हारा यह शपथका कार्यक्रम पूरा हो गया. प्रभुने तुलसीदल चरणमें एक्सेप्ट करी इसका मतलब कि तुम्हारी निवेदनकी प्रक्रिया पूरी हुई और प्रभुने तुम्हारा निवेदन स्वीकार लिया. अब निवेदन स्वीकारने के बाद तुम निवेदक नहीं रह गये और न कोई निवेदनोय ही रह गया. तुम सब निवेदितात्मा हो गये. यह कर्तृ-कर्म-बुद्धिका विवेक अपने लोगोंका अन्यविनियोगके बारेमें लागू पड़ता है.

प्रभुको आत्मनिवेदन करनेके बाद हम हमारे संबंधोंके राजा नहीं रह गये, निवेदन नहीं किया था वहां तलक तो हम राजा थे. मेरा मेरी पत्नीके साथ जो संबंध है उसका मैं राजा, पत्नि नहीं. यह कोई मैं पुरुषप्रधानताकी बात नहीं कह रहा, पत्नीका मेरे साथ जो संबंध है उसकी पत्नि राजा, मैं नहीं. मेरा मेरी संततिके साथ जो संबंध है उसका मैं राजा मेरी संतति

राजा नहीं. लेकिन मेरी संततिका मेरे साथ जो संबंध है उसका राजा मैं नहीं परन्तु मेरी संतति राजा.

<u>निवेदन अपने संबंधोंका होता है</u> :

डिबेटमें जो आपने सुना उसकी मुझे बहुत खुशी हुई. हमारे संबंधोंका हम समर्पण करते हैं, अपने व्यक्तिका समर्पण नहीं करते. व्यक्तिका समर्पण करें तो औब्जेक्शन हो सकता है. हमारे संबंधोंका हम समर्पण करें तो इसमें कोई औब्जेक्शन नहीं ले सकता. मैं मेरे संबंधोंको समर्पित कर रहा हूं. किसी व्यक्तिको समर्पित करूं तो विरोध प्रकट करना वाजिव हो सकता है. घरको विरोध प्रकट करनेकी सामर्थ्य हो कि न हो, घर भी राजा नहीं रह जाता. यह विरोध प्रकट करना घरकी सामर्थ्य, मैं देहधारी कि मनोधारी अर्थमें नहीं कह रहा कानूनके हिसाबसे कह रहा हूं. उदाहरणके लिये मैं एक किरायेके घरमें रहता हूं. मकानमालिक मेरेसे किराया लेता है मेरे रहनेका, मैं इसे किराया देता हूं. जितनी जगहका किराया देता हूं उतनी जगहका मैं किरायेका मालिक हूं. वास्तविक मालिक नहीं. मैं जब आत्मनिवेदन करूं तब मेरा यह किरायेका मालिकाना हक मैं प्रभुको आत्मनिवेदनके समय निवेदन कर सकता हूं. अब जो मेरेमें ऐसी भ्रमणा भर जाये कि अब तो मकान मालिकके इस जंजालसे छूट गया, अब मैं किस कारण किराया दूं? मैंने तो प्रभुको निवेदन कर दिया है, और प्रभु फ्लेटमें रह ही रहे हैं. जाओ टिल्लिलीली! ऐसा किसी दिन कोर्टमें कोई जज मानेगा क्या? मकानमालिक कोर्टमें जाये कि किराया नहीं देता. तो तुम कहो **ना ना मैंने तो सब कुछ प्रभुको आत्मनिवेदनमें सौंप दिया! क्योंकि गद्यमंत्रमें आगार शब्द था कि नहीं! हमारा धर्म ऐसा बताता है कि ब्रह्मसंबंध लेनेके बाद मकानमालिकको मकानमालिक नहीं मानना, प्रभुको मालिक मानना.** फिर तो बिचारी कोर्टभी क्या करेगी? जजको अपनी कोर्टमें अविश्वास हो जायेगा कि यह कोर्ट है कि पागलखाना! ऐसा मुद्दा मेरे पास

चर्चाकेलिये आया ही कैसे? अतएव तुम्हारी ऐसी बातें कोर्टमें नहीं चलेगी. तुमने ब्रह्मसंबंध लेकर भगवानको घर अर्पण कर दिया उससे मकानमालिकका मालिकाना हक खत्म नहीं हो जाता. तुम्हारा संबंधही तुम निवेदित कर सकते हो. अतएव घरको भी कोई कानूनी औब्जेक्शन हो तो तुम्हारे निवेदनमें, तो घरभी विरोध प्रकट कर सकता है. लेकिन यह घर किस कारण प्रकट नहीं करता क्योंकि ऐसा दावा तुम करते नहीं. एक बार ऐसा दावा करो तो फिर मकानमालिक तुमको नोटिस देगा कि **ब्रह्मसंबंध लेना हो तो इसके तीन महीने पहले हमें बताना पड़ेगा. और तीन महीने पहले मैं घर खाली करा लूंगा. फिर तुमको ब्रह्मसंबंध लेना हो तो ले लेना. यहां तुम्हें रहनेकेलिये घर देनेमें आ रहा है, निवेदन करनेकेलिये नहीं दिया जा रहा. रेन्ट एग्रीमेन्टमें फिर यह लिखा मिलेगा तुम्हें कि कृपा करके इस रेन्ट एग्रीमेन्टका गलत उपयोग ब्रह्मसंबंध लेते समय नहीं करना.** क्योंकि हमारे घरका भी कोई कानूनी बंधन हो तो घर भी विरोध प्रकट कर सकता है. लेकिन यह प्रकट नहीं करता उसका मूल कारण यह ही है कि घरके कायदोंका जो विरोध सकता है उसके औपोजिशनमें निवेदन करा ही नहीं जा रहा. अतएव मकानमालिक घर खाली कराये तो हमें खाली भी करना ही पड़ेगा. और तब हमारे माथे बिराजते ठाकुरजीको भी खाली करना पड़ेगा.

हम ऐसा भी नहीं कह सकते **अरे पागल! यह ब्रह्मांडका नायक है और तू इसे नोटिस कैसे दे सकता है?** यह मकानमालिक घबड़ा जायेगा कि यह कैसा धर्म प्रकट हो गया? मैंने तो तुम्हें किरायेदार समझा था, मैंने तुमको घर किराये पर दिया और तुम कह रहे हो कि ब्रह्मांडनायकसे कैसे खाली कराया जाय? अरे, ब्रह्मांडनायकके साथ मेरा क्या लेना देना? मेरे यहां तो रेन्टएग्रीमेंटमें ब्रह्मांडनायकका नाम नहीं है तुम्हारा नाम है. यह तो ऐसे ही कहेगा कि नहीं? अतएव ब्रह्मांडनायकका

ब्रह्मांडनायकपना इस बारेमें काम नहीं आयेगा. ब्रह्मांडनायकको तुम पूछने जाओगे ना तो वह भी ऐसे ही कहेगा कि **तुम्हारा फ्लेट छोड़कर ब्रह्मांडका नायक हूं.** वह यह नहीं कहेगा कि तुम्हारे ही फ्लेटका नायक हूं. यह बात तुम्हें स्पष्ट रीतिसे समझ लेनी चाहिये.

यह सब बारीकियां हम समझते नहीं हैं. ब्रह्मसंबंध ले लिया, ब्रह्मसंबंध दे दिया, और कुछ पता ही नहीं होता कि क्या हो रहा है और क्या नहीं हो रहा. अरे! समझो तो सही कि गाड़ी कहां जा रहीं है, कौनसी गाड़ीमें बैठे हो. अतएव जो हम निवेदन करते हैं वह अपना संबंध निवेदन करते हैं. वस्तु कि व्यक्तिका तो समर्पण करते हैं ना कि निवेदन. अर्थात् हम जो कुछ भी प्रयोग कर रहे हैं जिस किसी वस्तुको नियमानुसार रीति से प्रयोग करनेका हमें है उसे ही हम अपने प्रभुको भी समर्पित करेंगे, उसी प्रकार विनियोग करेंगे .

फिरसे एक अलग प्रकारके विवेकका यहां उपदेश है. किसी प्रकारका आर्थिक उपदेश देनेमें आया है. आर्थिक उपदेश अर्थात् क्या? कि **प्रभवतीति प्रभुः** जो समर्थ होता है उसे प्रभु कहते हैं. जो स्वयंको सब प्रकारोंमें ढालनेमें समर्थ न हो उसे पभु नहीं कहते. मोटे तौरपर हमें क्या प्रोब्लम हो जाती है कि हम किसी प्रकारका अभिमानतो मानलेते हैं कि मैं आत्मनिवेदी हूं, मैं पुष्टिमार्गीय हूं. लेकिन इस अभिमानको हम जी नहीं सकते. क्योंकि कोई न कोई परिस्थिति ऐसी आ जाती है कि वह हमारे अभिमानको तितर बितर कर देती है. अतएव हमको अपने अभिमानके साथ कुछ छूट लेनी ही पड़ेगी.

अभी मैंने एक बहुत अच्छा लेख पढ़ा था. यहां की बात नहीं है अमेरीकाकी बात है. कोई एक स्त्री जो अपने स्वयंके रूपवती होनेके बारेमें बहुत आश्वस्त थी, अपने यहांकी

परिभाषामें रूपगर्विता-नायिका थी. तो इसे संध्या समयके कामकाजके बाद कहीं डिनरमें जाना था. अब दफ्तरमें से निकले तो सबका हाल-बेहाल होता है, अतएव घर पहुंचकर मेकअप करके हेयर स्टाईल करके फिर डिनरमें जाना था. अतएव यह बहुत तेज कार चला रही थी. वहां कोई सिगनल तोड़नेका अपराध हो गया. तो वहांसे पुलिस इसके पीछे पड़ी. अर्थात् इसकी गाड़ीके पीछे पीछे पुलिसकी लाल लाईटकी चमचमाहट चालू हो गई. लेकिन यह तो गाड़ी ड्राईव करती ही रही. अब पुलिस भी घबरा गई कि क्यों बेकार गाड़ी चला रही है. पुलिसने ओवरटेक करके उसे रोककर पूछा बैक मिररमें लाल बत्ती नहीं दिखती क्या? उस स्त्रीने कहा **तुम भी कैसी बात कर रहे हो? इतनी देर दफ्तरमें काम करनेके बाद थोड़े बाल तो बिखर ही जाते हैं, घरमें जाकर संवार लूंगी. लेकिन कार ड्राईव करते समय शीशेमें कहां बाल बाने बैठूं.** अभिमान रखा हुआ था कि मैं रूपवती हूं, मेरे बाल ठीक ठाक ढंगसे सेट रहने चाहियें. पहले तो लालबत्तीका सिगनल नहीं समझती और फिर पूछनेपर भी समझती नहीं. इसे याद दिलाओ तो भी याद नहीं आती. ऐसा ही समझती है कि हां ये तो दफ्तरमें इतनी देर कामकरनेके बाद तो बाल बिखरही जाते हैं न. इसमें शीशा देखनेकी क्या जरूरत है? घर जाकर देख लूंगी. गलत जल्दबाजी क्यों करते हो? अरे भाई! मुद्दा यह नहीं है, तू गलत ढंगसे कार चला रही है, पीछे आती ट्रैफिक पुलिसकी गाड़ीके सिगनलको देखनेके लिये कारके बैक मिररको क्यों नहीं देख रही? ऐसे ही हम बहुत सारे अभिमानोंको मान लेते हैं कि मैं आत्मनिवेदी हूं, मैं कालकर्मातीत पुष्टिमार्गीय हूं. और फिर ऐसे अभिमान बादमें जीते नहीं हैं. सरकारी टेक्सेशनके कायदोंके चुंगलसे बचनेकेलिये अपने सेव्य स्वरूप पुष्टिप्रभुको भी अपना माननेके स्थानपर सार्वजनिक कि सरकारी मन्दिरोंमें बिराजती मूर्तिके तौरपर स्वीकार लेते हैं.

परमात्मा ऐसा नहीं है यह तो प्रभु है. तुम परमात्माकेलिये जैसा भाव रखो तो भी उस रूपमें प्रकट होनेकेलिये समर्थ है. और यह तुम्हारे प्रति जो भाव रखे वैसा भी रूप धरनेकेलिये समर्थ है. इस अर्थमें परमात्मा प्रभु होनेके कारण जो तुम यह भाव रखोगे मनमें कि **प्रभुसम्बन्धः**. तुमने जो करा है तो वह वैसा होनेमें समर्थ है परन्तु बादमें तुम्हें केवल तुम्हारे लिये उसके सेव्य होनेका भाव रखना पड़ेगा. वह निभता नहीं है तो महाप्रभुजी कहते हैं कि ऐसा गलत अभिमान रखना ही नहीं. **अभिमानः च सन्त्याज्यः स्वाम्यधीनत्वभावनात्** (विवेकधैर्याश्रय : ३) स्वामीकी सेवामें तो बहुत कुछ जुड़े हुवे होते हैं उनमेंसे किसके पास क्या काम कराना यह तो उसकी स्वतन्त्र इच्छाके ऊपर निर्भर है.

हम किसी के साथ संबंध जोड़ें, डाक्टरके साथ संबंध जोड़े कि बहुत बीमार पड़ गये हैं .. मुझे एक बार ऐसा हुवा. रातको सुपारी खाकर सो गया. सुबह दांतमें दर्द होना शुरु हो गया. मैं डाक्टरके पास गया, डाक्टरने मुझे कहा कि तुम्हारे सारे दांत सड़ गये हैं. निकालने पड़ेंगे, मैं तो घबरा गया. मैंने कहा कि मरा, एक सुपारी क्या खाई कि लेनेके देने पड़ गये. बादमें रघुनाथलालजी दादाभाईके पास गया. दादाभाईने कहा कि निकलवाना ही नहीं, क्योंकि एक एक दांतके निकालवानेके अस्सी कि सौ रूपया, तो सब दांत निकालवानेके कितने? इसके बाद दादाभाईने मुझे एक मंजन दिया कि यह मंजन करो, रोग मिट जायेगा. वास्तवमें रोग मिट गया और आज तलक दांत नहीं निकलवाये. तो हम किसीको डाक्टरके पास डाक्टर समझ कर जायें लेकिन यह डाक्टर किस बातका प्रभु है यह पता नहीं चले और सारे दांत निकाल डाले, इलाज करनेके बजाय. **रोयंगे हम हजार बार कोई हमें रुलाये क्यों**? किसी न किसी दिन यह दांत गिरेंगे तो सही यह मुझे पक्का पता है लेकिन कभी तो

गिरेंगे अतएव आज ही तू उन्हें निकाल डाल यह तो नहीं भायेगा ना!

तो प्रभु ऐसे नहीं हैं कि तुम डाक्टरके पास दांतोंका इलाज कराने जाओ और वह इलाज करनेके बजाय सारे दांत ही निकाल डाले. प्रभु हैं, तुम जैसा भाव रख कर जाओगे वैसा स्वरूप धारण करनेमें वह समर्थ हैं, और तुम्हारे प्रति जैसा भाव रखते हैं वैसा रूप भी धारण करनेमें समर्थ हैं. अतएव प्रभु शब्दमें बहुत मीठा एक आर्थिक उपदेश महाप्रभुजीने दिया है कि तुमने संबंध किसके साथ जोड़ा है? प्रभुके साथ. जो रूप चाहे वह ले सके उसके साथ. किसी भी संबंधको निभानेमें तुम्हें जो कठिनाई आ रही है वैसी कठिनाई उसको नहीं आती. हमारा कृष्ण इस बारेमें प्रत्यक्ष प्रमाण है कि तुम्हें पढ़ना हो तो इसे गीता भी आती है. तुम्हें पढ़ाना हो तो सान्दीपनीके आश्रममें एडमिट होनेकेलिय तैयार है. तुम्हें पिटाई करनी है तो यशोदासे मार खानेकेलिये भी तैयार है. मरना हो तो मारनेकेलिये तैयार है. कंसकी तरह जीना हो तो डरा भी सकता है और अगर डराना हो तो स्वयं रणछोड़राय बनकर इसे भागना भी आता है. तुम तय करो कि तुम्हें क्या करना है? जो तुम्हें करना है तदानुसार रूप धारण करनेको प्रभु तैयार हैं.

सर्वेषां प्रभुसम्बन्धो हरेकके साथ संबंध निभानेमें कुछ परेशानी हो सकती है. लेकिन किसी भी प्रकारका संबंध निभानेमें कृष्णको कभी भी कोई परेशानी नहीं होती. अर्थात् हम जानते हैं बालीने जब रामचंद्रजीको कहा **मैं बैरी सुग्रीव पियारा. कारण कवन नाथ मोहि मारा.** भगवानने कहा **ले ना तू मेरे पैरमें तीर मारले. इसमें मुझे कुछ परेशानी नहीं है.** किसीकी ताकत है ऐसा कहनेकी? नहीं, कृष्ण जो सर्वज्ञ है वह सान्दीपनीके यहां पढ़नेकेलिये जा सकता है, है किसीकी ऐसी ताकत? जिस कृष्णने कितनों ही को भगाया वह स्वयं भाग जाय,

रणछोड़रायकी जय करा कर. इतनी ताकत इसमें है. इसी कारण हम इसे प्रभु कहते हैं. प्रभुके साथ संबंध बांधा है तुमने, तुम्हें अगर भागना है तो यह भागनेमें भी तुम्हारा साथ देगा. लड़ना है तो लड़नेमें भी साथ देगा. अर्जुन भागूं कि लडूं ऐसी किमकर्तव्य विमूढ़ावस्थामें था तब कृष्णने कहा **नहीं! लड़, मैं तुझे भागने नहीं दूंगा.** लेकिन वास्तवमें तुम्हारी भागनेकी वृत्ति है तो भागेगा तुम्हारे साथ. ऐसा कुछ नहीं है कि भगवान् तुम्हारे साथ भाग नहीं सकता.

हमारे पुष्टिमार्गका इतिहास इस बारेमें प्रमाण है कि औरंगजेबके सामने जब हम लड़नेके लिये समर्थ नहीं रहे तो हम श्रीनाथजीको लेकर भाग गये. तो श्रीनाथजी भागे कि नहीं हमारे साथ? उसके पहले भी **भावत तोहे टोंडको घनो, कांटा लागे गोखरु लागे फाट्यो जात तनो**क प्रसंगमें भी भागे कि नहीं भैंसेके ऊपर चढ़कर श्रीनाथजी? तो यह भाग भी सकता है, भगा भी सकता है. हरेक प्रकारका संबंध निभा सकता है. तुम तय करो कि तुम्हें क्या करना है? प्रभु तुम्हारे हाथमें आये हैं, जो संबंध तुम बांधोगे वैसा संबंध तुम्हारे साथ बांधनेको तैयार है. भगवानको कोई पति कहता है तो कोई पिता. तो पति कहना कि पिता? अरे तुम तय करो ना? तुम इसके बच्चे हो तो यह तुम्हारा पिता है. तुम इसकी पत्नी हो तो यह तुम्हारा पति है. तुम इसके दोस्त हो तो यह तुम्हारा दोस्त है. तुम इसके गुरु हो तो यह तम्हारा शिष्य है. तुम इसके शिष्य हो तो यह तुम्हारा गुरु है. तुम इसके शरीर हो तो यह तुम्हारी आत्मा है लेकिन तुम अगर आत्मा हो तो यह तुम्हारा परमात्मा है.

भक्तिके संबंधसे हम कृष्णकी आत्मा बन सकते हैं :

एक बार भूले चूके भक्तिको खिला कर देखो तो कदाचित परमात्मा कृष्ण भी ऐसे कह सकता है कि वास्तवमें मेरी आत्मा तो मेरा भक्त है. अर्थात् तुम कृष्णके परमात्मा हो

सकते हो. यह बात कभी भी भूल मत जाना. कृष्णके परमात्मा बन सकते हो तुम. एक बार ऐसे संबंधसे जुड़कर देखो कि कृष्ण तुम्हारी आत्मा और तुम कृष्णकी परमात्मा, कृष्ण तुम्हारा सर्जनहार और तुम कृष्णके सर्जनहार बन सकते हो. क्योंकि **सर्वेषां प्रभुसम्बन्धो** जितनी वेराइटी **सर्वेषां** द्वारा कहनेमें आती हैं उन सबही वेराइटीको ग्रहण करनेवाला ऐसा मल्टीफेसेट, मल्टीडायमेन्शनल फिनोमिना कि पर्सन है.

किस संबंधको यह निभा नहीं सकता? **सर्वेषां प्रभुसम्बंधो न प्रत्येकम्.** प्रत्येक अर्थात् तुम ऐसा सोचकर कैसे बैठ गये कि तुमने निवेदन किया अर्थात् तुम्हारा निवेदनही मुख्य है. किसी दूसरेका यह अंगीकार नहीं करेगा? अरे तुम मुख्य हो तो वह दूसरेको मुख्य बना सकता है. तुम गौण हो तो तुमका मुख्य बना सकेगा. यह प्रत्येकके साथ नहीं सबके साथ बंधने बांधनेकेलिये समर्थ है: **मल्लानाम् अशनिः, नृणां नरवरः, स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्, गोपानां स्वजनो, असतां क्षितिभुजां शास्ता, स्वपित्रोः शिशुः, मृत्युः भोजपतेः, विराड् अविदुषां, तत्त्वं परं योगिनां, वृष्णीनां परदेवता.....**(भागवत पुराण १०/४३/१७)

सर्वेषां प्रभुसम्बंधः किस प्रकार यह समझमें आया कि नहीं?

<u>**प्रभुकी प्रभुतामें विरोधाभास नहीं है**</u> :

कंसके मल्लयुद्धके अखाड़ेमें वास्तवमें किसने तूफान मचाया इस बारेमें इन्क्वारी कमीशन बैठे और साक्षीके तौरपर लोगोंको बुलाया गया होता तो हरेककी बातोंमें विरोधाभास छलकता मिलता! कोई कहता **वज्र जैसा कोई पहलवान आया था** तो दूसरा कहता **ना ना कोई श्रेष्ठ पुरुष आया था.** स्त्रीयोंकी गवाही लेने जाते तो मिलता **कोई कामदेव आया था.** इसके साथ जो वहां गोपबालक थे उनसे पूछा जाता तो वह बताते **हमारा साथी वहां गया था.** कंसको पूछा जाता तो वह

कहता **मृत्युरूपी अतिशय भयंकर पुरुष आया था.** जनसाधारण कहते **ना जाने कौन आया था** अथवा तो ऐसे भी कहते **कितना सुंदर कोमल बालक लोहूके कपड़ोमें कैसा खराब लग रहा था.** योगीजन कहते **साक्षात् परमतत्व मूर्तिमान होकर प्रकट हो गया.** सारे वृष्णि जो वहां विद्यमान थे **उनके अनुसार तो साक्षात् देवाधिदेव ही दर्शन दे रहे थे.** वास्तवमें सारी रिर्पोट अन-रिलायेबल ही हो जायेगी! लेकिन यह कोन्ट्राडिक्शन हमारी इस छोटी खोपड़ीके कारण है. महाप्रभुजी कह रहे हैं कि प्रभुकी प्रभुताके बारेमें कोन्ट्राडिक्शन नहीं है. यह तो प्रभुके स्वरूपको श्रृंगारित करनेकी प्रभुकी सामर्थ्य ही है. विरुद्धधर्माश्रय होनेके कारण **नहि विरोधः उभयं भगवति अपरिगणितगुणगणे ईश्वरे अनवगाह्यमाहात्म्ये... वादिनां विवादानवसरे!** (भागवत पुराण ६/९/३६)

तो इसमें किसी प्रकारका कोन्ट्राडिक्शन नहीं है. इसमें तो सब रूप-गुण-धर्म परस्पर विरुद्ध होते हुये भी ऐसे ही रहते हैं. इसके अतिरिक्त इसमें एक और खास बात समझनेकी है कि जब तुम्हारे परिवारके लोगोंका अन्य विनियोग हो रहा है किसी भी कारणसे, तो इसमें दो सम्भावनायें हो सकती हैं: एक सम्भावना यह हो सकती है कि यह बिचारा तुम्हारे साथ सेवामें जुड़ना चाहता हो लेकिन किसी कारणवश नहीं जुड़ सकता. कोई भी सामाजिक कि पारिवारिक जिम्मेदारी इसके ऊपर हो सकती है. दूसरी सम्भावना यह भी हो सकती है कि यह तुम्हारे साथ जुड़ना नहीं चाहता. क्योंकि यह ऐसा समझता है कि निवेदन तुमने किया है तो ठाकुरजीकी सेवा करना यह तुम्हारा कर्तव्य है. मैंने तो निवेदन नहीं किया. तो मेरे गलेमें किस कारण जबरदस्ती घंटी बांध रहे हो? एक ऐसा भी अभिगम इन लोगोंका हो सकता है. इन दोनों अभिगमोंमें महाप्रभुजीके सिद्धान्तके अनुसार अगर तुम इनसे जबरदस्ती ठाकुरजीकी सेवा लेते हो तो यह अनुचित बात है. महाप्रभुजीने निबंधमें इस बातको खोला है.

<u>पांच प्रकारके प्रतिबंधोंमें सेवा छोड़ देनी चाहिये</u> :

विक्षेपाद् अथवा अशक्त्या प्रतिबन्धादपि क्वचित्। अत्याग्रहप्रवेशे वा परपीडादिसम्भवे.. पूजा त्यक्तव्या।। (त.दी. नि.प्र. २/२४७)

(१) विक्षेप अर्थात् आन्तरिक.
(२) अशक्ति अर्थात् शारीरिक.
(३) प्रतिबन्ध अर्थात् पारिवारिक.
(४) अत्याग्रह अर्थात् आहंकारिक.
(५) परपीड़ा अर्थात् मामकारिक.

ऐसे यह पांच परिस्थितियां महाप्रभ्ज़ीने सेवा-पूजामें प्रतिबंधरूपमें बताई हैं.

(१) **विक्षेप** अर्थात् किसी मानसिक कारणसे सेवा-पूजामें निरंतर मनोविक्षेप रहना अर्थात् प्रतिबंध होना. (२) **अशक्ति** अर्थात् किसी प्रकारकी बीमारी कि अतिवार्धक्यके कारण होता शारीरिक प्रतिबंध. (३) **प्रतिबंध** अर्थात् परिवारमें कोई हमें रोकना चाहे कि सेवाकी मुसीबत घरमें मत घुसाओ बहुत मुसीबत खड़ी हो जायेगी. घरकी सारी शान्ति भंग हो जायेगी. अगर सेवाका क्रम यहां चालू करोगे तो वह हमको रास नहीं आयेगा. यह **प्रतिबन्धादपि क्वचित** कहलाता है. (४) **अत्याग्रह** अर्थात् तुम्हारे मनमें किसी प्रकारका अहंकार घुस गया हो कि नहीं इतना नेग तो धरना ही है. यह पलना तो झुलाना ही है, हिंडोला आ गया तो केसरका हिंडोला तो करना ही है. अब नहीं होता तो किसीकी जेब काटकर करो, किसीकी चापलूसी करके करो, अखबारमें विज्ञापन देकर करो. यह सब अत्याग्रह धंधेके रूपमें चलती हवेलिओंमें घर कर जाती हैं. इसके सन्दर्भमें महाप्रभुजी कह रहे हैं कि ऐसे मनोरथ करनेसे पहले सेवा छोड़ दो भाई साहब! इस अध्यायको बंद करो, यह अध्याय चालू रखने

जैसा नहीं है. **अत्याग्रहप्रवेशे त्यक्तव्या.** तुम्हारा कोई अहंकार तुम्हें प्रभुकी सेवा करनेमें आड़े आ रहा है. तुमने एक गलत अहंकार सोच लिया है कि **यह तो मुझे करना ही है, ऐसे तो करना ही है.** अब किस प्रकार? या तो भिखारीपना करके या फिर व्यापारिक तरीकेसे. ऐसा अहंकार क्यों नहीं छोड़ देते? छोड़ दो क्योंकि तुमसे सहज रीतिसे सेवा नहीं निभ रही. ऐसा अहंकार तुम्हें सताता हो और तुमसे ऐसा अहंकार छूटता भी नहीं हो तो श्रीकृष्णके सेव्यस्वरूपको छोड़ दो. महाप्रभुजी कहते हैं कि तुम सुखी रहोगे. ऐसे अहंकारके साथ कृष्णको पकड़ोगे तो कृष्ण भी दु:खी होंगे और तुम भी दु:खी होगे. (५) **परपीड़ा** अर्थात् जिन्हें मैंने अपना मान लिया है वह सेवा क्यों नहीं करते? अर्थात् जबरदस्ती सेवा करानी. अरे किसीने सेवा नहीं करनी तो जबरदस्ती सेवा क्यों कराते हो? पीछे ही पड़ जाना, खून चूस लेना जोंक बन कर, किसने तुमको यह छूट दी है? तुम किसीको अपना मानते हो तो अर्थात् जबरदस्ती सेवा कराओ, यह तुम्हारी ममताका कोई बड़ा अतिरेक ही है जो सेवामें आड़े आ रही है. अर्थात् यह मामकारिक समस्या प्रतिबंध है. तुम्हारा ममकार तुम्हें सेवा करनेमें कठिनाई खड़ी कर रहा है. तुम्हारी सेवाके कारण कोई कष्ट पाता हो, सेवामें आनन्द नहीं ले पा रहा, बाबजूद इसके तुम सेवा करवानेका दुराग्रह रखते हो... तुम अपने लड़केके कि अपनी पत्नीके कि अपने भाईके कि अपने पिताके कि पतिके पीछे पड़ जाओ कि **मैंने सेवा पधराई है तो तू सेवामें ना करनेवाला कौन**? ऐसी मनोवृत्तिमें तुम्हारी ममताका अतिरेक तुम्हारी सेवाके आड़े आ रहा है. क्योंकि तुम्हारे परिवारके सदस्योंका एक ही अपराध कि तुम उनको अपना मान रहे हो. जो कि तुम्हारे सेवाके कार्यक्रमको अपने भावोंके अनुरूप नहीं मान रहे. इस कारण उन लोगोंको तुम इस सेवाकी पीड़ा दे रहे हो. नहीं तो किस कारण पीड़ा दो? अतएव यह मामकारिक प्रतिबंध है सेवामें.

यह पांचों प्रतिबंध महाप्रभुजी आज्ञा करते हैं. सेवाको छोड़ कर पहले झगड़ा तो मिटा दो, फिर दूसरी बात. एक घर तो डाकिनी भी छोड़ती है ऐसे एक प्रभुकी सेवाको तो झगड़े बिनाकी आनन्दरूप रहने दो. परमानन्दात्मक प्रभु हैं. इस परमानन्दात्मक प्रभुकी सेवाको दूसरोंको पीड़ा देनेवाली क्यों बना रहे हो?

तुमने मान लिया कि मैंने निवेदन किया है सबका और मैंने जिनका निवेदन किया है वह सेवा न करें और अन्यमें उनका विनियोग हो यह मैं कैसे सह सकता हूं? अर्थात् तुम समझते हो क्या अपने आपको? ऐसे पूछनेकी इच्छा हो रही हो तो महाप्रभुजी कहते हैं **अभिमानः च सन्त्याज्यः स्वाम्यधीनत्व-भावनात्.** तुम अपनेको स्वामी मान रहे हो कि ठाकुरजीको स्वामी मान रहे हो? बताओ तो सही वन्स् एण्ड फोर आल इसका खुलासा तो करो. ठाकुरजीको निवेदन करनेके बाद भी तू प्रभुको अपना स्वामी मान रहा है तो दूसरेकी चिंता करके उनको तुम भगवत्सेवाके बहाने पीड़ा देनेवाला कौन? जबरदस्ती दूसरोंसे सेवा कराने वाला तू कौन? ठाकुरजीको लेनी होगी तो लेंगे, नहीं लेनी होगी तो नहीं लेंगे. जो अहंकारिक समस्या है यह अत्याग्रहात्मिका कि **ना ना ! निवेदनतो मैंने किया था, यह तो सब सेवामें ऐसे ही चालू हो गया.** वास्तवमें निवेदन करनेवाला कौन? **मैं** लो तुम्हारी इस **मैं** ने ही तो मार रखा है ना. फिरसे मैं तुमने कैसे किया? स्वामी तुम कि वह? अगर तुम प्रभुको स्वामी मान रहे हो तो ऐसा मैं करनको तुमसे किसने कहा? किसने अक्कलका ठेकेदार बननेको कहा? निवेदन करनेके बाद तुम निवेदक नहीं परन्तु निवेदित हो गये. तुम निवेदित हो और तुम्हारे द्वारा निवेदित किये गये भी सब निवेदित हैं. उन सबमेंसे जिनसे प्रभुको सेवा लेनी होगी लेंगे, जिनसे नहीं लेनी होगी उनसे नहीं लेंगे.

अब कभी कबाद ऐसा सिद्धान्त सुनाई दे जाता है कि तुरन्त .... **अच्छा अच्छा अब समझा कि लेनी होगी तो लेंगे नहीं लेनी होगी तो नहीं लेंगे, महाराज! तुम अच्छे आये, यहां सबको ब्रह्मसम्बन्ध तो देते जाओ.** अगर तुम ऐसा सोचने लगो तो महाप्रभुजी नवरत्नको पृथ्वीमें ही गाड़ देना चाहेंगे कि भाईसाहब! गलती करी कि नवरत्नका उपदेश दिया. एक बात ध्यानसे समझो कि यह उद्वेगके निवारणका उपाय उपदेशित नहीं किया यह तो चिंताके निवर्तनकेलिये चिंतनका उपाय महाप्रभुजी बता रहे हैं कि **सर्वेषां प्रभुसम्बन्धः** ऐसा चिंतन करोगे तो यह उद्वेग चिंतामें परिवर्तित नहीं होगा, यह चिंतन अगर नहीं करोगे तो उद्वेग तो बहुत ही स्वाभाविक है. मैंने निवेदन किया हो और मुझे जो भान हो कि मैंने केवल अपना ही निवेदन नहीं किया बल्कि अपनी समस्त आत्मीय वस्तुओंका और व्यक्तियोंका भी निवेदन किया है; और प्रभुकी सेवामें इनका विनियोग नहीं होता तो इसका उद्वेग होना तो अत्यंत स्वाभाविक है. अगर तुम भक्त हो तो होगा, होगा और होगा ही. उद्वेग होनेमें कोई तकलीफ नहीं है लेकिन उस उद्वेगकी इतनी अधिक धुनाई या जुगाली मत करो कि चिंताके रूपमें बदल जाये. अतएव महाप्रभुजी फिरसे इस बारेमें प्रभुके पोइन्टका प्रेशर देते हैं कि **सर्वेषां प्रभुसम्बन्धः**. इस पोइन्टको दबाओ फिर तुमको समझमें आयेगा कि जिनसे लेनी होगी, उनसे लेनेके लिये यह तुम्हारे घरमें बिराजते ठाकुरजी सर्वसमर्थ प्रभु हैं. अब निवेदन करनेके बाद तुम तुम्हारे अहंकारके पाइन्टको दबा रहे हो, इस पोइन्टको मत दबाओ. **सर्वेषां प्रभुसम्बन्धः** इसलिये प्रभु शब्दको कन्डेन्स किया है. **न प्रत्येकम् इति स्थितिः. अतो अन्यविनियोगे अपि चिन्ता का स्वस्य सोऽपि चेत्.**

सर्वेषां प्रभुसम्बन्धो न प्रत्येकम् इति स्थितिः ।

अतो अन्यविनियोगे अपि चिन्ता का स्वस्य सोऽपि चेत्।।

श्लोकान्वय और श्लोकका मानसशास्त्रीय विश्लेषण:

४. {आन्तरिकोपायोपदेश} : सर्वेषां प्रभु सम्बन्धो न प्रत्येकम् (कर्तृकर्मबुद्धिविवेक) ; अतः *स्वस्य अन्यविनियोगेऽपिका* चिन्ता! इति स्थितिः.

सरल भावार्थ: प्रभुके आगे आत्मनिवेदन करनेपर सबका ही प्रभुके साथ संबंध बंध गया; अतएव अपना भी अगर अन्यविनियोग होता हो तो चिंता करने जैसी कोई बात नहीं समझनी.

अपने अन्यविनियोगके बारेमें भी चिंता नही करनी :

उसी प्रकार यह अपने बारेमें भी लागू पड़ता है कि मैंने निवेदन किया था और मैं सेवा नहीं कर सकता और बाकी घरके सब सेवा कर रहे हैं तो मेरे अंहकारको ठेस लग रही है. मेरे निवेदनकर्ताके प्रकारके अहंकारको ठेस लगती है और इस ठेस लगे हुवे अहंकारकी धुनाई या जुगाली करके हम फिरसे कोई चिंता करें तो इस चिंताका निराकरण महाप्रभुजी फिरसे इसी रूपमें कहेंगे कि निवेदन करनेके बाद तुम और तुम्हारा परिवार निवेदित हो. तुम सबही निवेदित ही हो. न है कोई निवेदक और न ही कोई निवेदनीय अतएव तुम्हारा भी अन्य विनियोग होता हो तो उसमें चिंता करनेका कुछ रह नहीं जाता. यह फिरसे कर्तृ-कर्म-बुद्धि-विवेक यहां भी जैसे ऐक्युप्रेशरमें जो पाइन्ट दबानेमें आता है ऐसे ही पोइन्ट फिरसे दबानेमें आ रहा है. तुम अपने कर्तृ-कर्म-बुद्धिका विवेक प्रयोगमें लाओ तो तुमको समझमें आ जायेगा कि यह सब बातें क्या हैं?

मैंने आत्मनिवेदन किया लेकिन मेरे घरमें पत्नी-बेटी सेवा करती है परन्त् मेरेसे प्रभु सेवा लेते ही नहीं. अब अगर ऐसी चिंता होने लगे, नहीं सेवा ले रहे तो सब धंधोंको छोड़कर बैठ जा घरमें, पत्नीको ऑफिसमें बैठने दे, तेरेसे सेवा लेने लगेंगे. ऐसा कह दें तो कहेगा कि यह तो नहीं चलेगा. तो नहीं चलता तो फिर चिंता करनेका लाभ क्या? या तो तू इसे भेज दफ्तरमें और तू घरमें बैठकर सेवा कर. जा हमें तो तेरेसे ही सेवा लेनी है. तो कहेगा कि यह नहीं रास आता, फिर चिंता करनेका फायदा क्या? आनन्द कर ना तू. ऐसे क्यों नहीं समझता कि तेरी पत्नी सेवा कर रही है, यह तेरी अर्धांगिनी है. यह क्या छोटी बात है कि तेरा आधा अंग सेवा कर रहा है, और उस आधे अंगकी सेवा तू कर रहा है. तू ऐसा चिंतन करेगा तो चिंता निवृत्त हो जायेगी.

आत्मनिवेदनका कर्ता और उसमें प्रभुको निवेदित हुवे कर्मके बारेमें सच्ची बुद्धि रखनेके विवेकसे चिंता त्यागी जा सकती है :

यह कर्ता, कर्म, बुद्धि और उसका विवेक अर्थात्? आत्मनिवेदन करनेवाला कौन? और तुमने किसको निवेदन किया है? यह तुमको विवेक समझा रहा है कि तुमने सर्वका निवेदन किया है. प्रत्येकका नहीं किया और वैसी ही बुद्धि प्रयोगमें लाओगे तो **अतः सर्वेषां भगवद्विनियोगे स्वस्य च आत्मनिवेदनकर्तुः अन्यविनियोगेऽपि स्वस्य का चिन्ताः**? अपनेको किसकी चिंता होनी चाहिये? प्रभु हैं कि नहीं! यह जो प्रभु हैं और हमने आत्मनिवेदन किया हो तो हमारे किसीका अपनी सेवामें प्रभु विनियोग कराते हों और हमारा नहीं कराते हों तो भी अपनेमें विनियोग करानेमें प्रभु समर्थ हैं कि नहीं? **प्रभवति न वा**? अगर प्रभवति तो फिर तुम्हें चिंता किस कारण करनी चाहिये? तुमने निवेदन किया अतएव तुम प्रसन्न रहो.

अविवेकीकेलिये चिंता निवारणका उपदेश नहीं है :

अब तुम फिर यह नहीं कहना कि यह तो रामबाण मिल गया, ब्रह्मास्त्र मिल गया. हमें तो खाली ब्रह्मसम्बन्ध दे दो सेवामें नहानेको मत कहो. क्योंकि सेवामें नहाना रास नहीं आता, सेवामें नहायेंगे तो फिर धंधे कि नौकरीके लिये कौन जायेगा? सेवामें नहायेंगे तो दुकान कि ऑफिस कैसे जायेंगे? अतएव सेवातो मेरी पत्नी कर लेगी, इसेही ब्रह्मसम्बन्ध दिला दूं, पूरे दिन घरमें ही रहती है. घरसे छूटी तो हवेलीमें और हवेलीसे छूटी तो घरमें. रसोईसे चबूतरे तक और चबूतरेसे रसोई तक. तो अब तो अकेलीको ही भगवत्सेवाकी आज्ञा दो. बाकी हम किसीको भगवत्सेवाकी गरज कि जरूरत नहीं है. क्योंकि **सर्वेषां प्रभुसम्बन्धो न प्रत्येकमिति स्थितिः.** यह तो महान अनर्थ हो गया ना! लेकिन ऐसा भाव जागता किसमें है? जो निवेदितात्मा है उसे तो उद्वेग ही होगा कि **जबकि मेरे परिवारके जो लोग हैं उनसे भगवत्सेवा निभ रही है लेकिन मैंने भी तो ब्रह्मसंबंध लिया है लेकिन मेरा भगवत्सेवामे विनियोग क्यों नहीं हो रहा? मैंने सबका प्रभुको निवेदन किया उनका तो अन्यविनियोग नहीं हो रहा तो मेरा ही क्यों हो रहा है?** उसे ऐसा उद्वेग होता है. उद्वेग है तो उसकी चिंताका निवारण ऐसे चिंतनसे हो सकता है कि **सर्वेषां प्रभुसम्बन्धो.**

ऐसे चिंताका निवारण करनेके बजाय तुम **सैंया भये कोतवाल अब डर काहे का,** करो कि केवल पत्नीको ही ब्रह्मसम्बन्ध दिलाओ क्योंकि पुष्टिमार्ग स्त्रीओंका धर्म है. **पुरुषोंको तो धंधेपर जाना पड़ता ही है, आप भी जानते हो कृपानाथ!** कृपानाथ भी समझ जाते हैं कि दे दो चलेगा. सबही जीव बह्मसंबंध लेते हैं, सेवा करनेकी जरूरत कहां है? क्योंकि प्रभुमें विनियोग हो कि अन्यमें विनियोग हो **सर्वेषां प्रभुसम्बन्धो**

प्रभु तो सर्वसमर्थ हैं, ईश्वर हैं, सर्वात्मा हैं इन्हें तो कोई गरज है ही नहीं, लो लेते जाओ सब जीव ब्रह्मसम्बन्ध, आ गया हूं तो ले लो. तुम लेने नहीं आओ तो हम तुम्हारे घर आकर दे देंगे. वह भी नहीं भाता हो तो सार्वजनिक सूचना अखबारमें छपा देते हैं कि अमुक मैदानमें हम हमारे ठाकुरजीको पधराकर उपस्थित रहेंगे ब्रह्मसम्बन्ध देनेके लिये. अपने अपने घरोंसे नहा कर आ जाना. व्रत भी दीक्षा लेनेके बाद करोगे तो चलेगा! क्योंकि हम नहीं देंगे तो कोई दूसरा दे देगा और पब्लिक तो ले ही लेगी. तो सब ले जायें और हम रह जायें तो कैसे चलेगा? अतएव लेते जाओ! अरे! क्या धंधा खोल लिया है भाईसाहब! यह कैसी नौटंकी है? नवरत्नमें ऐसी चिंताको दूर करनेके लिये कहा गया है? नहीं. ऐसी चिंताको दूर करनेके लिये नहीं कहा. निवेदितात्माकी चिंताको दूर करनेके लिये कहा गया है. गलत रीतिसे निवेदन करवानेवाले हम गोस्वामी बालकोंकी और गलत रीतिसे निवेदन करनेवाले ऐसे प.भ.की गलत चिंता कि निश्चिंतताकेलिये कुछ भी नवरत्नमें कहनेमें नहीं आया है. यह बात ध्यानसे समझोगे तो तुमको कर्तृ, कर्म, बुद्धिका विवेक लगेगा और प्रभुका अर्थ भी तुमको समझमें आयेगा. तो एक सच्चे आत्मनिवेदीके तौर पर तुमको जो चिंता होगी वैसी चिंताओंका निवारण इस चिंतन द्वारा महाप्रभुजी कर रहे हैं. बाकी ऐसो लेभागू चिंताओंका निवारण महाप्रभुजी नवरत्नमें नहीं कर रहे.

अतएव इस चौथे प्रकारकी चिंताके निवारणकेलिये महाप्रभुजीके वचन तो वही के वही हैं केवल अन्वय यहां बदल जाता है.

इसमें एक शंका फिरसे उद्‌भवित होती है. एक समस्या तो मैंने तुमको बतायी कि गुसांईजीने इसे तीसरा कहा और मैं इसे चौथा कह रहा हूं. ऐसा घोटाला मैंने क्यों किया? यह घोटाला इन्टेन्शनली किया है. इसका मूल कारण यह कि इस

श्लोकमें दो समाधान एकही साथ महाप्रभुजी करना चाहते हैं. तो एक समाधान तो तीसरे श्लोकमें कहा गया जो समाधान है वह ही समाधान है, और उससे आगे बढ़कर एक समाधान महाप्रभुजी कह रहे हैं कि अहंकारकी समस्या ममताकी तुलनामें बहुत अधिक गंभीर है. अतएव एक समाधानसे अहंकारका समाधान नहीं होता. दो-चार समाधान दो तो धीरे धीरे अहंकार थोड़ा घटेगा. ममताका समाधान तो बहुत जल्दी हो जाता है समझे. हम किसीको अपना बहुत करके मानते हों लेकिन जब कोई ऐसा रोग लग जाये कि जिस रोगकी छूत हमको लगती हो तो बहुत प्यार तुरन्त खत्म हो जाता है. ऐसे तो तुम बहुत प्यारे हो परन्तु जरा दूर रहना समझे भाई साहब! पासमें नहीं आना. छूत लग जायेगी तो कहां जाऊंगा? अतएव ममता तो बहुत हल्की है, ममताको ओवरकम करना बहुत मुश्किल बात नहीं है. लेकिन अहंताको कन्ट्रोलमें लाना तो बहुत कठिन काम है. हम बहुत सी बातें करते हैं, बातोंके बड़े बनाते हैं लेकिन वास्तवमें अहंताको किसी समय कन्ट्रोलमें लाना सोचो तो पता चलेगा कि वास्तवमें पहाड़पर चढ़ने जैसा कठिन काम है. पैरोंमें बूट न हों, आंखोंमें नीला चश्मा न हो, शरीर ऊपर गरम कपड़े न हों, ऑक्सिजनका सिलिन्डर न हो और हिमालयपर चढ़ना हो, अर्थात् बहुत मुश्किल काम है अहंताको कन्ट्रोलमें लाना. ममता तो थोड़ा सा झगड़ा हो तत्काल टूट जाती है. बहुत लाड़प्यारसे अपने लड़केको हम बड़ा करते हैं और एक बहूके आते ही झगड़ा हो जाता है. ममता तो बहुत कमजोर डोरा है, तत्काल टूट जाता हे. लेकिन जो नहीं टूटता वह है अहंताका डोरा. इसमें कौन जाने कितने बल दिये गये होते है कि इसे काटो तो भी मुश्किलसे ही कटता है, कैंची भी कई बार खुंडी हो जाती है लेकिन अहंताका डोरा सरलतासे नहीं कटता.

अहंता इतनी बड़ी प्रोब्लम है अतएव महाप्रभुजी ओवर प्रिकोशन, ओवर कॉशस होकर इसके एक नहीं दो उपाय बताते

हैं कि अच्छा भाई ऐसे नहीं तो ऐसे, लेकिन समझ. महाप्रभुजीके कहनेका स्टाइल देखो कि कितनी खूबसूरतीसे उस अहन्ताके पोइन्टको जैसे किसीको इस प्रकार गरदनसे पकड़कर हम घरसे बाहर निकालते हैं इसी प्रकार महाप्रभुजीने अहन्ताकी गरदन पकड़ ली है. जिसे तूने निवेदन किया है उसका महत्व तेरी तुलनामें अधिक है कि नहीं? **यैः कृष्णसात्कृतप्राणैः तेषां का परिदेवना!** इस आत्मनिवेदनकी प्रक्रियामें अपने आपको इतना अधिक महत्व अगर तुम देते हो कि जिसे निवेदन किया है उसमें तुम अपने आपको खपा न सको तो तुम तो बहुत बड़े प.भ. लगते हो, ऐसा महाप्रभुजी कह रहे हैं समझे? तू वास्तवमें बहुत बड़ा प.भ. है. क्योंकि तुमने अपने प्राणको कृष्णके साथ सान लिया है, जैसे दालचावलको सानते हैं, इस प्रकार तुम समझते हो कि तुम्हारे उस प्राणको कृष्णके साथ सान लिया, तुम्हारे जो ममतास्पद हैं वह कृष्णके साथ नहीं सने. तुमने अपने आपको कृष्णके साथ सान लिया है. **मेरो मन और वा ढोटाको एकमेक कर सान्यो.** इस प्रकार तूने कुछ सान लिया लगता है. अरे! कबूल करता है कि नहीं बोल, अब अहंकार होगा तो कबूल करेगा ही कि हां कबूल करता हूं ना! अब महाप्रभुजीने तुरन्त तुमको पकड़ लिया **तो फिर चिंताकरनेकी क्या बात है?** जो कबूल न करे तो अहंकारको ठेस लगती है. ऐसा डायलेमा खड़ा हो तो सब समझमें आये! अहंकारके मूडमें आये हुवेको यह बात कबूल करनेमें जरा भी देर नहीं लगेगी कि **मैं आत्मनिवेदिनकर्ता प.भ. हूं और दूसरे सब मेरे द्वारा निवेदित हैं. मैं परमनिवेदी परमभगवदीय हूं.** यह कबूल करते देर नहीं लगेगी और महाप्रभुजी पकड़ लेंगे कि बोल अब स्पष्ट कर कि अच्छा! प.भ. है तो अहंकार क्यों करता है प.भ. होनेका? यह तो स्पष्ट कर.

आगेका श्लोक जो बात हमें समझाता है वह है अन्यविनियोगकी समस्या.

अज्ञानाद् अथवा ज्ञानात् कृतमात्मनिवदनम्।
यैः कृष्णसात्कृतप्राणैः तेषां का परिदेवना!।।४।।

<u>श्लोकान्वय और श्लोकका मानसशास्त्रीय विश्लेषण</u> :

५. {आन्तरिकोपायोपदेश} : **ज्ञानाद् अथवा अज्ञानाद्** **<u>यैः कृष्णसात्कृतप्राणैः</u>** (कर्तृबुद्धिविवेक) **<u>आत्मनिवेदनम् कृतं तेषां</u>** ***<u>का परिदेवना!</u>***

सरल भावानुवाद: ज्ञानपूर्वक कि अज्ञानपूर्वक जिन्होंने आत्मनिवेदन द्वारा अपने प्राण श्रीकृष्णके साथ एकमेक कर लिये हों उनको किसी बातकी चिंता करनेकी नहीं होती.

महाप्रभुजी बहुत चतुराईसे पूछते हैं कि तूने ज्ञानसे निवेदन किया कि अज्ञानवश? आपश्री जानते हैं कि मनुष्यके साथ अहंकार कैसे-कैस खेल खेल सकता है. हम कहनेके लिये **अहं ब्रह्मास्मि**का जप-प्रवचन करते हैं परन्तु वास्तवमें हमें ब्रह्म होनेका आनन्द नहीं आता लेकिन अपने अहंकारका ही आनन्द आता है. अतएव उपदेश सुननेवालोंके तुलनामें उपदेशकको अपनेही ब्रह्म होनेकी हकीकत अधिक प्रिय लगती है. हम भी **दासो अहं** करते हैं लेकिन वास्तवमें **दा** बहुत हल्केसे बोलते हैं. हमको भी **सोहम्**का ही आनन्द आता है. तुम कौन? मैं भगवानका दास! ब्रह्मसम्बन्ध लेकर मरजादमें सेवामें पहुंचनेवाला. अतएव हर समय अहंकारका जो आनन्द है यह तो बहुत गजबका आनन्द है. सर्वातिशायी आनन्द है जिसमें पारमात्मिक आनन्द भी इस आहंकारिक आनन्दके आगे छोटा पड़ जाता है.

तो महाप्रभुजी कहते हैं कि पोसिबिलिटि तो तुम्हारी दो हैं कि तुमने प्रभुके आगे निवेदन किया है कि नहीं? अब पहलेसे अगर स्पष्ट करे तो बादमें फिर बदल जाता है कि **ना ना मैंने जब ब्रह्मसंबंध लिया था तब यह तो पता ही नहीं था कि निवेदन करनेके बाद मैं निवेदित हो जाऊंगा और मैं निवेदक नहीं रहूंगा. यह ज्ञान मुझे नहीं था इसलिये चिंता कर रहा हूं.** महाप्रभुजी कहेंगे, कोई बात नहीं, तूने ज्ञानसे अथवा अज्ञानसे अंगारेको हाथमें उठाया तो वह जलायेगा कि नहीं? यह तो स्पष्ट कर. क्या हम ऐसे कह सकते हैं कि **ना ना अज्ञानसे उठाया था इसलिये बहुत ठंडा लग रहा है.** क्या कभी ऐसी हो सकता है? अंगारेको हम हाथमें अज्ञानसे उठालें तो क्या हाथ नहीं जलेगा? ज्ञानसे उठाओ कि अज्ञानसे उठाओ अगर आग है तो जलेगा, जलेगा और जलेगा ही. ऐसही आत्मनिवेदन तूने किया है और तू इस आत्मनिवेदनमें दूसरोंको ऐसा मानता है कि **दूसरे सभी जघन्याधिकारी हैं इसलिये सेवा नहीं करते तो चलेगा परन्तु मैं तो उत्तमाधिकारी हूं इसलिये सेवा नहीं करूं तो कैसे चलेगा?** इसलिये बाई हुक और बाई क्रुक मुझे तो किसी न किसी तरह सेवा करनी ही है. घरमें नहीं करूं तो गो.बालकोंके मंदिरमें मनोरथ कराकर सेवा कर लूंगा. मनोरथ नहीं कराऊं तो कोई प.भ.को पैसा दूंगा कि तुम सेवा कर लेना मेरी ओर से भी लेकिन सेवा तो करनी है ही. यह सब अहंकार अपने हैं समझे! भूल नहीं जाना.

ब्रह्मसंबंध ले रखा है और हम कहते हैं **दासानुदास** लेकिन सबके लिखनेमें दा.दा. ही आता है. दासानुदास लिखना ही अच्छा नहीं लगता. अतएव भगवानके साथ भी दादागिरी करनेके लिये दा.दा. हम लिखते हैं दासानुदास होनेके अर्थमें या दा.दा. के अर्थमें. यह सब बातें बेकार ह भीतरकी, बाहरकी कुछ अलग हैं. भीतरमें हमको पता है कि आ गया हाथमें अब, अब मैं दादा हूं तुम्हारा, अब कहां जायेगा? हमको यह सब रास आता है

क्योंकि हमारा अहंकार हमको यह सब प्रेरणायें अच्छी तरहसे देता है. बहुत डायनेमिक फोर्स है हमारे भीतर अहंकारकी.

अतएव महाप्रभुजी दोनों बातोंको ध्यानमें रखकर अच्छी तरहसे कहते हैं कि कोई बात नहीं ज्ञानसे लिया कि अज्ञानसे लिया. तू अपने आपको आत्मनिवेदनकी प्रक्रियामें निवेदित कि दूसरे निवेदितोंकी तुलनामें विशेष मानता है कि नहीं मानता? तो अहंकार बोलेगा ही कि **हां मैंने तो आत्मनिवेदन किया था. इन लोगोंको होश कहां था कि मुझे आत्मनिवेदन करना चाहिये.** महाप्रभुजी कहेंगे कि तो फिर तू **कृष्णसात्कृतप्राणः** हो गया. अब तूने तेरे प्राणोंको कृष्णके साथ सान लिया है. अब चिंता करनेकी क्या जरूरत है? अतएव फिसल जाता है पहला अहंकारी. क्योंकि करने तो हमको दोनोंही हैं. आत्मनिवेदन करनेके बाद अहंकार भी करना है और दा.दा. भी होना है. तो इस बातको महाप्रभुजी यहां पकड़ रहे हैं. इस बातको मैं चोथे क्रममें नहीं रखूं तो इसके साथ जुड़ेगी नहीं. श्रीगुसांईजीने तो पंक्तिमें फिरसे एक उत्थानिका इन्ट्रोड्यूस करके सिंहावलोकन करके इस पंक्तिका संदर्भ फिरसे ले लिया है. अब यह सब मैं यहां करूं तो फिर विस्तार बहुत हो जायेगा. इसलिये मैंने शौर्टमें इसका क्रम बदल दिया है. यह क्रम गुसांईजीने तीसरा लिया है और मैंने चौथा लिया है. क्योंकि चौथा जो केस है वह पहली तरफ जुड़ रहा है और इस ओर भी जुड़ रहा है. देहली दीपक न्यायसे. इस रूममें भी प्रकाश करता है और उस रूममें भी प्रकाश करता है. इस कारण इसको बीचमें रख दिया है. अतएव दोनों जगह इसको जुड़ा हुवा तुम समझो.

यहां फिरसे आंतरिक उपायका उपदेश है. कर्तृबुद्धिके विवेकके पाइन्टको महाप्रभुजी प्रेशर दे रहे हैं कि निवेदनकर्ता तू था तो मुझे तू अपना आडिटेड् एकाउन्ट दे कि निवेदनकर्ताके तौरपर तू अपनेको उत्तमाधिकारी समझता है, मध्यमाधिकारी समझता है कि जघन्याधिकारी समझता है? जघन्याधिकारी या

मध्यमाधिकारी समझता है तो जैसे साधारण दूसरे निवेदित थे वैसा तू है. फिर किस कारण तू चिंता करता है? अगर तू अपने आपको उत्तमाधिकारी मानता है तो उत्तमाधिकारी कौन हो सकता है? जो **कृष्णसात्कृतप्राण:** हो वह. अब जो **कृष्णसात्कृतप्राणै: तेषां का परिदेवना!** अतएव फिरसे इसी बातको टाकनेके रूपमें महाप्रभुजीने अहंकारको फिरसे पकड़ लिया है गरदनसे कि अब कहां जाता है बोल स्पष्ट कर. तू जो स्पष्टीकरण देगा वह मुझे मान्य है, उसके बादही फिर मैं अपनी बात कहूंगा. तू जो पक्षग्रहण करेगा बात उसके आगे ही बढ़ेगी. **परिदेवना** अर्थात् चिंता, संक्षेपमें उद्वेगजनित चिंता.

हमारे किशनगढ़में एक ऐसी दुर्घटना घटी. किशनगढ़में एक हनुमानजीका मंदिर, इस हनुमानजीके मंदिरमें सब फटे हुवे नोट भेंट रूपमें धर जायें. इसका पुजारी बिचारा रोता रहता कि क्या करें जमाना खराब ऐसा आ गया है कि सब फटे नोट यहां धर जाते हैं. मैंने कहा **हनुमानजीको कहो ना किसी दिन अपनी गदा चलायें.** वह बोला **गदा नहीं चलाते यही तो तकलीफ है. एकाद बार गदा चलादें फटें नोट धरनेवालोंके ऊपर तो फिर फटे नोट कौन धरेगा?** लेकिन जिसके नोट फट जायें वह हनुमानजीकी गोलकमें धर जाये. अब इस बिचारेको बैन्कमें जाना पड़े और हनुमानजीकी पूजा भी करनी और फटे हुये नोटोंको भी बैन्कमें बदलनेके लिये जाना पड़े.

हर बार हम इतने चतुर होते हैं कि फटे हुये नोट भगवानको धरते हैं. खोटा सिक्का भेंट धरते हैं. **जलता घर कृष्णार्पण** कर देते हैं. यह बहुत ईजी कोर्स है क्योंकि अपने गाममें भी प.भ. के तौरपर खपते हैं और अपनेको भी एक संतोष हो जाता है कि हां भाई जो कुछ करना था वह यथाशक्ति कर दिया ना! साबुत नहीं तो फटे नोट ही सही कुछ तो चढ़ाया ना! **ना करते जो करा वह भला.** अतएव दोनों

प्रकारका संतोष हम ले लेते हैं. फटे नोट कहीं जो न चलते हों वह भगवानके यहां नहीं चलेंगे तो कहां चलेंगे? प्रभु तो सर्वसमर्थ. प्रभु तो **सर्वत्र तस्य सर्वं हि सर्वसामर्थ्यमेव च.** हमारी पूजाकी अथवा सेवाकी भी बात तो जाने दो तुम एक दूसरेके स्नेहोपहार देनेकी डीसेन्सी कि जो सुघड़ता हाती है वह उसमें रही हुई है. जो मेरे पास अच्छे से अच्छा हो वह तुम्हें मैं दूं. किसके पास अच्छेसे अच्छा क्या है वह तो व्यक्तिके स्तरके ऊपर निर्भर करेगा. लेकिन ऐटलीस्ट देनेवाले व्यक्तिको जो अपनेपास अच्छे से अच्छा हो वह देना चाहिये, पूजामें कि प्रेमोपहारमें कि सेवाम.

इसी कारण जो हमारे यहां ऐसे कहनेमें आता है कि प्रभु उत्तमोत्तम वस्तुके उपभोक्ता हैं. हम अपनी बड़ाई दिखानेके लिये इसका गलत अर्थ समझते हैं कि ठाकुरजीको अमुक प्रमाणमें केसर, अमुक प्रमाणमें घी, अमुक प्रमाणमें शक्कर, अमुक प्रमाणमें मठडी, मोहनथाल बिना नहीं चलता. प्रभु उत्तम वस्तुके भोक्ता हैं अतएव भिखारीपन करके भी धरना ही पड़ेगा. धरनेकेलिये उपयोगमें आती वस्तुकी उत्तमताके चक्करमें प्रभुकी उत्तमताको नीचे पैरोंपर पटक दिया. यह तो वास्तवमें सामने धरी सब वस्तु ठाकुरजी आरोग नहीं लेते इसलिये भोग-सामिग्रीका भिखारीपना करके उस सामिग्रीको बेचकर मिलता लाभ होनेके कारण यह सब हमें अच्छा लगता है. ठाकुरजी भी ऐसा कुछ लेनेके लिये शनि-राहु-केतु जैसे पापग्रह नहीं हैं कि जिनकी दशा लगनेके कारण दान देनेमें आता हो. तेल चढ़ाना ही पड़ेगा नहीं तो दशा उतरेगी ही नहीं. शनिकी दशा जैसे लगती है वैसे अपने ठाकुरजीकी दशा नहीं लगती. वह तो उत्तम वस्तुके भोक्ता होनेके कारण केवल तुम्हारे भावको सबसे उत्तम मानते हैं. अतएव तुम जिसे उत्तम मानते हो उसे तुम प्रभुको समर्पित करते हो तो प्रभु वैसे उत्तम भावनाके भोक्ता हैं. तुम जिसे उत्तम नहीं समझते, तुम ऐसे समझ रहे हो कि

ऐसा भिखारीपना तुम्हारे नामपर करना अच्छी बात नहीं है तो तुम तुम्हारे ठाकुरजीके नामपर ऐसा जघन्य भिखारीपना करो तो वैसी जघन्य सामिग्रीके प्रभु भोक्ता नहीं हैं. भिखारीपना कैसे करें इसलिये ठाकुरजीके नामपर करते हैं. भिखारीपन अच्छा है तो अपने नामपर करो फिर ठाकुरजीको भोग धरोगे तो वह आरोगेंगे. यह तो कोई दूसरी योग्यता न होनेके कारण घरका खर्चा नहीं चलता. इस कारण भिखारीपन करके अपना घर जला रहे हैं. अतएव कृष्णार्पण कर दिया. लो ना तुम्हें कब मौका मिलेगा? कृष्णार्पणम् अस्तु! चलो बात खत्म हो गई. जलता घरतो कृष्णार्पण किया इसमें उत्तम वस्तुके भोक्ता ठाकुरजीको तुमने क्या माना? भिखारीपन उत्तम होता तो हम गो.बा. को पहले अपने नामपर करना चाहिये था. तुम्हारी झोंपड़पट्टी हो, गटरके किनारेपर हो लेकिन तुम उसमें रहना चाहते हो कि नहीं? स्पष्ट करो. तुम यह बात दिलसे मान रहे हो कि नहीं कि मेरे रहनेकेलिये ताजमहलकी तुलनामें मेरी झोंपड़ी अच्छी है. तुम अगर इसे अच्छी वस्तु मानते हो तो इसे प्रभुको समर्पण करो. यह उत्तम वस्तुके भोक्ता हैं. तुम्हें जो ऐसा भाव हवा कि मरजाद तो पलती नहीं, कुआका जल भी नहीं है, इतना अधिक पैसा कहांसे लायें, तो फिर हम सेवा करें तो कैसे करें?

अब सेवा तो निभती नहीं. अतएव मिश्री धरें कि नागरी धरें दूसरा तो हम क्या कर सकते हैं. बाकी सब तो हवेलीमें धर सकते हैं तो जो तुम धर रहे हो उसमें तुम्हारा अपनी उत्तमताका भाव है ही नहीं तो फिर प्रभु कोई भुख्खड़ तो हैं नहीं कि तुम्हारी मिश्री कि नागरीकेलिये भुख्खड़ बनकर वहां बैठे रहें तुम्हारे घरमें. जो तुम इसे उत्तम मानते हो तो जैसे प्रभुको भोग धरते हो वैसे स्वयं भी इसके ऊपर टिक रहो. तुम धरनेसे पहले जो इस प्रकार घिघिया रहे हो, अपना कंगलापन दिखा रहे हो कि हम यह सब कहां से लायें? तो फिर प्रभु ऐसी वस्तुके भोक्ता नहीं हैं. क्योंकि तुम्हारा खुदका भाव इनमें उत्तम

होनेका नहीं है, जघन्यताका भाव है. ठाकुरजीको मिश्री भोग धरके तुम भी मिश्रीपर रहते हो, कि मिश्रीही मेरे लिये उत्तम है, तो कोई बात नहीं लेकिन तुम ढोकला फाफड़ा सब कुछ खाते हो. अब ठाकुरजी कहां जायें. इसके लिये पिछली बार एक धौल बनाया था कि **मुझे ठाकुरजी नहीं बनना. कोई मुझे भजता नहीं है पुष्टिकेभावसे. क्यों फिर ठाकुरजी बनूं. वल्लभ मुझे ठाकुरजी नहीं बनना.**

जिसे हम उत्तम नहीं मानते, मोटे तौरपर हम लोगोंकी हवेलियोंमें ठाकुरजीको जो सखड़ी भोग धरनेंमें आती है वह तो हमारे स्टाफको तनख्वाहके तौरपर दी जाती है. हम जो आरोगते हैं वह हमारी तपेलीमें अलग बनती है. यह अच्छी होती है, अगर स्टाफको दें तो पोसाती नहीं. इतना उत्तम कि ठाकुरजीका भोग स्टाफकी तनख्वाहकी तरह और हमारे पेटमें तपेलीमें सिद्ध करी हुवी अच्छी क्वालिटीकी होती है. क्योंकि इसमें घी कुछ अच्छा क्वालिटीका होता है, गेहूं कुछ अच्छी क्वालिटीका होता है, यह उत्तम वस्तु होती है. ठाकुरजीको अब इसकी क्या गरज? ठाकुरजीतो भावके भूखे हैं. अतएव जो ठाकुरजीके नेगके नामपर भोग धरा जाता है यह स्टाफकी तनख्वाहके नामपर दिया जाता है. अब ठाकुरजी क्या इसके भूखे हो सकते हैं? देखनेवाली बात यह कि फिर ऐसा भाव मठड़ी-मोहनथालमें नहीं रखते. क्योंकि तपेलीमें मठड़ी मोहनथाल सिद्ध नहीं होते. यह तो मन्दिरका भीतरिया करे तो ही सिद्ध हो. अतएव इसके प्रसादमें हमें बहु..... . **असमर्पितवस्तूनां तस्माद् वर्जनम् आचरेत्** भाव जाग जाता है. ऐसा होता है आधुनिक पुष्टिमार्गका दिव्य भाव कि असमर्पित वस्तुआका त्याग किस प्रकार हो सकता है?

ऐसा भाव हमारा ही है ऐसा नहीं है तुम वैष्णवोंका भी ऐसा ही है, भूलना नहीं. जब तुम मंदिरमें जाते हो तब मठड़ी-मोहनथालका ही प्रसाद लेने जाते हो. कोई नमक कि

हल्दीका प्रसाद लेता है क्या? किसी दिन प्रसाद लेने आये और किसी प.भ. को एक दोनेमें नमक दे दो और कहो **लो भाई प्रसाद ले जाओ.** तो वह कहेगा कि **यह तो घरमें भी है महाराज. मठड़ी कहां है? मठड़ी लाओ. मोहनथाल कहां है प्रसादका, साईज् कैसे घट गया? रुपये तो सौ लिये थे हमारे पाससे. आओ भाई हरखा! हम दोनो सरखा!** ऐसे नहीं समझना कि तुम कोई बहुत उत्तम कक्षाके भगवदीय हो. हम सब ही जघन्यकोटिमें ही विचर रहे हैं. यह बात अच्छी तरहसे समझ लो कि तुम्हें भी सखड़ीका प्रसाद अच्छा नहीं लगता. सखड़ी तो तुम भी तुम्हारी किचनमें अलग ही सिद्ध करा रहे हो. यह मठड़ी तुम्हारे यहां सिद्ध नहीं होती, मुश्किल इसकी है. मोहनथाल तुम्हारे यहां सिद्ध नहीं होता, मुसीबत इसकी है. अतएव प्रसादका भाव जाग रहा है.

तुम्हारे घरमें तुम सखड़ी ठाकुरजीको भोग धरते हो, इसलिये सखड़ी जिसे तुम उत्तम मानते हो? वह तो बासमती चावल, अच्छे गेहूं और इसकी रोटी ठाकुरजीको धरनेकी होती है! यह तो हमसे अपरस पलती नहीं तो इन्हें किस प्रकार धर सकते हैं? फिर कहांसे धरनी अतएव मंदिरमें भटक-भटककर मठड़ी मोहनथाल, पेड़ा, बरफी, मैसूर भोग धरवाओ. मेरे ऊपर लोग गुस्सा करते हैं कि **प्रसाद लेनेकी मना क्यों करते हो?** अरे भाया किसका प्रसाद लेना है स्पष्टतो कर. प्रसाद लेना हो तो तुम्हारे यहां जो कुछ बनता उसे क्यों नहीं भोग धरते? यह तो बासमती चावल हैं नीचे मंदिरमें कैसे दें? यह तो ऊपर तपेलीमें ही खानेके होते हैं. पता लग गया ना! हम बहुत होशियार हो गये हैं. ठाकुरजी सबकी बुद्धिको प्रेरणा देते होंगे लेकिन किसी समय हम ठाकुरजीको कैसी कैसी प्रेरणा दे रहे हैं! किसी समय ठाकुरजी बालभावसे हमारी प्रेरणा ग्रहण कर लें तो ठाकुरजी भी हमारे दु:संगसे शैतान बन जायें. इतने होशियार

हम हैं. अतएव हमको प्रसादरूपमें मठड़ी मोहनथाल ही अच्छा लगता है बाकी कोई प्रसाद अच्छा नहीं लगता.

हमारे यहां एक मेरी प्रश्नोत्तरी चल रही थी. अपने अनुभवकी बात बता रहा हूं. सब ही मानो ए.के.४७ लेकर मेरे सामने बैठे हुवे थे और मुझसे पूछना चाहते थे **कुछ पूछना है.** मैंने कहा **पूछो जो कुछ पूछना हो.** तो उन्होंने पूछा **तुम प्रसाद लेनेकी ना क्यों करते हो?** मैंने कहा **मैं प्रसाद लेनेकी ना नहीं कर रहा केवल प्रसाद लेनेकी ही बात कर रहा हूं. लेकिन प्रसाद बिकता नहीं और प्रसाद खरीदा नहीं जाता. इतना ही कहना चाहता हूं.** मैंने भूलसे ऐसे भी कह दिया कि जब बेचा जाता है और तुम खरीदते हो तो होटलकी कोई डिश या प्रसादमें फरक क्या रह गया? तो मेरे पास बैठी एक मांजीने कहा **जानेदो ना तुम यह बात. सब होटलोंमें मैंने खाकर देखा है (असमर्पितवस्तूनां तस्माद् वर्जनम् आचरेत्** नहीं) सारे अच्छेसे अच्छे होटलोंमें; लेकिन अमुक हवेलियोके प्रसादका जो स्वाद है वह तो यहां मुंहमें अब भी आ रहा है!.

मैं भी ध्वस्त हो गया. मैंने कहा इसका जबाव मेरे पास नहीं है. मुंहमें स्वाद फिरता हो तो फिर इस स्वादको कैसे जाने दें? अतएव ऐसे स्वादकी मैं तुमको ना नहीं करता, तुम आनन्दसे प्रस्वाद लो. भगवान डायबिटीस् करे तब तलक तुम प्रसाद लो. दूसरी तो क्या शुभकामना तुमको मैं दे सकता हूं?

हम बहुत होशियार हैं, सब व्यवस्था होशियारीकी. स्नेहमें होशियारी नहीं होनी चाहिये लेकिन हम लोग होशियारीके अतिरिक्त और कुछ प्रयोगमें ही नहीं लाते. स्नेहका एक भी छींटा प्रयोगमें नहीं ला रहे. होशियारी पूरी दुनियांकी हम प्रयोगमें लाते हैं. पुष्टिसंबंध आत्मनिवेदनका होता है और **असमर्पितवस्तूनां तस्माद् वर्जनम् आचरेत्**के ऐसे सब संबंध

महाप्रभुजीने हमको पुष्टिप्रभुके साथ बांधकर दिये हैं. हम परन्तु कितने होशियार और हमारे ठाकुरजी बिचारे कितने भोले हैं जो कि इसमें फंस गये! इसलिये मुझे लिखना पड़ा कि **वल्लभ मुझे ठाकुरजी नहीं बनना, कोई भजे ना मुझे पुष्टिके भावसे क्यों ठाकुरजी बनना. ओ वल्लभ! मुझे ठाकुरजी नहीं बनना.** ठाकुरजी बिचारे ठगा गये बालभावसे सेवित होनेके कारण. अतएव जो हम ऐसी उत्तम वस्तु प्रभुको भोग नहीं धरते, तुम स्वयं कन्विन्स् हो कि यह साधारण कक्षाकी वस्तु है तो फिर प्रभुको भोग धरनेकी जरूरत कहां हैं? फिर **असमर्पितवस्तूनां तस्माद् वर्जनम् आचरेत्**का नियम तुम्हें लागू ही नहीं पड़ता. **निवेदिभिः समर्प्यैव सर्वं कुर्याद्** अतएव जो निवेदी हो और तुम्हारे पास जो उत्तम वस्तु हो, जिसे तुम उत्तम मानते हो, जैसे शबरी अपने बेरोंको उत्तम मानती थी, और बेर उत्तम हैं कि नहीं इसे जांचनेके लिये, खा-खाकर, जूठे करके रामको आरोगाती थी. इसके मनमें ऐसे कि कोई कड़वा बेर मेरे रामको मैं न आरोगा दूं. अतएव स्वयं चख लेनेकी सीमा तक जाकर इसकी जांच करी. जो उत्तम बेर जांचनेके बाद लगा वह बेर उसने प्रभुको समर्पा. अब श्रीरामने आरोगे कि नहीं?

एक बार शांत चित्तसे विचारोगे तो तुम्हें समझमें आयेगा कि किस प्रकारकी उत्तम वस्तुके प्रभु भोक्ता हैं. और किस प्रकारकी अधम वस्तुके भोक्ता प्रभु नहीं हैं. उत्तम वस्तुके भोक्ता अर्थात् जो तुमको उत्तम लगता हो वह, शबरीको बस यह ही उत्तम लगता था, इसके सिवाय बिचारी शबरीकी कोई और बुद्धि ही नहीं थी. शबरीको कोई विवेकही नहीं था. तो जिसके पास जो विवेक है उसमें जो उसे उत्तम लगता है वह उसे निवेदन करना चाहिये. गदाधरदासजीको जलकी लोटी उत्तम लगी तो उन्होंने वह भोग धर दी. जो तुमको उत्तम लगता है वह भोग धरो. पद्मनाभदासजीको महाप्रभुजीके घरसे आया सीधा उत्तम नहीं लगा, क्या महाप्रभुजी कोई हल्की क्वालिटीके चावल

खाते थे कि हल्की क्वालिटीके गेहूं खाते थे? महाप्रभुजी कोई इतने दरिद्र नहीं थे, सब प्रकारसे समृद्ध थे. सोमयाग करते थे. सोमयाग करनेमें आज दो-चार लाख रुपये लगते हैं तो उस समय भी इतने ही लगते होंगे. आजके लाख नहीं तो उस समयके पांचसौ हजार होंगे. तो उस समय पांचसौ कि हजारकी कीमत लाख ही होगी ना! अर्थात् महाप्रभुजी कोई दरिद्र नहीं थे. उत्तम वस्तु ही ठाकुरजीको भोग धरते थे. लेकिन पद्मनाभदासजीको ऐसा लगा कि ऐसी सामिग्री मेरे लिये उत्तम वस्तु नहीं है. अतएव श्रीमथुराधीशजीसे पूछा **यह आरोगना हो तो सुखेन यहां बिराजकर आरोगो नहीं तो मेरे पास तो उत्तमोत्तम सामिग्री छोले हैं.** श्रीमथुराधीशको कहना पड़ा **नहीं तेरे पास जो उत्तमोत्तम सामिग्री है वह ही मैं आरोगना चाहता हूं.** तो इसके बाद दूसरी क्वालिटी जो कुछ उत्तमोत्तताकी हो वह खानेके लिये ठाकुरजी बंधे नहीं हैं. अतएव हर समय उत्तमताको तोलना यह है कि तुम्हारी सहज भावना, तुम्हारी विशुद्ध समझ और तुम्हारी सच्ची सामर्थ्य. तदानुसार जो सामिग्री उत्तम हो उसके भोक्ता प्रभु बनते हैं. अब बताओ कि तुम अपने आपको उत्तम मान रहे हो कि अधम मान रहे हो, पहले इसको तो स्पष्ट करो!

<u>भक्ति और चिंता परस्पर विरोधी होते हैं</u> :

तुम क्या कह रहे हो कि निवेदनतो मैंने किया लेकिन प्रभु मुझे अपनी सेवामें विनियोग क्यों नहीं होने देते? ऐसी चिंता तुम्हें सताती है. अब ऐसी चिंताको रखकर तुम विनियोग करने जाओगे कि सेवा निभाने जाओगे तो भी भक्ति नहीं निभा सकते. कल मैंने तुमको बहुत विस्तारसे इस बारेमें समझाया था. जब हम चिंता करते हैं तब स्नेहका भाव खंडित हो जाता है. चिंताके साथ सेवा हो सकती है लेकिन चिंताके साथ भक्ति निभ नहीं सकती. भक्ति और चिंताका बापमारेका बैर है.

तुम्हारा कोई प्रियजन बीमार पड़ा हो और तुम्हें छूतकी बीमारी लगनेकी चिंता होती हो तो तुम भक्तिपूर्वक उसकी अच्छे प्रकारसे सेवा नहीं कर सकते. अगर तुम्हें चिंता नहीं सताती हो कि छूतकी बीमारी लग जायेगी तो कितना ही रोग छूत वाला हो तो भी तुम भक्तिपूर्वक सेवा कर सकते हो. स्नेह और चिंता इस प्रकार एक दूसरेसे विपरीति स्वभाववाले हैं. अर्थात् जैसे हम गरमीमें मुरझाये फूल प्रभुको समर्पित नहीं करते, अगर फटे हुये नोट हम प्रभुको समर्पित नहीं करते तो हमारी चिंतातुर अवस्थाका भी प्रभुकी सेवामें विनियोग नहीं करना चाहिये. अगर तुमको चिंता हो रही है तो फिर सेवा छोड़ दो **तदा त्यक्तव्या** ऐसा महाप्रभुजी कहते हैं.

जिसने प्राण कृष्णसात् किये हों उसे परिदेवना नहीं होती :

बहुत सुंदर शब्दोंमें बांधकर महाप्रभुजीने यह बात कही है कि **यैः कृष्णसात्कृत्प्राणैः तेषां का परिदेवना!** परिदेवनासे मुरझाया हुवा तुम्हारा व्यक्तित्व प्रभुकी सेवामें जुड़ने लायक नहीं रहता. अतएव चिंता जो होती हो तो भगवत्सेवाका दुराग्रह रखे बिना एक बार शुरुआतसे आखिर तककी चिंता कर लो और जब तुमको उसे दूर करनेका दूसरा अच्छा उपाय मिल जाये तो उससे चिंतानिवृत्त होकर फिरसे भगवत्सेवाका उद्यम करो. वास्तवमें तो तुम अपनेको **कृष्णसात्कृत्प्राणः** मानते हो तो परिदेवनाको छोड़ देना चाहिये. परिदेवना एक ऐसी गरमी है कि इसमें तुम्हारा यह तन, तुम्हारा मन सब मुरझा जायेगा. धूपमें जैसे जैसे फूल मुरझा जाते हैं उसी प्रकार. अतएव इसे अगर प्रभुको समर्पने लायक तुम्हें रखना हो तो निश्चय करो कि तुम्हें उत्तम कोटिका पुष्प बना रहना है. इसकी सावधानी रखो कि तुम्हारा तन-मन ताजा रहे.

तुम उत्तम बनते हो, इसमें महाप्रभुजीके पेटका पानी हिलता नहीं. हमारी तरह कि वैष्णवोंमें कोई हमारी तुलनामें

अच्छी सेवाभक्ति करता है तो हमें डर लगने लगता है कि कहीं यह हमसे अधिक भक्त ना माना जाना लगे! दामोदरदास संभलवाले महाप्रभुजीकी तुलनामें अधिक नेगभोगवाली सेवा करते थे उसमें महाप्रभुजीके पेटका पानी हिलता नहीं था कि कहीं दूसरे वैष्णव दामोदरदासजीको महाप्रभुजीकी तुलनामें ऊंची कक्षाका भगवत्सेवापरायण समझकर.... श्रीगुसांईजीके पेटका पानी किसी भी दिन नहीं हिला तभी तो गुसांईजी अच्युतदासजीके दर्शन करनेके लिये रोज रोज पधारते थे. इतना भाव था गुसांईजीका अच्युतदासजीमें. वार्ता कहती है कि लाकव्यवहारमें ऐसे जनाते थे कि दर्शन देने जाता हूं. वास्तवमें गुसांईजीके अपने हृदयका भाव ऐसा था कि अच्युतदासजीमें महाप्रभुजी बिराजते हैं. इसकारण इनके दर्शन करने मुझे जाना चाहिये.

आज हमारे बीचमें जिस प्रकारके कटु संबंध बंध गये हैं उस प्रकारके कटु संबंध मूल आचार्योंमें और मूल अनुगामी वैष्णवोंमें नहीं थे. वैष्णव आचार्योंके लिये थे - आचार्य वैष्णवोंके लिये थे. एक दूसरेसे आगे बढ़नेकी एक दूसरेको डर लगे ऐसे अविश्वास भरे कटु संबंध, ऐसे जटिल संबंध, उस समय नहीं होते थे. अतएव महाप्रभुजीको डर नही लगता था कि कोई **कृष्णसात्कृत्प्राणः** उत्तमाधिकारी हो गया तो अब मेरा क्या होगा? अब मुझे कोई आचार्य मानेगा कि नहीं? अतएव आज नेगभोगराग-अपरसके बहाने बनाकर वैष्णवोंको उनके घरोंमें सेवाकरनेकी छूट देनेमें नहीं आती. अथवा तो कोई न कोई बहाना बनाकर हमारी हवेलियोंमें बिराजते ठाकुरजीओंकी तुलनामें वैष्णवोंके घर बिराजते ठाकुरजीओंको हलका बताया जाता है जिससे आखिरमें वैष्णव हमारी व्यावसायिक रूपमें चलती हवेलियोंमें चक्कर मारता रह जाये! इसमें डर काम कर रहा है कि हमारी तुलनामें वैष्णव कहीं अधिक भगवत्सेवापरायण न बन जाये. किसी वैष्णवके कारण बालकको कोई छोटा मानने लगे तो इससे पहले ही सेवापरायण वैष्णवको पाखंडी घोषित कर दिया

जाता है. ऐसे छलकपटसे रहित श्रीमहाप्रभुजी एक शुद्ध बात तुम्हें समझाना चाह रहे हैं कि तुम तय करो कि तुम **कृष्णसात्कृतप्राण:** हा कि नहीं. जो हो तो परिदेवना मत करो. और जो तुम्हें परिदेवना करनी है तो अपने आपको **कृष्णसात्कृतप्राण:** नहीं मान लेना. समझ लो कि तुम्हारी हैसियत क्या है? जैसे सब निवेदित हैं ऐसे तुम भी हो. प्रभुको तुमसे सेवा लेनी होगी तो लेंगे नहीं लेनी होगी तो नहीं लेंगे. चिंता करनी छोड़ दो.

अज्ञानाद् अथवा ज्ञानात् कृतम् आत्मनिवेदनम् ।
यैः कृष्णसात्कृतप्राणैः तेषां का परिदेवना! ।।

कैसे काव्यात्मक शब्दोंसे कितनी गंभीर बात हमको श्रीमहाप्रभुजीने समझायी है. एक बार इसे हृदयसे सुनोगे ना, आंख-कानसे तो पढ़ा सुना हागा ही लेकिन मैं तुमको रिक्वेस्ट कर रहा हूं कि एक बार महाप्रभुजीका हृदय क्या है, इस उपदेशमें उसे तुम हृदयसे ऐक्सेप्ट करोगे तो रोमान्च अनुभवित होगा. ऐसी बात महाप्रभुजीने यहां हम लोगोंको कह दी है.

अज्ञानाद् अथवा ज्ञानात्का अनर्थ :

इस विधानका आज गलत अर्थ हो रहा है कि ब्रह्मसम्बन्ध लेनेके बाद आवश्यक बनते ब्रह्मसंबंधीको सच्चे कर्तव्यको समझे कि समझाये बिना ब्रह्मसंबंध देदो और लेलो. ऐसे कैसे? तो **अज्ञानाद् अथवा ज्ञानात् कृतम् आत्मनिवेदनम् । यैः कृष्णसात्कृतप्राणैः तेषां का परिदेवना!** अरे मूर्खों ! किसने तुम्हें ऐसी उलटी पट्टी पढ़ादी? जो भगवत्सेवा अपने घरमें नहीं करनी तो वैष्णव परिवारमें केवल जन्म कि विवाहके कारण ब्रह्मसंबंध ले लेनेसे अपनेको **कृष्णसात्कृत्प्राण:** मान लेनेके लिये किसने कहा? क्या तूनें साने हैं अपने प्राण कृष्णके साथ? तूने साने हैं अपने प्राण धंधेके साथ, तूने साने है अपने प्राण अपने

परिवारके साथ, तूने साने हैं अपनी बढ़ती लौकिक प्रतिष्ठावाले संसारके साथ.

हम गोस्वामी बालकोंको पूछो तो कहेंगे कि यह तो महाप्रभुजी देखतेके साथ ही पहचान जाते थे कि कौन देवी जीव है और भगवत्सेवा निभानेमें समर्थ कि असमर्थ है. ऐसे हम कैसे समझ सकते हैं लेकिन जो ब्रह्मसंबंध नहीं देंगे और जीव दैवी हो तो उसे विमुख रखनेके अपराधी बन जायेंगे. अरे भाई इतने अगर तुम अबुध हो तो सर्वज्ञ पुरुषोत्तम बनकर किस कारण गाममें अपनेको पुजवा रहे हो? तो उसका जबाब देते हैं कि **श्रीमद्वल्लभवंशमें सबही वल्लभरूप.** लेकिन अगर यह बात ठीक है तो कौन दैवी होनेके कारण भगवत्सेवा निभा सकेगा और मर्यादी कि प्रवाही होकर भगवत्सेवा नहीं निभा सकेगा वह क्यों नहीं पहचान सकते? तो कहते हैं कि **ऐसा करेंगे तो सम्प्रदाय उच्छिन्न हो जायेगी.** अरे जब भगवान स्वयं आज्ञा करते हैं कि **दैवी सम्पद् विमोक्षाय निबन्धाय आसुरी मता** तो भगवानकी व्यवस्थाका उच्छेद करके अपनी सम्प्रदाय कैसे टिक सकती है? अतएव इस सम्प्रदायको टिकानेके बहाने वास्तवमें तो अपनी आजीविकाको जिन्दा रखनेकेलिये सृष्टिको टिकाकर रखनेका छल कपट है. आज अपनी सम्प्रदायमें **कृष्णसात्कृत्प्राणै:** कहां हैं? हम इस श्लोकको क्वोट कर सकें ऐसे उत्तम अधिकारी कहां हैं? ओऽहोऽ जरा अपनी शोभाको महाप्रभुजीके उपदेशकी आरसीमें तो देखो! किस कारण ऐसे उलटे सीधे अर्थ हमको स्फुरायमान होते हैं? अतएव ब्रह्मसंबंध देते रहो क्योंकि अज्ञान अथवा ज्ञानसे ब्रह्मसंबंध देनेके बाद **कृष्णसात्कृतप्राण:** हो जाते हैं. किसी प्रकारकी चिंता करनेकी रह ही नहीं जाती. अर्थात् **दाईका घोड़ा खेलता खाता छूटा.** इतना हलकापन कैसे ले लिया इस प्रकरणने? वास्तवमें इतना हलका प्रकरण नहीं है बहुत गंभीर प्रकरण है.

<u>कृष्णसात्कृतप्राण: यह आर्थिक+वाचनिक उपदेश है</u> :

महाप्रभुजीका हृदय और वाणी दोनों यहां बोल रहे हैं, किसी प्रकारका छलकपट महाप्रभुजी यहां नहीं कर रहे. यह उपदेश कब लागू होगा और कब लागू नहीं होगा? जो व्यक्ति ऐसे समझ रहा है कि मैं **कृष्णसात्कृतप्राण:** हूं उसे कुछ उद्वेग हो रहा है. उसकी धुनाई या जुगाली करके इस चिंताके शिकंजेमें कहीं फंस न जाये कि मैं **कृष्णसात्कृतप्राण** होते हुवे भी भगवत्सेवामें क्यों नहीं विनियुक्त हो सकता? उसकी ऐसी चिंताके निवारणके लिये महाप्रभुजी **कृष्णसात्कृतप्राणै:** ऐसे आर्थिक एवं वाचनिक दोनों उपदेशों द्वारा करते हैं. इसलिये मैंने इन अक्षरोंको अंडरलाईन कन्डेन्स किया है. कल मैंने कहा था ना कि **कहना बेटीको सुनाना बहूको.** उसी प्रकार यह आर्थिक उपदेश है.

इसमें फिरसे मैंने ब्रेक्रेट लगाया है कर्ता, बुद्धि और विवेकके उपदेशके लिये. जिससे कि आत्मनिवेदन करनेवालेको अपनी बुद्धि अच्छी तरहसे प्रयोगमें लानी पड़ेगी. ऐसे केसमें इसे निश्चय करना पड़ेगा. या तो तू परिदेवना छोड़ दे अथवा तो तू अपनेको **कृष्णसात्कृतप्राण:** होनेकी धारणाको छोड़ दे. यह दोनों धारणायें एक साथ नहीं निभ सकतीं. वाचनिक उपदेश जो महाप्रभुजीने दिया है वह तो इतना ही है कि **यै: आत्मनिवेदनं कृतं तेषां का परिदेवना.** जिसने आत्मनिवेदन किया है उसे क्या चिंता करनी? इतने अंशसे इतना ही उपदेश दिया है. उसके साथ अर्थगर्भित उपदेश **कृष्णसात्कृतप्राण:** में धड़क रहा है, हृदयकी धड़कनकी तरह. अतएव यह श्लोककी जान है जो भीतर कन्डेन्स् होकर धड़क रहा है.

अब आगेका श्लोक देखते हैं:

तथा निवदने चिन्ता त्याज्या श्रीपुरुषोत्तमे ।

विनियोगेऽपि सा त्याज्या समर्थोहि हरि: स्वत: ।।५।।

श्लोकान्वय और श्लोकका मानसशास्त्रीय विश्लेषण :

६. **{आन्तरिकोपायोपदेश} : तथा श्रीपुरुषोत्तमे** (सम्प्रदानबुद्धिविवेक), ***निवेदने चिन्ता त्याज्या*** **हरिः हि स्वतः समर्थः.**

सरल भावानुवाद: उसी प्रकार मैंने जो अपना आत्मनिवेदन किया वह श्रीपुरुषोत्तमने स्वीकारा कि नहीं, ऐसी चिंता भी नहीं करनी चाहिये. क्योंकि श्रीहरि स्वयं किसीको भी स्वीकारनेमें समर्थ हैं.

विवेकधैर्याश्रयमें कहनेमें आया है कि **प्रार्थिते वा ततः किं स्यात् स्वाम्यभिप्राय संशायत् सर्वत्र तस्य सर्वं हि सर्वसामर्थ्यमेव च.** इस उपदेशसे संबंध रखनेवाला यह छटा वाक्य है. यह भी एक आन्तरिक उपाय ही है. वह शुरुआतमें ब्रेक्रेटके कारण पता चल जायेगा. ***निवेदने चिन्ता त्याज्या*** इसमें निवेदन और चिन्ताके अक्षरोंको तिरछा किया गया है. अर्थात् इस श्लोकमें जो रोग है वह निवेदनके बारेमें चिंताका है. इसे त्याज्या कहकर महाप्रभुजी कहते हैं कि छोड़ो और उसमें फिर दो पाईन्ट पकड़ रहे हैं. महाप्रभुजीका यह वाचनिक उपदेश **हरिः स्वतः समर्थः** है. तुम्हारे निवेदनको स्वीकारनेके लिये हरि स्वतःसमर्थ हैं. अतएव इस बारेंमें तुम्हें चिंता नहीं करनी चाहिये. अब स्वतःसमर्थ कहो कि सर्वसमर्थ आखिरमें बात तो एकही कहलायेगी.

दूसरे शब्दोंमें कहना हो तो जब तुम रेलगाड़ीमें रातकी यात्रा करनेके लिये बैठ गये तो उसके बाद गाड़ीमें सोना कि नहीं सोना इसकी चिंता अगर करो तो महान मानसिक उपाधि पैदा हुई कहलायेगी. क्यों? अगर हम सो जायें और इतनेमें गाड़ीका ऐक्सीडेन्ट हो जाये तो? हमें पता ही नहीं चलेगा! अब

सोचो कि तुम सो नहीं रहे और जागते रहो तो क्या तुम गाड़ीके ऐक्सीडेन्टको रोक सकते हो? अर्थात् भलेही सारी रात डिब्बेमें चक्कर मारते रहो कि सोऊंगा नहीं क्योंकि अगर सो गया और गाड़ी कहीं भटक गई तो? लेकिन गाड़ी अगर भटकनेकी है तो तुम्हारे जागनेसे क्या तुम उसे रोक लोगे? गाड़ी पटरीपरसे कब उतर जाये इसका पता तुम्हें कैसे चलेगा, गाड़ीमें बैठनेके बाद तुम असमर्थ बन जाते हो. जो ड्राईवर चला रहा है उसे अगर नींद आये तो ही गाड़ी भटकेगी लेकिन तुम्हारे जागनेसे कि सोनेसे गाड़ीका ऐक्सीडेन्ट न हो यह बात तुम्हारे हाथमें नहीं है.

समर्थो हि हरिः स्वतः :

सबसे पहल महाप्रभुजी **समर्थो हि हरिः स्वतः** ऐसा कहकर तुमको वाचनिक उपदेश दे रहे हैं कि आत्मनिवेदन करनेके बाद आत्मनिवेदनकी गाड़ीमें तुम सवार हो गये. फिर मैं प्रभु तलक पहुंचूंगा कि नहीं, इसकी चिंता तुम मत करो. प्रभुको तुम्हारे पास जब जिस क्षण पहुंचना होगा, तब उसी क्षण उसी प्रकार वहां स्वयं पहुंचनेमें समर्थ हैं ही. इसीकेलिये वार्तामें कहनेमें आया है **साहिब कैसे मिलें? जैसे हम तुम!**

प्रभुको तुम्हारे पास पहुंचना होगा तो पहुंच ही जायेंगे. अभी तुम गलत जल्दबाजी मत करो कि पहुंचूंगा कि नहीं पहुंचूंगा. तुमने आत्मनिवेदन स्वत:समर्थ श्रीहरिके सामने किया है कि नहीं किया? अपने दिलके ऊपर हाथ धरकर देखो. तुम्हें ऐसा लगे कि तुमने आत्मनिवेदन किया है. बस तो पर्याप्त बात हो गई अब तुम्हें निवेदनके बारेमें चिंता करनेकी कोई जरूरत नहीं है. **समर्थो हि हरिः स्वतः** वह सब सावधानी तुम्हारे लिय ले लेगा.

सोचो कि तुम ऑपरेशन टेबलके ऊपर जाकर सो गये. डॉक्टर तुमको ऐनेस्थेसिया देकर ऑपरेशन करने जा रहा हो

और इसके पहले तुम दूसरी चिंता स्टार्ट करो कि डॉक्टर ठीक तरहसे काटेगा कि नहीं. नहीं काटेगा तो मैं क्या करूंगा? अरे तुमको तो बेहोश कर दगा, अतएव तुम्हारे करनेके लिये रह क्या जायेगा? तुम मुरदेकी तरह पड़े होगे ऑपरेशन टेबलके ऊपर. जो करेगा तो डॉक्टर करेगा. उसमें तुम चिंता करने लगो तो ऑपरेशन करनेमें दिक्कत आयेगी. क्योंकि तुम्हारा ब्लडप्रेशर बढ़ जायेगा ऑपरेशन टेबलके ऊपर. अगर ऐसी चिंता करने लगो कि डॉक्टरको ऑपरेशन करना है लेकिन इस मेरे शरीरमेंसे निकालने वाले हिस्सेको छोड़कर कोई दूसरा ठीकठाक हिस्सा ना निकालदे, कुछ ऐसा ही घोटाला कर दे तो फिर क्या होगा? अब इसकी धुनाई या जुगाली ऑपरेशन टेबलके ऊपर चालू करोगे तो सबसे पहले ता ब्लडप्रेशर बढ़ जायेगा. ब्लडप्रेशर बढ़ेगा तो डॉक्टरको अपनी पंचायत हो जायेगी कि अब ऑपरेशन करना किस तरह बी.पी. बढ़ गया तो. अर्थात् चिंता छोड़ दो. तुमको डॉक्टरके ऊपर विश्वास नहीं (आत्मनिवेदन मत करो) तो ऑपरेशन टेबलके ऊपर सोनेकी जल्दबाजी मत करो. डॉक्टरके पास या तो तुम जाओ मत और अगर चले गये हो तो आनन्दसे सोते रहो जो होगा वह तो होगा ही. मर भी जाओगे तो बेहोश ही मरोगे. मरनेका दु:ख तुम्हें पता ही नहीं चलेगा. लेकिन अगर ऑपरेशन टेबलके ऊपर तुम चिंता करने लगोगे तो ऑपरेशन फेटल हो जायेगा.

Jhiq#"kksÙkes rFkk fuonus fpUrk R;kT;k %

श्रीपुरुषोत्तमे यह **हरिः स्वतःसमर्थ** हैं. तुम्हारेमेंसे क्या काटना है और क्या नहीं काटना इन सबकी जानकारी इसे ठीकसे पता है कि नहीं? और दूसरी बात **श्रीपुरुषोत्तमे** द्वारा महाप्रभुजी आर्थिक उपदेश दे रहे हैं कि तुमने किसे निवेदन किया है? तुम्हें कुछ होश है कि नहीं कि रास्तेके ऊपर रखड़ते

किसी अमथालाल कि फोकटलालको तुमने आत्मनिवेदन किया है? श्रीपुरुषोत्तमको निवेदन करा है और इसे निवेदन करनेके बाद तुम्हें किस कारण चिंता करनी चाहिये? श्रीपुरुषोत्तम सब प्रकारसे समर्थ हैं. निवेदन तुम्हारा सुननेकेलिये, निवेदन तुम्हारा स्वीकारनेके लिये, निवेदन करनेके बाद जो कुछ तुम्हारी प्रोग्रेस है उस प्रोग्रेसको निभानेकेलिये भी.

तो फिर हम भी होशियार हैं. अच्छा यह बात तो पहले ही कह देनी चाहिये थी ना कि निवेदनकी चिंता ही नहीं करनेकी ब्रह्मसंबंध लेते रहो और देते रहो. यह तो पुरुषोत्तमके साथ निवेदन हुवा है, इसमें सेवा करनेकी बात आई कहांसे? **चिन्तासमर्थो हि हरिः स्वतः** श्रीहरि स्वतःसमर्थ हैं. सेवा स्वीकारनी होगी तो स्वीकारेंगे नहीं स्वीकारनी होगी तो नहीं स्वीकारेंगे **समर्थो हि हरिः स्वतः** इसमें अपनेको चिंता करनेसे फायदा क्या? ऐसे हमारे विचार सुनकर तो महाप्रभुजीको भी चिंता होने लगेगी कि यह नवरत्न मैंने किन्हें बता दिया! यह अर्थ नहीं है, तुम्हें आत्मनिवेदन करनेके बाद चिंता उद्वेगके कारण हो रही है कि निवेदन करनेके बाद मेरा निवेदन प्रभुने ऐक्सेप्ट किया कि नहीं किया. इतना जेन्युइन केस तुम्हारा हो तो तुमको उद्वेग होगा ही.

आजके चालू खातेका आत्मनिवेदन होगा तो तुमको क्या चिंता होती है? क्या उद्वेग होता है कि प्रभुने स्वीकार किया कि नहीं किया स्वीकार? मैं भूल नहीं कर रहा और गलत गणना नहीं कर रहा तो मुझे ऐसा लगता है कि ब्रह्मसंबंध लेनेके बाद सत्तरसे अस्सी परसेन्ट वैष्णव कंठी पहरनेकी सावधानी नहीं रखते. दूसरी बात तो जाने दो. मुश्किलसे चालीस परसेन्ट ऐसे वैश्णव होंगे कि जो ब्रह्मसंबंध लेनेके बाद कंठी पहरनेकी सावधानी रखते हैं. शादीके बाद कड़े पहरनेकी सावधानी रखते हैं, शादीके बाद अंगूठी पहरनेकी सावधानी रखते हैं, शादीके बाद

बिन्दी लगानेकी सावधानी रखते हैं, सब लटके मटके करें लेकिन ब्रह्मसंबंध लेनेके बाद किसीको कहो कि कंठी पहरो तो कहते हैं कि गलेमें चुभती है कैसे पहरें? बात खत्म हो गई ना, मंगलसूत्र कि टाई क्यों नहीं गलेमें चुभती? क्योंकि शादीकी है हमने, क्योंकि रिसेप्शनमें जाना है हमको, यह सिन्सीयर निर्धारण है. ब्रह्मसंबंधमें सच्चा निवेदन किया है कि चालू खातेका निवेदन किया है? हमें उसका निर्धार करनेकी भी जरूरत नहीं है कि हुवा कि नहीं हुवा, अब जरूरत ही नहीं है तो कोई उद्वेग इस बारेमें तुम्हें क्यों होगा? उद्वेग नहीं होगा तो इसकी चिंता तुमको क्योंकर होगी? चिंता नहीं होगी तो यह उपदेश तुम्हारे लिये कैसे हो सकता है? यह मुद्देकी बात तुम समझो कि यह उपदेश तुम्हारे लिये है कि नहीं? तुम गलत समझ रहे हो कि यह उपदेश तुम्हारेलिये है. **तथा निवेदने चिन्ता त्याज्या श्रीपुरुषोत्तमे** निवेदनके बारेमें चिंता नहीं करनी. यह चिंता न करनेका उपदेश तुमको कहनेमें नहीं आ रहा.

जिन्हें कहनेके लिये आ रहा है वह कोई दूसरेही विरले अधिकारी होंगे कि जिन्होंने वास्तवमें निवेदन सिन्सीयर्ली किया है. जो व्यक्ति कन्विन्स्ड् है, मान रहा है कि मैंने निवेदन किया और निवेदन करनेके बाद उसका उद्वेग हो रहा है कि प्रभुने मेरा निवेदन अंगीकार किया कि नहीं किया. जो निवेदनको इतनी सिन्सीयर्ली ले रहा है उसके लिये यह उपदेश है. हमने शादीकी हो और वह लड़की पीहरसे ससुराल आती ही न हो तो पेटमें खलबली मच जाती है कि क्या हो गया? क्यों नहीं आ रही? कुछ लफड़ा हो गया कि क्या हो गया? भाग गई आखिर हुवा क्या? यह शादीशुदा आदमीको चिंता होती है. जिसने शादी ही नहीं की, तो ससुरालमें रहना हो तो कोई लड़की ससुरालमें रहे पीहरमें जाना हो तो पीहरमें जाये! चिंता भी नहीं हो और उद्वेग भी नहीं हो.

मैंने एक जोक पढ़ा था. एक भाईने शादीके बाद कौन जाने क्या चिंता हो गई कि इसकी पत्नी इसको वास्तवमें चाहती है कि नहीं. अतएव एक दिन अपनी पत्नीसे पूछा **मैं तुझे कसा लगता हूं?** पत्नी होशियार थी अतएव इसने जबाब देनेके बजाय पूछा **पहले तुम बताओ कि मैं तुमको कैसी लगती हूं?** वह भाई बोला **भलेही तू अतिशय रूपवती नहीं है तो भी खराब तो नहीं लगती.** पत्नी बोली **तुम भी कोई हीरो जैसे सुन्दर तो नहीं हो लेकिन मुझे तुम अच्छे लगते हो.** अब तो भाईके पेटका पानी हिल गया कि मेरी पत्नीको कोई हीरो मेरी तुलनामें अच्छा लगता होगा. अतएव जो फिल्म देखनेके लिये पत्नी इच्छा दिखाये तो तुरत उससे पूछे कि **इस फिल्मका हीरो तुझे कैसा लगता है?** वह हरेक बार ऐसे ही कहे कि **ठीक है लेकिन मुझे बहुत अच्छा नहीं लगता.** अतएव एक दिन थककर पतिने पूछ ही लिया **किस हीरोकी तुलनामें तू मुझे कम आकर्षक मानती है?** पत्नीने पूछा **किस कारण यह प्रश्न कर रहे हो?** तो वह बोला कि **उस दिन तूने मुझे नहीं कहा था कि हीरो जैसे सुन्दर नहीं हो फिर भी तुम मुझे अच्छे लगते हो.** अब पत्नीने फिर जिद पकड़ली कि **पहले तुम बताओ कि कौनसी हीरोइन कि रूपवती स्त्रीकी तुलनामें तुम मुझे कम सुन्दर मानते हो?** अब बाततो वहींकी वहीं खड़ी रह गई. अतएव शादीके बाद ऐसी बेकार चिंतायें करनेसे आपसी अविश्वासके सिवाय दूसरा कुछ भी मिलने वाला नहीं है.

हमने प्रभुको सर्वस्व माना ही नहीं तो फिर हमारा आत्मनिवेदन ऐक्सेप्ट हुवा कि नहीं हुवा इसका उद्वेग होनेका ही नहीं. उद्वेग नहीं होगा अतएव चिंताभी नहीं होनेकी. ये बात ध्यानमें रखो, और चिंता नहीं होनेकी तो यह उपदेश तुम्हें देनेमें आ ही नहीं रहा. यह बात तुम हृदयमें स्पष्ट तरीकेसे समझ लो.

यहां महाप्रभुजी **श्रीपुरुषोत्तमे** कहकर संप्रदानबुद्धिके विवेकको प्रयोगमें लानेको कह रहे हैं कि तुमने किसे आत्मनिवेदन किया है, उसे तुम बुद्धि प्रयोगकरके अच्छी तरहसे समझो. श्रीपुरुषोत्तमको तुमने निवेदन किया है. एक बार यह बात समझोगे तो तुम्हारी सारी चिंतायें निवृत्त हो जायेंगी.

एक दूसरा भी भाष्य विवेकधैर्याश्रयमें इसका हमें खोजना हो तो **आपद्गत्यादिकार्येषु हठस् त्याज्यश्च सर्वथा** वचनमें भी खोज सकते हैं. तुमने निवेदन किया है लेकिन तुम्हारे जीवनमें कोई ऐसी आपत्ति आ गई कि जिसके कारण तुम्हें निश्चय नहीं हो पा रहा कि तुम्हारा आत्मनिवेदन हुवा कि नहीं? तो इस बारेमें तुम हठ मत रखो कि मेरा आत्मनिवेदन हुवा और मुझे वह स्पष्ट नहीं हो रहा. अर्थात् क्या प्रभुको एक दिन आकर तुम्हें कहना चाहिये कि **तेरा आत्मनिवेदन मैंने स्वीकार किया.** पूतनासे बोले थे और कंसको मारने गये थे तो मैंने तो आत्मनिवेदन किया है मुझे क्यों नहीं कहते कि **मैंने तेरा आत्मनिवेदन स्वीकार किया है.** ऐसा गलत हठ तुम मत रखो. **आपद्गत्यादिकार्येषु हठस् त्याज्यश्च सर्वथा.**

अतएव विवेकधैर्याश्रयको देखोगे तो यह जो मनोभूमि है इसके पीछेका हेतु तुम्हारे विचारमें आयेगा. वहां यहां की तुलनामें व्यापक संदर्भमें यह बात कही गई है लेकिन इसे उस संदर्भको थोड़ा संकुचित करके, निवेदनके बारेमें भी, इसको व्यवहारमें कैसे लाना चाहिये यह हम समझ सकते हैं.

श्लोकान्वय और श्लोकका मानसशास्त्रीय विश्लेषण :

७. {**आन्तरिकोपायोपदेश**} : हरिः हि स्वतः समर्थः, **(तस्मात्) श्रीपुरुषोत्तमे** (सम्प्रदानबुद्धिविवेक) *विनियोगे अपिसा* **त्याज्या.**

सरल भावानुवाद: श्रीहरि सब प्रकारसे स्वयं समर्थ होनेके कारण श्रीपुरुषोत्तमको आत्मनिवेदन करनेवालेको उनकी सेवामें अपने विनियोगके बारेमें भी चिंता नहीं करनी चाहिये.

उसके बाद जिस प्रकार यहां निवेदनके बारेमें चिंता हुई उसी प्रकार विनियोगके बारेमें भी ऐसेका ऐसा ही सारा प्रकार, इसके इसी पोइन्टको प्रेशराइज् करना अर्थात् संप्रदानबुद्धिके विवेकका पोइन्ट प्रेशराइज् करना. **हरि स्वतः समर्थः (तस्मात्) श्रीपुरुषोत्तमे विनियोगेऽपि सा त्याज्या** यह बात भी कहनेमें आई है तदानुसार ही है.

अब इसके बाद आता है छटा श्लोक:

लोके स्वास्थ्यं तथा वेदे हरिस्तु न करिष्यति।
पुष्टिमार्गस्थितो यस्मात् साक्षिणो भवताखिला:।।६।।

<u>**श्लोकान्वय और श्लोकका मानसशास्त्रीय विश्लेषण**</u> :

८. **{आन्तरिकोपायोपदेश} : (यूयम्) <u>अखिला: साक्षिणो भवत!</u>** (कर्तृबुद्धिविवेक-धैर्य); **यस्मात्, पुष्टिमार्गस्थितो** हरि: (सम्प्रदानबुद्धिविवेक), **(तस्मात्) *लोके तथा वेदे स्वास्थ्यं तु न करिष्यति*** (सम्प्रदानमतिविवेक)

सरल भावानुवाद: तुम सब इस वास्तविकताके साक्षी बनो कि श्रीहरिने तुम्हारे पुष्टिमार्गमें अंगीकार किये होनेके कारण, वह तुम्हें लोकमें कि वेदमें स्वस्थ नहीं रहने देंगे.

इसमें ध्यानसे तुम देखोगे तो **यूयम् अखिला: साक्षिणो भवत्** ऐसा उपदेश महाप्रभुजीने दिया है कि तुम इस बारेमें

साक्षी बनो. अब **साक्षी** शब्दके दो अर्थ होते हैं: १. कोई मनुष्य कुछ काम करता हो और तुम उसे देख रहे हो. दूसरा एक बहुत विशिष्ट अर्थ भी साक्षीका होता है. तुमने किसी घटना या वस्तुका अनुभव किया हो तो तुम **अक्षिभ्यां सह अयं साक्षिन्** तुमने तुम्हारी आंखोंसे जो कुछ देखा और जाना है, अथात् सुनी हुई बात नहीं कि र्‍यूमर फैलनेके कारण कि लोग भाग रहे हैं और हम भी भागने लगे ऐसे नहीं. अपनी आंखका उपयोग करके देखी जानी वस्तुका जो बयान करता हो वह साक्षी. तो जो आंखों वाला हो, जिसने अपनी आंखोंका प्रयोग किया हो घटनाका तारतम्य निकालनेके लिये वह साक्षी. तो उस अर्थमें महाप्रभुजी कह रहे हैं कि **यूयम् अखिला: साक्षिणो भवत** तुम साक्षी बनो. साक्षी बनो अर्थात् किस अर्थमें कि तुम स्वयं इस बातको देखलो, जानलो अच्छी तरहसे. ऐसे होना है. और तुम तुम्हारे स्वयंके अनुभवके तौर पर देखलो कि एसे होता है कि नहीं इस अर्थमें तुम स्वयं साक्षी बनो. दूसरा कोई काम कर रहा है और तुम उसके साक्षी हो इस अर्थमें नहीं. साक्षीका एक अर्थ विटनेस भी होता है और दूसरा अर्थ एक्जाम्पल भी होता है. तो यहां विटनेसके अर्थमें नहीं, लेकिन एक्जाम्पलके अर्थमें है. तुम इसके एक्जाम्पल बन जाओ.

अब हमारे पेटमें दर्द उठ जाता है कि अगर ब्रह्मसम्बन्ध लेते..... ठाकुरजीकी सेवा करते लोक और वेद दोनोंही बिगड़ने हैं तो ऐसी गलत मुसीबतमें पड़ना ही क्यों? उसमें फिर कहते हैं कि तुम साक्षी बन जाओ कि लोकवेदमें अच्छा नहीं होता. तो बुद्धि जिसकी दिवालिया हो गई हो तो वह साक्षी बने! ब्रह्मसंबंध लेना ही नहीं!

यह अर्थ लेकिन यहां नहीं है. क्योंकि यह बात तुमको कहनेमें आ ही नहीं रही. जिसे कहनेमें आ रही है वह कोई विरला अधिकारी है. यह बात किसे कहनेमें आ रही है? जिस

व्यक्तिने, अपनी जो काई लौकिकता कि जो कोई वैदिकता है उन सब कर्मोंको त्यागे बिना साक्षात् पुष्टिप्रभुको अपने माथे पधराया है. अब लोकवेदात्मक संसारमें प्रभुको पधराया है फिर लोक-वेदमें इसे किसी प्रकारकी कष्ट होता हो तो इस लोकवेदरूपी संसारमें पधराये हुवे प्रभुकी सेवा किस प्रकार निभानी? लोकवेदमें जब मैं स्वस्थ होऊंगा तो प्रभुकी भक्तिमयी स्वस्थता कैसे निभानी? और अगर लोक-वेदानुसार स्वस्थ नहीं रहता होऊं तो वह मेरे प्रभुकी सेवामें लोक-वेद प्रतिबंध उत्पन्न कर सकेंगे कि नहीं? इस प्रकारका कोई बहुत गंभीर उद्वेग किसी अधिकारीको इसमें वर्णित हो रहा है. इस गंभीर उद्वेगकी धुनाई या जुगाली करके किसीको चिंता होती हो कि **अब मैं सेवा किस प्रकार निभाऊं?** महाप्रभुजी ऐसे मुझे नहीं कहते कि दुनियांको छोड़कर हिमालयमें जाओ और वहां बैठकर सेवा करो. महाप्रभुजी मुझे ऐसी आज्ञा देते हैं **गृहे स्थित्वा स्वधर्मत: अव्यावृत्तो भजेत् कृष्णम्** (भक्तिवर्धिनी-२) और घरमें रहकर मैं करता हूं, तो उस घरमें रहनेके लिये महाप्रभुजी स्वधर्मत: अर्थात् वेदकी मर्यादाओंको निभानेका भी उपदेश दे रहे हैं. अब इस परिस्थितिमें मैंने ठाकुरजी पधराये, सेवा शुरु करी और अगर लोक और वेद मुझे रास नहीं आया, कोई न कोई मुसीबत लोकवेदकी खड़ी ही रहती हो तो मुझे सेवा करनी किस प्रकार? यह बहुत उच्च अधिकारीकी समस्या कि उद्वेग है.

लीलात्मक सरस साक्षिभाव और अरसात्मक साक्षिभावका भेद :

उस उद्वेग द्वारा होती चिंताको दूर करनेके लिये महाप्रभुजी कहते हैं कि यह भगवल्लीलोपयोगी साक्षिभाव तुम अपने भीतर लाओ. और इसे ज्ञानमार्गीय साक्षिभाव समझनेकी भूल कभी मत करना.

सोचो कि एक विवाहके लिये तुम्हारे पास तीन विवाहार्थी उपस्थित हों. प्रकृत संदर्भमें एक विवाहार्थी हरि हैं, दूसरा वेद और तीसरा विवाहार्थी लोक है. अब उनमेंसे तुमने एकको अपने वरके रूपमें चुना तत्पश्चात् दूसरे विवाहार्थीके ऊपर आंख चलाओ तो विचारो यह विवाहार्थी सहन किस प्रकार करेगा? इसे ऐसे लगेगा ही कि इस ओर तुम्हें जाने ही नहीं दूं. अर्थात् तीन विवाहार्थीयों मेंसे हमने एकको अपना हाथ कन्यादानमें सोंप दिया है. अब यह तुमको दूसरेकी ओर कैसे ताकने देगा? ऐसा भाव क्यों नहीं विचारते? तुमको इसमें किसी प्रकारका कच्चापन लगता है तो इस (हरि) विवाहार्थीको नहीं दूसरे विवाहार्थीयोंको वर लो, कौन ना करता है तुम्हें. तुम्ह वेदके साथ ब्याह जाना चाहिये था, तुम्हें लोकके साथ ब्याहना चाहिये था. तुम्हारे पास तीनों केन्डिडेट खड़े थे, उनमें से तुमने जो स्वयं स्लिेक्ट किया है उस केन्डिडेटको तो अब इसका भी कुछ अधिकार, तुम्हें मान लेना चाहिये कि वह लोक कि वेदमें तुम्हें ताकने न द. उसमें तुम्हें बुरा नहीं लगना चाहिये.

जैसे कि मुसलमानों या अपनी भी मध्यकालीन प्रथानुसार शादीके बाद घरकी बहू घूंघट ताननेका नियम पाले, वैसे ही यहां लोकवेदका घूंघट पालनेकी प्रेरणा दी जा रही है. घूंघटमेंसे परपुरुषको जितना देख सकते हो उतना लोकवदको देखनेमें तकलीफ नहीं है लेकिन लोकवेदके साथ आंख मिलानेकी मनाही करनेमें आ रही है. लोकवेद तुम्हें दिखाई दे रहा है लोकवेदके बीच जीवन जीने कि मिलने जुलनेकी मनाही नहीं है लेकिन आंखमें आंख डालनेकी मनाही है. तुम्हें उसके साथ हाथमें हाथ डालकर घ्मना है कि जिसके साथ तुम्हारी शादी हुई है, उसके साथ घूमना है. लोकवेदके हाथमें हाथ डालकर हमें नहीं घूमना है. अब आसपासमें लोकवेद हो और इसके हाथमें हाथ नहीं डाल सकें तो इसकी चिंता क्यों करनी? आसपास कहीं लोक होगा, कहीं वेद होगा, जितना व्यवहार होता हो उतना कर

लेना बाकी तो दूसरेके साथ घनिष्ठता बढ़ानेका झंझट करे तो इसके साथ शादी क्यों की थी. अतएव फ्रीलान्सर अगर हो तो एकके साथ ब्याहना नहीं चाहिये उसके बाद तो जहां जिसके साथ घूमना फिरना हो तो चलेगा. लेकिन फ्रीलान्सिंग अगर नहीं करनी हो और किसी एकके साथ कमिट होना हो तो इसका भी कोई अधिकार तुम्हें स्वीकार करना चाहिये. इसकारण लोकवेदमें प्रभु तुमको स्वस्थ नहीं रहने देते.

प्रेमके बारेमें प्रवर्तमान आधुनिक फैशनके कारण लोगोंमें पुराने जमाने जितनी प्रेमकी सामर्थ्य नहीं रह गई. इस कारण पर-असहिष्णु कि परप्रति ईर्ष्या रहित प्रेमका गुणगान आधुनिक उपदेशकों द्वारा अधिक गाया जाता है. *लव् विदाउट् कम्टिमेंट् कि नॉन कम्टिेड् लव्* अर्थात् किसीके साथ बंधे बिना उससे स्नेह करनेकी मनोवृत्ति आज आदर्श स्नेहके तौरपर अच्छी लगती है. अतएव पुराने जमानेकी, अनन्याश्रय कि अनन्यासक्ति कि एकान्तिक भक्ति अथवा तो अनन्यसांप्रदायिक निष्ठा, यह सारी बातें हमारी आधुनिक मानसिकता, आधुनिक व्यवहार कि आधुनिक चिंतन कि हमारी जीवनशैलीमें रास ही नहीं आती. अतएव इस मुद्देको समझने कि समझानेमें थोड़ी तकलीफ तो स्वीकारनी पड़ेगी ही. अतएव इस मुद्देकी सच्ची समझके लिये प्रेमतत्वकी पुरानी दृष्टि लाये बिना बात समझमें नहीं आ सकती.

यह उद्वेग किसे होता है? जिसने वास्तवमें प्रभुके श्रीहस्तमें अपना हाथ सोंप दिया हो और वह कन्विन्स्ड् है कि मैंने प्रभुको अपना सब कुछ अर्पण किया है और वह लोकवेदके बीचमें ही करा है. उसके बाद लोकवेदमें हमको डिफिकल्टी आती हो तो ऐसी भावना करनेकी होती है. कोई हमें देखे वह हमें अच्छा लगता हो कि हमें किसीको देखना अच्छा लगता हो तो हम ब्यूटीकोन्टेस्टमें ही भाग क्यों न लें! विवाहके लिये क्यों

जायें? वहां सबही देखते हैं और आनन्द आनन्द हो जाये तालियां भी बजें! हमें लेकिन ब्यूटीकोन्टेस्टमें भाग नहीं लेना- अपनी ब्यूटीको किसीको समर्पित करना है. अब जब किसीको समर्पण करना है तब इस ब्यूटीको सब एन्जोय करें ऐसा हमारा कोई अभिगम होना नहीं चाहिये और जिसको अपनी ब्यूटीका समर्पण किया है उसे भी यह अच्छा नहीं लगता. समर्पण सबको करना था तो मुझे क्यों पकड़ा? अतएव **लोके स्वास्थ्यं तथा वेदे हरिस्तु न करिष्यति पुष्टिमार्ग स्थितो यस्मात्.**

भगवानने कोई चालू खातेमें जैसे द्रौपदीके पांच थे, ऐसे तुमको द्रौपदी मानकर दोमें एक अपनेको शामिल नहीं किया कि लो मैं तीसरा भी आ गया! ऐसे भगवानने अपने आपको लोकवेदके बीचमें शामिल नहीं किया. लोकवेदमें शामिल नहीं किया इसका अर्थ कि तुम्हारी लोकासक्ति और तुम्हारी वेदासक्तिमें अपनी आसक्तिको खड़ा नहीं किया लेकिन तुम्हारी लोकासक्ति और तम्हारी वेदासक्तिका अपनी आसक्तिमें उदात्तीकरण करा है. अतएव जब तुम्हारी लोकासक्ति और तुम्हारी वेदासक्तिका धीरे धीरे भगवदासक्तिमें उदात्तीकरण अभिप्रेत है उस समय भगवान भी लोक कि वेदमें तुम अधिक आसक्त होओगे तो तुमको स्वस्थ नहीं रहने देंगे. ऐसा भाव विचार करोगे तो जो कुछ लोक कि वेदासक्तिके कारण तुमको जो कुछ भी मुसीबत खड़ी हो रही है, उसमें तुम्हारा एक बहुत सुंदर भाव विचारनेको मिल जायेगा कि पुष्टि प्रभु मुझे अपना अनन्य बनाना चाह रहे हैं. ऐसे भावके कारण फिर तुम्हें लोकमें कि वेदमें होती कठिनाई भगवदासक्तिकेलिये किसी भी दिन चिंता नहीं खड़ी कर सकेगी. इसी कारण महाप्रभुजी आज्ञा करते हैं कि **लोके स्वास्थ्यं तथा वेदे हरिस्तु न करिष्यति पुष्टिमार्गस्थितो यस्मात्.**

इस लोक वेदकी मर्यादाके भीतर किसी प्रकारका आपसमें एक करार है एक दूसरेके साथ बंधे रहनेका. पुष्टिप्रभुभी इस लोकवेदमर्यादाके भीतर तुम्हारे साथ पुष्टिमार्गकी रीतिसे सेव्य होनेके करारसे बंधे हैं. जैसे तुम प्रभुके साथ पुष्टिमार्गके करारसे बंधे हुवे हो. इसमें तुम्हें लोक वेदमें स्वस्थ कैसे होने दें? जब आधुनिक फैशनानुसार तुमको लोकवेदमें प्रभु स्वस्थ होने दें, तो स्वयं प्रभुकी भी लोकवेदमें स्वस्थ होनेकी इच्छा हो जायेगी. फिर वह तुमसे बंधे हुवे नहीं रहेंगे, फिर वह तुम्हारे माथे नहीं बिराजेंगे, पब्लिक ट्रस्टमें बिराजेंगे. फिर पर्पेच्युअल माईनोरिटी राईटके प्रोटेक्शनकेलिये चेरीटि कमिश्नरका भी इन्टरफियरेन्स् प्रभु मांगेंगे. क्योंकि फिर तो प्रभुभी समझ जायेंगे कि **तुम लोकवेदमें स्वस्थ रहना चाहते हो. तो मेरे लिये तुम्हारे माथे बिराजनेकी बजाय चेरिटी कमिश्नर क्या खराब है? ट्रस्टी क्या खराब हैं? लोकवेद दोनों मेरे बनेंगे. मठड़ीयां आयेगीं, मोहनथाल आयेगा, सेवा आयेगी, भेंट आयेगी. सब आयेगा और महाराज रहें तो रहें और जायें तो जायें. मैं कहां बंधा हुवा हूं महाराजके साथ!**. फिरतो प्रभु भी आधुनिक युगके प्रेमके इस गूढ़रहस्यको समझ जायेंगे. लेकिन मूलमें तो तुम प्रभुके साथ ऐसी रीतिसे बंधे हुवे नहीं हो. तुम तो प्रभुके साथ पुष्टिमार्गके संबंधसे बंधे हुवे हो. प्रभु हमारे माथे बिराजते हैं यह स्वीकारेंगे तो प्रभु भी कहेंगे कि **मैं अगर तेरे माथे बिराजता होऊं तो तुझे मेरे साथ बिराजना पड़ेगा. मुझे छोड़कर अब तू किसी दूसरे लक्ष्मीवाहनकी चापलूसी नहीं कर सकता! करेगा तो तेरा सत्यानाश होगा.**

यदा बहिर्मुखाः यूयं भविष्यथ कथंचन। तदा कालप्रवाहस्थाः देहचित्तादयोऽपि उत।। सर्वथा भक्षियिन्ति युष्मान् इति मतिः मम। (शिक्षाश्लोकी : १-२)

ऐसे हमारा सत्यानाश होनेका है और प्रभु भी ऐसी लीला आधुनिक पुष्टिमार्गमें जहां तहां दिखा ही रहे हैं, नहीं दिखा रहे ऐसा नहीं है. चिंता हो तो करो, न चिंता होती हो तो न करो. उद्वेग होगा तो चिंता होगी, उद्वेग ही नहीं होगा तो इसकी चिंता भी नहीं होगी!

हमारे मुम्बई समाचारमें अपनेही एक वैष्णवपुत्र श्रीसौरभभाईका एक सुंदर लेख आया था **गुडमॉर्निंग** कौलममें. वास्तवमें इससे अच्छी मोर्निंग क्या हो सकती है? इसमें वह कहते हैं कि किस कारण दर्शन बंद करनेमें आते हैं? खुले रहने दो दर्शन अठारह घंटे, सुबहसे लेकर रात तलक ठाकुरजीका श्रृंगार करना हो तो हमारे सामने श्रृंगारो, भोग धरने हों तो हमारे सामने भोग धरो. यह भाई लिखता है इसमें, कि दर्शन करनेमें रामकृष्ण मंदिरमें जाओ तो आंख मींचकर ध्यान धरनेकी कितनी सहूलियत है. ऐसी सहूलियत पुष्टिमार्गीय हवेलियोंमें कहां मिलती है?

अगर आंख मींचकर मंदिरमें जाना हो तो फिर टेरा खुलाहो कि टेरा बंद हो इसमें क्या फरक पड़ता है? गुड मार्निंग पढ़कर मैंने विचारा कि महात्मा गांधी ऐसी आज्ञा कर गये हैं **ग्राहकको हर समय भगवान समझो.** हमने ग्राहकोंको आमंत्रित किया है, भक्तोंको आमंत्रित नहीं किया. अतएव अब भगवान स्वरूपमेंसे बाहर निकल कर उन दर्शनार्थी ग्राहकोंमें बस गया है. अब यह जो डिमान्ड करे तो तदानुसार सप्लाई तो करनी ही पड़ेगी. उन्हें कैसे ना कर सकते हो? ग्राहक ऑल्वेस् भगवान है. महात्मा गांधीने भारत स्वतन्त्र होनेसे पहले ही सब दुकानदारोंको बोध पाठ दिया था कि ग्राहकको किसी भी दिन दूसरी प्रकारसे मत देखो. ग्राहकको भगवान समझो. ग्राहक किसी भी दिन गलत नहीं हो सकता. अब ग्राहक अगर ऐसे कहे कि अठारह घंटे खोलो तो अठारह घंटे खोलने पड़ेंगे. ग्राहक कहेगा

कि बंद ही मत करो तो बंद नहीं कर सकते तुम, ग्राहक कहेगा कि भगवानको क्यों पोढ़ाते हो? यह तो स्वयं रातको जागकर दुनियांकी सावधानी रखता है तुम्हारे खाये हुवेको खून बनानेके लिये तो तुम पोढ़ानेवाले कौन? तो अब तुम्हें जगाना ही पड़ेगा श्रीनाथजीको. ग्राहकको किसी भी दिन तुम निराश नहीं कर सकते. क्योंकि मंदिरकी दुकान जो खोली है तो देवमूर्तिको नहीं लेकिन ग्राहकको ही भगवान मानना पड़ेगा!

अब तुम्हें यह तय करना है कि महात्मा गांधीने जिन ग्राहकोंको भगवान कहा उन ग्राहकोंकी सेवा तुम्हें करनी है कि महाप्रभुजीने जिन्हें भगवान माना उनकी सेवा करनी है? यह तुम्हें ही तय करना पड़ेगा. इन बिचारोंका दोष नहीं है यह तो ग्राहक हैं. इन्हें जो वस्तु चाहिये उसीकी मांग करेंगे. इस टेरेको खुलानेके बाद अपनी आंख मींच लेंगे. लेखका मूल मुद्दा समझो कि टेरा खुला रहना चाहिये और मैं आंख मींचूंगा.

किसी दिन तुम्हारी पत्नी ऐसा करे तो? तुम आओ और वह आंख मींच ले कि **पतिदेव सांझे घेरे आवीयां रे लोल!** और जब ऑफिस जाये तबही आंखे खोले, घरमें आये अर्थात् आंख मींच कर बैठ जाये कि ध्यान धर रही हूं. क्योंकि मुझे अतिशय प्यार आ रहा है. फिर तो सास अपने बेटेकी सावधानी लेनेकेलिये कुछ निर्देश करे तो सासको भो धमका दे कि क्या समझा है मेरे पतिको! क्या तुम्हारे बापकी पूंजी है? मैं आंख मींचकर बैठूंगी इसके सामने. अब सास-बहूके झगड़ेमें पति बेचारा कहां जाये? ऑफिससे आनेके बाद पत्नी आंख मींच कर बैठ जाये तो यह क्या करे? अतएव ग्राहकको उदास नहीं कर सकने वाली इस संबंधकी गरिमा पति-पत्निके बीच हो तो इसमें राईट कि रौंगको हम डिसाइड कर सकते हैं लेकिन ग्राहक और विक्रेताके संबंधोंमें तो हमेशा ग्राहकके आधीन ही रहना पड़ेगा. इसका कोई उपाय कि जबाब नहीं है अपने पास. मुम्बई

समाचारका आर्टिकल पढ़कर देखो वास्तवमें सच्चा आर्टिकल है. लेकिन यह सच्चा कब है कि जब हम पुष्टिप्रभुको बेचना चाह रहे हों तब. बेचना नहीं हो तो हम छाती ठोक कर कह सकते हैं कि हमारे पुष्टिप्रभुके साथ तुम्हारा क्या लेना देना? तुम्हें ध्यान धरना जहां अच्छा लगता हो वहां जाकर ध्यान धरो, पुष्टिमार्गीय हवेलीमें कहा चढ़े जा रहे हो? लेकिन यह कहनेका अपना साहस आज क्यों नहीं रहा? प्रसाद बेचना है, तुलसी फूल बेचने हैं, मनोरथकी झांकियां बेचनी हैं, ब्रह्मसंबंधकी कंठी बेचनी है, हरेक चीज बेचनी है, तो फिर हम इनको किस प्रकार अप्रसन्न कर सकते हैं. यह तो बेसिक कमजोरी बन गई है अपनी. ग्राहकको जो माल चाहिये वह ही उसे सप्लाई करना पड़ेगा.

हम लोक और वेदमें स्वस्थ रहना चाहेंगे तो फिर प्रभु भी लोकवेदमें स्वस्थ बन जायेंगे. अगर हम प्रभुसे ऐसी अपेक्षा रखेंगे कि आप लोकवेदमें स्वस्थ मत बनो. आप हमारे घरमें हमारे माथे महाप्रभुजीन जो पद्धति बताई है तदानुसार हमारी सेवा अंगीकार करो. आपको दुनियां अच्छी लगती है तो सार्वजनिक हवेलियोंमें पधारकर बिराजो. हम तो दुनियांके सामने आपको स्नान नहीं करा सकते. क्योंकि आपको नजर लग जानेका भय है! दुनियांके सामने आपको भोग नहीं धर सकते. ठंड पड़ती हो तो हमें लगता है कि तुम्हें भी गर्माहट चाहिये किवाड़ खोलकर उघाड़ नहीं सकते. गरमीमें हमें लगता है कि आपको भी गरमी सताती होगी अतएव दर्शनार्थी लोगोंकी अधिक होती भीड़के धूलके कारण तुम्हें भी गरमी अधिक सतायेगी. ऐसे महाप्रभुजीके पुष्टिप्रभुको गरमी और ठंड लगती है सर्वोद्धारक परमात्माको ठंड नहीं लगती और ना ही भूख लगती है और ना ही नींद आती है और वह ना ही जागता सोता है. बात समझो कि भक्तोद्धारक प्रभुको यह सब लगता है. भक्तके मनोरथको संतुष्ट करनेकेलिये और महाप्रभुजीके भावानुसार भावनासे जो

तुम इसे बांधोगे तो फिर यह भी तुमसे कुछ तो अपेक्षा रखेगा कि मैं तेरेसे पुष्टिमार्गमें बंधा हुवा हूं तो तू मर्यादामें जायेगा तो वह मुझे कैसे अच्छा लगेगा? तू प्रवाहमें जाये तो मुझे कैसे अच्छा लगेगा? इसका स्पष्टीकरण तू कर. मुझे तो हाथ पकड़कर बांध लिया किसीके पास जाने नहीं देता और तू सबको आंख मार कर इशारे करता है. ऐसी रीतिसे कैसे चलेगा यार! नवरत्नकी गंभीर बात है समझे. इसे हलकेपनसे मत लेना. चिंता करने जैसी बात है **लोके स्वास्थ्यं तथा वेदे हरिस्तु न करिष्यति पुष्टिमार्गस्थितो यस्मात् साक्षिणा भवत अखिला:.**

तुम इसके एक्साम्पल् बनो अगर तुमने प्रभुको पुष्टिमार्गके संबंधसे ऐसी रीतिसे पकड़ा है तो. तुमने पाणिग्रहण किया है तो इस पाणिग्रहणकी प्रक्रिया ही ऐसी है कि तुम्हारा हाथ इसके हाथमें है और इसका हाथ तुम्हारे हाथमें है. तुम दोनोंका पुष्टिमार्गीय पाणिग्रहण हुवा है. पुष्टिमार्गीय पाणिग्रहणके बाद यह ऐक्स्ट्रा केरीक्युलम् एक्टिविटी नहीं चलेगी. लोकमें लौकिक फैशनको अनुसरो कोई बात नहीं परन्तु यह समझ लो कि पुष्टिप्रभुके लिये तो पुष्टिफैशन ही तुम्हें जीना पड़ेगा. आज नहीं समझ रहे हो तो कल समझना पड़ेगा. परसोंके दिन समझ लो नहीं तो पचास साल बाद समझना तो पड़ेगाही. पुष्टिमार्गीय रीतिनुसार हमें जीना है तो हमें यह बात समझनी पड़ेगी, समझनी पड़ेगी और समझनीही पड़ेगी.

यहां तुम्हारे अन्दर भगवत्सेवाका कर्ता तरीके जो विवेक और धैर्य अपेक्षित है उसे जगानेकेलिये वाचनिक उपदेश महाप्रभुजी दे रहे हैं. उससे अंडरलाईन वाले अंशके पीछे **कर्तृबुद्धिविवेक+धैर्य** का ब्रेकेट् लगाया है. वहां **पुष्टिमार्गस्थितो हरि:** अक्षरोंको कन्डेन्स् किया है जिससे आर्थिक उपदेशकी बात याद कर लेना. वैसे ही *लोके तथा वेदे स्वास्थ्यं* तु न करिष्यति वह हमने अपना समर्पणका संप्रदान किसे अर्थात् लोकवेदातीत पुष्टिप्रभुको बनाया है वह संप्रदानमतिका विवेक सूचित किया है.

अब उसके बाद आता है:

सेवाकृतिर् गुरोः आज्ञा बाधनं वा हरीच्छया।
अतः सेवापरं चित्तं विधाय स्थीयतां सुखम्।।७।।

<u>**श्लोकान्वय और श्लोकका मानसशास्त्रीय विश्लेषण**</u> :

९. **{कायिकान्तरिकोपायोपदेश} : सेवाकृतिः *गुरोः आज्ञा (नुसारिणी भवति),*** **हरीच्छया बाधनं, <u>वा</u>**(क्रियाप्रज्ञाविवेक) **अतः सेवापरं चित्तं विधाय सुखं** (कर्तृप्रतिभाविकविवेक+धैर्योपदेश) **स्थीयताम्.**

सरल भावानुवादः भगवत्सेवाकी शुरुआतमें गुरुकी आज्ञा निभानेका आग्रह रखो परन्तु उसे निभाते हुवे भगवदाज्ञा गुरुकी आज्ञासे विपरीतभी कुछ करनेकी हो तो गुरुकी आज्ञाका बाध हो सकता है. अतएव भगवत्सेवासुख हमसे जैसे बनता हो वैसे बनाना. महाप्रभुजी अपने पुजापेको बढ़ानेके लिये नहीं लेकिन पुष्टिजीवकी पुष्टिप्रभुपरता बढ़ानेकेलिये सेवाका उपदेश देना चाह रहे है:

विवेकधैर्याश्रयमें इस बारेमें **विशेषतः चेद् आज्ञा स्याद् अन्तःकरणगोचरः तदा विशेषगत्यादि भाव्यं भिन्नन्तु दैहिकाद् आपद्‌गत्यादिकार्येषु हठः त्याज्यः च सर्वथा** (विवेकधैर्याश्रय : ३-४) इन शब्दोंमें इस सूत्रका भाष्य श्रीमहाप्रभुजीने किया है. लेकिन हमने पहले यहां देखा कि यह कायिक उपदेशभी है और आन्तरिक उपदेश भी है. **सेवाकृतिः गुरोः आज्ञा** सेवा किस प्रकार करनी? जैसे गुरु आज्ञा करे तदानुसार करनी. यह कायिक उपदेश है और **बाधनं वा हरीच्छया** इसमें **वा**के ऊपर अन्डरलाइन करी है. तुम्हें इसका विचार होगा कि **वा** इतनेही

अंशपर अन्डरलाईन क्यों करी लेकिन मूल **वा**में हरेक बात महाप्रभुजीने कह दी है. तुम्हें गुरुकी आज्ञानुसार सेवा करनेका ऐसा दुराग्रह नहीं रखना कि जिसमें भगवान स्वयं असंतुष्ट हो जायें और भगवानको संतुष्ट करनेका ऐसा भी मनेवांछित स्वच्छंदतापूर्ण दुराग्रह भी नहीं रखना कि तुमको गुरुकी आज्ञाका भान या परवाह ही न रह जाये. यह बहुत ही डेलीकेट बेलेन्स तुमको निभाना है. अतएव तुमको एक विकल्प देनेमें आ रहा है कि दोनोंमें से यह कि वह. यहां जो उपदेश महाप्रभुजीका है यह विकल्पका उपदेश है. दोनोंमें से कोई भी एक प्रकार संभव हो सकता है. लेकिन यह किस रीतिसे संभव है, इसका तुमको अवसर, इसकी संगति तुम्हें समझनी पड़ेगी. अर्थात् मुख्य उपदेश जो विकल्पमें है इसमें एक बात आई **अत: सेवापरं चित्तं** यह आर्थिक उपदेश है.

मूलमें यह अतिशय सावधानीके साथ ध्यानम रखनेवाली बात है कि गुरु आज्ञानुसार तुमको सेवा करनी है. वैसे करते तुम्हारा चित्त सेवापर रहता है अथवा अहंकारपर, ममतापर, लोकपर, कि वेदपर रहता है? किसमें तत्पर रहता है? क्योंकि सेवापर चित्त नहीं रहता तो गुरुकी आज्ञानुसार सेवा भी कर रहे हो वह भी व्यर्थ है और गुरुकी आज्ञाका बाध करके सेवा कर रहे हो तो भी व्यर्थ है. **दाईका घोड़ा खेलता खाता ही बात करते ही छुट्टा पड़ जाता है** अब प्रभुकी इच्छासे गुरुकी आज्ञाका बाध हो सकता है, अतएव सबही ऐसे कहेंगे कि हमें तो साक्षात् प्रभुने आज्ञा करी. अब हम कहां पूछने जायेंगे?

कितनेही शास्त्री लोग ऐसे ही करते हैं. यद्वा तद्वा कोई भी कथा करें और **प्राचीन भगवदीयोंके मुखारविन्दसे ऐसे सुना** ऐसा कह देते हैं. अब पूछना किस प्रकार कि **तुमने ऐसा सत्संग किया था कि नहीं किया था?** हरेक बातको प्राचीन नित्यलीलास्थ पूज्य प्रात:स्मरणीय महाराजश्रीके मुखारविन्दसे

सुनी हुई बताते हैं. भूतलस्थित महाराजश्रीके वचनामृत कहें तो हम स्पष्टीकरण करवा सकते हैं. नित्यलीलास्थितके वचनामृत कहें तो, कौन साहस करे वहां नित्यलीलास्थ प्रात:स्मरणीय महाराजश्रीसे पूछनेकेलिये जानेका. कोई साहस करता ही नहीं.

आखिरमें हम सब बहुत ही होशियार व्यक्ति हैं स्नेही नहीं. स्नेह हो तो तदानुसार सब व्यवहार हों और चतुरता हो तो चतुराई अनुसार सब वर्ताव होता है, अतएव ऐसी आज्ञा हमको कहते हैं **बाधनं वा हरीच्छया** फिरतो लोग रोज नई नई प्रक्रिया लेकर आयेंगे कि प्रभुने साक्षात् मुझे आज्ञा करी कि मेरे आगे नमाज पढ़ो, कैसे ना करनी? महाप्रभुजी ना करते होंगे तो भी **बाधनं वा हरीच्छया** प्रभुने स्वयं मुझे आज्ञा दी कि मुझे स्कूटरके फ्रंट पोकेटमें बिठा, फ्रोक पहरा, मिनी स्कर्ट पहरा. अब कैसे ना करनी? ना करें तो कहते हैं **ना ना श्यामा सखीका शृंगार है.** साड़ी और चोली तो पुरानी सखीयां पहरती थीं अब नई तो मिनी स्कर्ट पहरती हैं. साक्षात् प्रभुने आज्ञा करी कि नहीं तो कैसे पता चलता! क्योंकि **बाधनं वा हरीच्छया** पर कोई नकेल नहीं पड़ सकती.

महाप्रभुजी कसौटी बताते हैं **अत:सेवापरं चित्तं** महाप्रभुजीने जो सेवाका प्रकार वर्णन किया है उस सेवामें तुम्हारी चित्तकी तत्परता बढ़ती हो तो इसके अन्तर्गत महाप्रभुजीकी कोई सेवाकी प्रणालिकाका कि कोई आज्ञाका बाध करके भी सेवा हो सकती है. और महाप्रभुजीने जो सेवा वर्णन नहींकी उस प्रकार जो सेवा करोगे तो वह सेवा ही नहीं है, तब चित्त सेवापर कैसे माना जा सकता है? ठाकुरजीके आगे नमाज पढ़नी सेवा है कि नहीं? हां या नामें तुम जबाव विचारो. क्यों सेवा नहीं है? जो सेवा नहीं होतो मस्जिदमें ये लोग क्या भगवानको गाली देते हैं? गालीतो नहीं देते ठाकुरजीको. जूते पहरकर कुरसीके ऊपर बैठकर पार्थना करनी सेवा है कि नहीं

चर्चकी तरह? सब क्रिश्चियन क्या गधे हैं कि भगवानका अपमान करते हैं? किस प्रकार निर्णय लें इसका? निर्णय लेनेकी एकही कसौटी कि महाप्रभुजीने यह प्रकार प्रार्थनाका वर्णनही नहीं किया कि ठाकुरजीके सामने जूते पहरकर हम कुरसीके ऊपर बैठकर प्रभुको प्रार्थना करें. **ब्रज भयो महेरके पूत जब यह बात सुनी. सुनि आनंदे सब लोग गोकुल गनित गुणी.** पदकी ताल जूते बजाकर दें. अरे बैठकर आलती पालती मारकर झांझ बजाओ जूतेको क्या बजा रहे हो? तो बोलेंगे हमें जोश आ गया साक्षात् आज्ञा करी **बाधनं वा हरीच्छया** तो फिर कहां जाना? अतएव **सेवापरं चित्तम्** महाप्रभुजीने जो सेवाका प्रकार वर्णित किया है उस सेवामें तुम्हारा चित्त तत्पर होता हो तो तुम प्रभुकी आज्ञासे महाप्रभुजीकी आज्ञाका भी उल्लंघन कर सकते हो और महाप्रभुजीने जो सेवाका प्रकार वर्णित नहीं किया उस प्रकारसे जो तुम सेवा करना चाहते हो तो तुम्हारा चित्त ही सेवामें तत्पर नहीं है. तो यह उपदेश तुम्हारे लिये नहीं है समझलो. यह कोई दूसराही व्यक्ति है जो सेवामें महाप्रभुजीकी आज्ञानुसार व्यवहारमें लानेकेलिये बंधा हुवा है. तुमतो महाप्रभुजीके उपदेश और भावसे अलग होकर छुटकारा पाना चाह रहे हो. महाप्रभुजीने कहा है **तनुवित्तजा** लेकिन हमें साक्षात् प्रभुने आज्ञा करी है कि तू मेरे लिये छप्पनभोगका मनोरथी खोजके ला, तो फंस गये ना बिचारे महाप्रभुजी! साक्षात प्रभु आज्ञा करें तो जायें कहां महाप्रभुजी? जब महाप्रभुजीने आज्ञा करी है तदानुसार सेवाप्रकार करनेकेलिये जो व्यक्ति बंधा हुवा है उसके स्वयंके हृदयमें ऐसा भाव रहेगा ही कि महाप्रभुजीने जो आज्ञा करी है तदानुसार ही मुझे सेवा करनी है. इतने कमिटेड् व्यक्तिको जब प्रभु कोई आज्ञा करें कि **मेरी सेवा ऐसे नहीं ऐसे कर** तब महाप्रभुजी द्वारा वर्णित सेवा करनेके बजाय इस प्रकार जो तत्परता चित्तकी बढ़ती हो तो महाप्रभुजीकी आज्ञाका भी बाध हो सकता है.

भोजनकरनेसे शरीरमें शक्ति रहती है लेकिन किसी समय उल्लंघन करनेसे भी, उपवास करनेसे भी, शरीर स्वस्थ रह सकता है. यह कहनेका अधिकार किसे? जो नित्यप्रति अच्छी तरह खाता हो उसे ही ना. जिसे कुछ खाना ही नहीं है, जिसके पेटने जबाब ही दे दिया हो, पेटमें केन्सर हो गया हो, कुछ भी खाया ही नहीं जाता. शरीरमें नलियों द्वारा ग्लुकोस दिया जाता हो, वह कहे कि उपवास करनेसे शरीर स्वस्थ रहता है तो उसकी बातमें दम कितना! **अतः सेवापरं चित्तं विधाय स्थीयतां सुखम्.** इसके बादमें मिलती कोई भी सेवा और मिलता कोई भी प्रकार और मिलती कोई भी आज्ञा और मिलता कोई भी सानुभाव और मिलता कोई भी स्वप्नदर्शन होगा ही. जैसे नित्य हम भोजन करते हैं तो किसी दिन उपवास करनेसे शरीरका स्वास्थ्य अच्छा होता है. नित्य तुम सोते हो तो किसी दिन तुम्हारे विवाहके प्रसंग कि किसी सेवाके प्रसंगमें जागनेका मजा आयेगा. नित्यप्रति इन्सोम्निया हो ना तो तुम्हें जागनेका मजा ही नहीं आयेगा. यह जागना तुम्हारे लिये मुसीबत बन जायेगा. ऐसे ही महाप्रभुजीद्वारा उपदिष्ट सेवाके प्रकारमें तुम्हारा चित्त तत्पर हो और उसमें तत्पर रहना भी चाहते हो तो; और उसमें तत्पर रहनेकेलिये एकाद महाप्रभुजीकी आज्ञाका उल्लंघन भी हो जाता है तो कोई दिक्कत नहीं है. जैसे किसी घरमें अपनेको रहना है और किसी समय हमें दीमकका ट्रीटमेंट करना पड़े, तो एकाद दिन दीमकका ट्रीटमेंट करानेकेलिये घरको खाली भी करना पड़ता है. क्यों? क्योंकि जिस घरमें रहना है वह दीमकके कारण खत्म न हो जाये. अथवा तो कईलोग दिवालीके पहले रंगरोगन फिरसे कराते हैं तो भी घरको खालीतो करना ही पड़ता है. हेतु अंतमें यह कि घरमें अच्छी तरह रहना ही है. तो एक दिन अगर घरमें नहीं रहे तो उसका अर्थ यह नहीं है कि घरमें रहना ही नहीं चाहते. अतएव इस सारे उपदेशका जोर **सेवापरं चित्तम्**के ऊपर फिर रहा है. क्योंकि महाप्रभुजीद्वारा उपदिष्ट प्रकारानुसार जिसका चित्त सेवापर बन जाता है वह

महाप्रभुजीकी आज्ञा पाले कि महाप्रभुजीकी आज्ञा बिनाभी कभी विपरीत प्रकार बरत सकता है. प्रभुका कोई सानुभाव, प्रभुकी कोई अन्त:प्रेरणासे भी ऐसा हो सकता है. आज्ञाका उल्लंघन बहुत डेलीकेट सिच्युएशन है. एकदम गुलाबके फूलको पकड़ने जैसी. उसे डालीसे पकड़ोगे तो पुष्प साबुत रहेगा और पंखुड़ीयां जानदार रहेंगी. अन्यथा पंखुड़ी झड़ जायेंगी. इतनी डेलीकेट् सिच्युऐशन है.

अतएव महाप्रभुजीकी आज्ञाको अन-नेसेसरी अपने ऊपर लागू करके अपनेको इतना उच्च अधिकारी नहीं मान लेना चाहिये. क्योंकि जिसे यह उद्वेग हो रहा है उसने तो व्रत लिया है कि महाप्रभुजीकी आज्ञानुसार सेवा करूंगा. अतएव प्रभु उसके विपरीत आज्ञा करते भी हों तो उद्वेग होना स्वाभाविक है कि अब मैं क्या करूं? तो महाप्रभुजी कहते हैं **चिंता मत करो.** अंतमें सेवा करनेकी आज्ञा प्रभुसुखके लिये तो दी है. प्रभु सुख निभता हो तो मेरी आज्ञाकी आज्ञा है हरिइच्छा नहीं है. वन्स् एन्ड फोर ऑल यह पहले समझ जाओ. आखिरमें यह महाप्रभुजीकी ही आज्ञा है हरिइच्छाका इसमें प्रश्न नहीं है.

हरि भी तुमको अपनी इच्छा जतायेंगे तो कुछ न कुछ महाप्रभुजीसे कानाफूसी करके, पूछकर ही तुमको जतायेंगे. यह महाप्रभुजीसे पूछेगें कि तुमने इसे आत्मनिवेदन कराया है कि नहीं? तुम्हारे उपदेशानुसार यह सेवा कर रहा है कि नहीं? यस कि नो? महाप्रभुजी कहें कि यस तो फिर कहेंगे कि अच्छा तो मैं तुमको दोचार ऐसी बात भी बताऊंगा कि जो महाप्रभुजीने तुमसे नहीं कही! अगर महाप्रभुजी ना करदें कि नहीं मैंने इसे आत्मनिवेदन नहीं कराया, मैं इसकी जिम्मेदारी लेनेको तैयार नहीं. क्योंकि मेरे उपदेशानुसार यह सेवा नहीं कर रहा और करना भी नहीं चाहता तो तुम जो कुछ जता रहे हो तो तुम पुष्टिप्रभु नहीं हो बाकी कोई भी दूसरे स्वरूपसे ऐसा हो सकता

है. अल्लाह हो सकता है, गॉड हो सकता है, अहूर मझदा हो सकता है, महादेव हो सकतें हैं, गणपति हो सकते हैं, लेकिन पुष्टिप्रभु नहीं हो सकते. इतना डेलिकेट इश्यु यह है. अतएव हर समय एक बात खास दिमागमें रखो कि जो वास्तवमें भक्त है वह अगर संसारमें भी रहता है तो भी इसमें भक्तिका रंग दिखाई देगा. यह कोई वैदिक कर्म भी करेगा तो भी इसमें भक्तिका मूड जागरूक रहेगा. क्योंकि स्वयं भक्त है. यह बात महाप्रभुजीने निरोधलक्षणमें समझायी है कि **पुत्रे कृष्णप्रिये रतिः** विवाह मुझे इसलिये करना है कि मेरे ठाकुरजीका कोई वारसदार मुझे चाहिये. इसके संसारमें भी भक्तिकी सुवास है. यह बात भूलनी नहीं चाहिये. पुत्रकी उत्पत्ति यह संसार है लेकिन इसमें भी एक भक्तिकी सुवास आ सकती है जब मेरा पुत्र मुझे इसलिये चाहिये कि मेरे ठाकुरजीकी सेवाका कोई वारसदार होना चाहिये. पत्नी मुझे चाहिये किसलिये कि हम दोनों हिलमिलकर ठाकुरजीकी सेवा कर सकें. पति मुझे चाहिये इसलिये कि हम दोनों हिलमिलकर सेवा करें. तो इस संसारमें भी एक भक्तिकी सुवास होती है.

भक्त कोई भी कार्य करेगा उसमें भक्तिकी सुवास रहेगी. इसी कारण ही हमारे पुष्टिमार्गकी प्राचीन परम्परा है कि जो शास्त्रके हिसाबसे जो हमें सोलह संस्कार करने होते हैं : यज्ञोपवीत विवाह इत्यादि उन सबमें हम संकल्प लेते हैं कि **श्रीगोपीजनवल्लभायप्रीत्यर्थम्** ! यह भक्तिकी सुवास लानेकेलिये ही है. मैं विवाह कर रहा हूं गोपीजनवल्लभकी प्रीतिकेलिये, मैं लड़का उत्पन्न कर रही हूं गोपोजनवल्लभप्रीतिकेलिये. उनमें भी लौकिक कोई कर्म हम संकल्पपूर्वक नहीं करते तो भी उनमें शाब्दिक संकल्प नहीं होते लेकिन तुम्हारे ऐसे मानसिक संकल्पकी अपेक्षा तो महाप्रभुजी तुमसे रखते ही हैं. मैं व्यापार कर रहा हूं, मेरे ठाकुरजीकी सेवा सुखसे कर सकूं किसीके पास हाथ पसारे बगैर. मैं बाहर गाम जा रहा हूं इसलिये कि मेरे ठाकुरजीकी सेवा अच्छी तरहसे हो सके. लौकिक वस्तु हो कि

लौकिक क्रियाकलाप हों कि वैदिक क्रियाकलाप हों भक्तकी हरेक क्रियामें भक्तिकी सुवास तो आयेगी, आयेगी और आयेगी ही. लेकिन एक बात हमें कभी भी भूलनी नहीं चाहिये कि भक्तकी हरेक क्रियामें भक्तिकी सुवास आती है इस कारण हमें भक्तिका कोई प्रयास करना कि नहीं करना?

भक्तकी क्रियामें भक्तिकी सुवास आती है अतएव हमें लौकिक कि वैदिक दोनोंमेंसे थोड़ातो डिटेचमेन्ट जरूरी है. पूरेपूरा डिटेचमेन्ट नहीं कहता, थोड़ातो उपेक्षाका भाव रखकर भक्तिकी थोड़ी तो अपेक्षा हृदयमें रखनी कि नहीं रखनी? मूल मुद्दा इस बारेमें हैं.

लोकवेदमें तो हम बहुतसी अपेक्षायें रखते हैं लेकिन लोकवेदमें सब अपेक्षायें रखते हुये भी भक्तिकी कोई अपेक्षा हमारे हृदयमें है कि नहीं? भक्तिकी अपेक्षा हमारे हृदयमें होगी तो फिर यह बात समझमें आ जायेगी कि **सेवाकृतिर् गुरोः आज्ञा बाधनं वा हरीच्छया अतः सेवापरं चित्तं विधाय स्थीयतां सुखम्.** मेरी मुख्य अपेक्षा भक्तिकी है. श्रीमहाप्रभुजीकी आज्ञानुसार बरताव करूं तो भी और श्रीठाकुरजीकी आज्ञानुसार बरताव करूं तो भी.

ब्याहीहुई घर आई पत्नी सासके कहे अनुसार चले अथवा तो अपने पतिके अनुसार चले तो हरेक संयोगमें इसका शुद्ध भाव यह होना चाहिये कि मुझे मेरा दाम्पत्य निभाना है. अतएव सासके कहे अनुसार निभता हो तो उस प्रकार निभाना चाहिये. सासने अपने बेटेको पालपोस कर बड़ा किया है तो कोई ऐसी आदत इसमें डालदी होगी कि बेटेके स्वभावकी बनावटमें सासका बहुत बड़ा हाथ है और यह जानती है कि इसका स्वभाव कैसा है. खट्टा अच्छा लगता है, तीखा अच्छा लगता है, क्या अच्छा लगता है और क्या अच्छा नहीं लगता? क्योंकि आदत डालनेवाली कि इसके स्वभावको घड़नेवाली इसकी जननी होती

है. यह जो कहेगी उस प्रकार पति सुखी रहेगा. लेकिन सोचो कि तुम्हारे आनेके बाद, तुम्हारेसे संबंध बनानेके बाद, ऐडीशनल् कुछ तुम्हारे पतिको अच्छा लगने लगा तो यह तुमको जतायेगा. तुम्हारा उद्वेग ऐसा नहीं होना चाहिये कि सासके अगेन्स्ट् रिवोल्ट् ही करना है अथवा तो पतिको मांका भगतही मानकर उसके साथ बरताव करना! क्योंकि या तो सासके सामने विद्रोह करे उसका नाम बहू और या तो बकरीकी तरह सासके सामने मिमियाते रहना! शांतिसे विचारो कि परिवारमें ब्याहे हो कि केवल पतिको ही ब्याही हो? जिस परिवारमें ब्याही हो तो पति उपरांत परिवारमें सास भी है, परिवारमें जेठ भी है, परिवारमें ससुर भी है, परिवारमें देवर भी है, परिवारमें ननद भी है. पतिको ब्याहनेके साथ ही हमारा सबके साथ कोई न कोई संबंध ब्याह जाता है, पतिवाले संबंधमें नहीं लेकिन सासवाले संबंधमें, ससुरवाले संबंधमें, सास-बहुके संबंधमें, ननद-भाभीके संबंधमें, देवर-भाभीके संबंधमें, कोई न कोई संबंधमें सबके साथ हम ब्याह जाते हैं. और जब सबके साथ ब्याह ही गये हैं तब तुम्हारा अभिगम शुद्ध होना चाहिये. कैसा अभिगम कि मैं परिवारके साथ ब्याही हूं. इसमें हरेकका मान, हरेककी सावधानी, हरेकका सूचन, इस परिवारमें जैसे पतिका व्यक्तित्व है वैसे ही मुझे अपना समझना पड़ेगा. और उस व्यक्तित्चके सिवाय भी कुछ नोवेल्टी इसमें खड़ी हो रही है, अथवा तो मैं खुद खड़ी कर सकूं अर्थात् भक्त अपने मनोरथसे अथवा भगवान अपनी इच्छासे कोई थोड़ासा इस पेटर्नमें रहते हुये भी थोड़ीसी पिकनिक करना चाहते हों तो पिकनिक जरूर कर सकते हैं. पर पिकनिक करनेका अर्थ कभी भी गृहत्याग नहीं होना चाहिये. अपने घरसे रविवारको, समर वेकेशनमें पिकनिकके लिये जाना चाहिये, हिलस्टेशन जाना चाहिये घरके त्यागकी भावना से नहीं, घरको ताला मारके, घरको पड़ोसीको सोंपकर, घरकी सब वस्तुओंकी सावधानी रखकर, हमें पिकनिक पर जाना चाहिये, ऐसे ही महाप्रभुजीके वचनोंकी हरेक सावधानी रखनेके बाद तुमको जब

कभी भगवान जो आज्ञा कुछ अलग दे तो इसे भी तुम्हें पिकनिकके रूपमें लेना चाहिये. यह बात खास समझनेकी है.

बाधनं वा हरीच्छयाका गलत अर्थ तुम लोगे कि हां बस साक्षात् टेलीफोनिक कोन्टेक्ट हमारा प्रभुके साथ जुड़ गया. क्योंकि महाप्रभुजीका भंग हो गया है, पांचसौ वर्ष बीत जानेके साथ. अब तो हमारा ही कोन्टेक्ट ऐस्टेब्लिश हो गया. जब डायल करो तब भगवान बोलेंगे ही कि मेरे लिये केक लाओ, अब ब्रेड लाओ, अब बटर लाओ, अब अंडा लाओ, अब बीफ लाओ, क्योंकि **बाधनं वा हरीच्छया.** महाप्रभुजीने ना करी थी वह पांचसौ साल पहलेकी बात है. आजके हमारे बालक कॉलेजमें सब जाते हैं वह ठाकुरजीकी इच्छा नहीं होती? ऐसे **बाधनं वा हरीच्छया** की छूट वास्तवमें एक पंचायत हो गई ना!

महाप्रभुजीने ठाकुरजीका जो स्वभाव गढ़ा है अपने भावानुरूप उस स्वभावका क्या हुआ, उस भावका क्या हुवा? तुमने किसी दिन सोचा, विचारा? इस प्रकार नहीं होता ऐसी स्वच्छंदता ठाकुरजीके साथ नहीं की जा सकती, बस यही बात यहां कहनेमें आ रही है.

इसके बाद आता है दसवां उपदेश:

चित्तोद्वेगं विधायापि हरिर्यद्यत् करिष्यति।
तथैव तस्य लीलेति मत्वा चिन्तां द्रुतं त्यजेत्।।८।।

<u>श्लोकान्वय और श्लोकका मानसशास्त्रीय विश्लेषण:</u>

१०. {आन्तरिकोपायोपदेश} : हरिः *चित्तोद्वेगम् अपि विधाय* **यद्यत् करिष्यति** <u>**तस्य लीला तथैव इति मत्वा**</u> (कर्तृधैर्योपदेश) **चिन्तां द्रुतं त्यजेत्.**

सरल भावानुवाद: सर्वविध दु:खोंको हरनेवाले भगवान हरि हमारे चित्तके भीतर उद्वेग पैदा करके जो कुछ कर रहे हैं वह उनकी लीलाका रूप जानकर चिंता नहीं करनी.

इस सूत्रका भाष्य महाप्रभुजी विवेकधैर्याश्रयमें करते हैं:

त्रिदु:खसहनम् धैर्यम् आमृते: सर्वत: सदा।
[१]तक्रवद् [२]देहवद् भाव्यं [३]जडवद् [४]गोपभार्यवद्।।

इस प्रकार धैर्यधारणके चार उदाहरणों द्वारा तदानुसार धैर्य धरनेके चार उपाय भी वर्णन करनेमें आये हैं.

[१]प्रतीकारो यदच्छातो सिद्ध: चेद् नाग्रही भवेत्।
[२]भार्यादीनां तथा अन्येषाम् असत: च आक्रमं सहेत्।।
[३]स्वयम् इन्द्रियकार्याणि कायवाङ्मनसा त्यजेत।
[४]अशूरेणापि कर्तव्यं स्वस्य असामर्थ्यभावनात्।।

यह बात ठीक कि आमरण सबही दु:खोंको सहन कर लेना वह धैर्य; परन्तु महाप्रभुजी कहते हैं कि साहजिक रीतिसे ऐसे आये दु:खोंका प्रतीकार शक्य होता हो तो भी जानबूझकर स्वयंको दु:खी रखना वह धैर्य नहीं लेकिन धैर्यकी अस्वाभाविक सनक है. जब प्रतीकार शक्य न हो तो सहन करनेके सिवाय दूसरा कोई उपाय हो ही नहीं सकता. सहन करनेकी सनक तो गलत ही होती है परन्तु राजीखुशी सहन करते करते भी दु:खोंको मिटा सकते हों तो मिटा देना चाहिये. अगर ऐसी सामर्थ्य अपनेमें न हो तो असामर्थ्यकी भावना हृदयमें कर लेनी चाहिये.

अब तुमको इस उद्वेगका अर्थ तो अच्छी तरह समझमें आ गया होगा कि चित्तमें उद्वेग पैदा करके भी प्रभु जो कुछ करते हैं उसे लीला कैसे मानना? किसी भी संजोगमें उद्वेगमें चिंताको मत विकसित होने दो. तो उद्वेग और चिंतामें अन्तर है कि नहीं? अगर उद्वेग और चिंता एकही हैं तो **चित्तोद्वेगं**

विधायापि हरिः यद्यत् करिष्यति तथैव तस्य लीलेति मत्वा चिंता द्रुतम् त्यजेत्. ऐसा महाप्रभुजी क्यों कहते? क्योंकि उद्वेग तुम स्वयं कहां कर रहे हो? इस उपदेशमें उद्वेग जो भगवान पैदा करते हों तो भी उसकी चिंता तुमको नहीं करनी चाहिये. क्योंकि भगवान् चिंता पैदा नहीं कर रहे इस बातको ध्यानसे समझो, विषयका पृथक्करण करके, कि भगवान उद्वेग पैदा कर रहे हैं और तुम इसमेंसे चिंता पैदा कर रहे हो. भगवानने जो उद्वेग पैदा किया उसे छोड़नेकेलिये महाप्रभुजी नहीं कह रहे हैं. भगवानने जो उद्वेग पैदा किया उसे महाप्रभुजी ऐसे कहते हैं जैसे कोई करुणान्त नाटक हो कि कोई करुणान्तिका/ट्रेजेडी फिल्म हो उसे देखने तुम जाते हो तो उसका मजा लेते हो कि नहीं? हीरो दर दर भटक रहा है, खानेको नहीं मिल रहा है, भूखा मर रहा है, रो रहा है, इन द्वारा जितने आंसू तुम्हारी आंखोंमें आते हैं उतना अधिक आनन्द तुमको आता है कि नहीं? फिल्ममें जितनी अधिक ट्रेजेडी हो, नाटक जितना ट्रेजिक हो उतना अधिक आनन्द आता है. जब नाटकमें ट्रेजेडीको रेलिश कर सकते हो तो जीवनमें क्यों रेलिश नहीं कर सकते? अगर लीलाका बोध तुम्हारे अन्दर अच्छी तरहसे है तो. इस लीलाके बोधको झेलनेकेलिये तुमको धैर्य चाहिये.

धैर्यमें जो चार स्टेप् गिनाये गये हैं, इन धैर्यके चार स्टेपोंसे गुजरोगे तो फिर तुम इस आनन्दको ले सकते हो. और इन धैर्यके जो चारस्टेप हैं इनमेंसे नहीं गुजरे, तो तुम यहीं टूट जाओगे. इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है. महाप्रभुजी ऐसे कह रहे हैं कि **चित्तोद्वेगं विधायापि हरिः यद्यत् करिष्यति, तथैव तस्य लीलेति मत्वा चिंताम् द्रुतम् त्यजेत्.** महाप्रभुजी ऐसा नहीं कह रहे कि **तुम्हारे चित्तमें उद्वेग भगवान पैदा नहीं कर रहे तुम स्वयं ही कर रहे हो.**

आप लोगोंमेंसे कितनेही को याद होगा कि मलाडमें जब मैं नवरन्तके ऊपर प्रवचन कर रहा था तो एक भाई ने मुझे चिट भिजवायी थी कि **बाबा, बातोंके बड़े क्यों बना रहे हो इसकी बजाय कोई सोलिड काम क्यों नहीं करते तुम**? अतएव उस समय भी प्रश्नके उत्तरमें यह ही बात कही थी **बात तुम्हारी ठीक है कि मैं बातोंके बड़े बना रहा हूं लेकिन बसन महाप्रभुजीके वचनोंका है, तेल इसमें पुष्टिभक्तिका है, तुमको स्वाद आता हो तो खाओ! स्वाद नहीं ले सकते तो प्लीस् गेट आउट मैं कोई दरवाजे बन्द करके तुमको जबरदस्ती तो सुना नहीं रहा.** इस भाईने दूसरे दिन फिर मुझे सवाल भिजवाया कि तुमको दस जन्मका अन्तराय होगा ऐसे प्रवचन करनेके कारण. नवरत्नके पहले प्रवचनकी पुस्तकमें तुम पढ़ना तुम्हारे पास हो तो. मैं फिरसे इस भाईकी बातको ध्यानमें ला रहा हूं कि **मैं तुम्हारा आभार मानता हूं कि मुझे प्रभुप्राप्तिमें दस जन्मोंका अंतराय तुम बता रहे हो. जब चौरासी लाख योनिमें आत्मा भटकती है, तो इसे दस जन्म बितानेमें कितनी देर लगेगी? ज्यादासे ज्यादा पचास साल, साठ साल, कि सौ वर्ष आदमी जीता हो तो भी एक हजार साल लगेगें. मुझे लगता था दस हजार जन्मोंका अंतराय होगा. इसकी तुलनामें तो अभीष्ट वरदान तुमने मुझको दिया है, शाप नहीं दिया.**

अतएव एक बात समझो कि कौनसी वस्तुको किस प्रकार लेना यह तो तुम्हारे अभिगमके ऊपर निर्भर है. गिलास तुम्हें आधा भरा हुवा दिखाई देता है कि आधा खाली दिखाई देता है. तुम्हारा गिलासके प्रति क्या अभिगम है. तुम्हें रोनेकी आदत है तो तुम्हें गिलास आधा खाली ही दिखाई देगा. और तुम्हारी संतोषकी वृत्ति है तो **प्राप्त सेवेत निर्मम:** की वृत्ति होगी तो तुमको गिलास आधा खाली दिखाई नहीं देगा, आधा भरा हुवा दिखाई देगा. एक शेर है जो कि मुझे बहुत ही पसंद है **गुंचे तेरी**

जिंदगीपे रश्क होता है, तू एक तबस्सुमके लिये खिलता है,
गुंचेने कहा हंसकर, ऐ बाबा एक तबस्सुमभी किसे मिलता है?

एक बार जीवनमें मुस्करानेका अवसर किसे मिलता है? मुझे मिलता है यह कोई साधारण बात है? दसजन्मोंका अंतराय प्रभु अगर मुझे देते हों तो मेरा कितना बड़ा अधिकार है कि दस जन्मोंमें मेरा काम सब निबटाना चाहते हैं. मेरी तुलनामें इतना बड़ा भगवदीय कौन दुनियांमें और मेरी तुलनामें प्रभुकी पुष्टिका बड़ा अधिकारी कौन है कि जिसका काम दस जन्ममें पूरा कर रहें हैं प्रभु? मेरी योग्यता मैं देखने जाऊं तो कौन जाने कितने हजार जन्मोंका अंतराय होगा. हमें श्रापदेनेवाला भले ही ऐसा समझता हो कि श्राप दे रहा है लेकिन मैं तो इसे वरदान ही समझता हूं, अगर यह बात सत्य है तो!

जो कि **सती श्राप देती नहीं और व्यभिचारिणीका लगता नहीं** इसकी मैं दरकार ही नहीं रखता. फिर भी एक बात समझो कि अगर श्राप है तो उसकी बात ह. क्योंकि मैं तो अंतराय मानता ही नहीं मेरे मतानुसार तो मेरे ठाकुरजी मेरे घरमें बिराज रहे हैं. अंतराय है कहां मुझे जन्मका? जिसके घरमें ना बिराजते हों, जो अविवाहित हो उसे अंतराय होगा. मैं तो विवाहित हूं अपने ठाकुरजीके साथ. मेरे घरमें मेरे ठाकुरजी बिराजते हों तो वहां व्यभिचारिणीका श्राप मुझे लगे इसके चान्स बहुत दूर हैं. इस कारण मैं नहीं मानता कि ऐसा श्राप मुझे लगेगा. अंतराय मुझे एक भी जन्मका नहीं है. मेरे ठाकुर मेरे घरमें बिराजते हैं, मैं मेरे ठाकुरके साथ घरमें रहता हूं. अब किसका अंतराय? किसको अंतराय? किस कारण अंतराय? जिसे होगा उसे होगा मुझे तो कोई अंतराय नहीं है. मैं इसे कोई पत्थर नहीं मानता कि इसे मैं कोई लोहेका टुकड़ा कि धातु नहीं मानता. मैं तो इसे स्वरूप मानता हूं इसमें अंतराय अब किसका रहा? जिसे अंतराय हो उसे अंतराय लगे मुझे व्यापि

वैकुंठस्थित पुष्टिप्रभु और मेरे घर बिराजते सेव्यप्रभुके बीच अंतराय ही नहीं लगता तो मैं किस कारण दस जन्मका अंतराय मानूं? एकभी जन्मका अंतराय नहीं है. मैं इस निष्ठासे चलनेवाला मनुष्य हूं. लेकिन किस प्रकार लेना आखिरमें यह तो हमारे अभिगमकी बात है. हम स्वीकारते हैं अपने स्वरूपके तौरपर तो कुछ न कुछ प्रभुको चित्तोद्वेग पैदा करनेका अधिकार हमको स्वीकार करना पड़ेगा.

युवावस्थामें मुझे मेरी बुआका लड़का चिढ़ाता था. मैं यह कहता **लड़का नहीं चाहिये क्योंकि लड़के सभी उपद्रवी होते हैं.** यह मुझे ऐसे कहता **मुझे तो कमसे कम सात-आठ लड़के चाहियें ही.** मेरे भेजेमें किसी भी दिन यह बात नहीं उतरती कि आजके जमानेमें सात-आठ लड़के कैसे पोसायेंगे? बादमें इसका एक लड़का बहुत ही योग्य बन गया, लेकिन जब छोटा था तब इतना अधिक रोता रहता कि सारी रात नींद ही नहीं आती. अतएव एक दिन मैने उससे पूछा **भाई क्या हुवा तेरे प्रोग्रामका?** इसने कहा **यह एक लड़का ही सातके बराबर है. सारी रात जगाता है मुझे.** तो हम लड़के पैदा करेंगे तो छोटे बच्चेके जो अधिकार हैं उनको स्वीकार करना पड़ेगा ही. हम दो काम एक साथ नहीं कर सकते कि लड़के को जन्म दें और उसे सारी रात रोनेभी न दें. अरे एकही ऐसा होगा कि सारी रात तुमको सोने नहीं दे. तो इसने मुझको कहा **ना एकही सात के बराबर हो गया. अतएव अब मेरी इच्छा पूरी हो गई सातकी.**

मैंने एक बहुत मजेदार चुटकला पढ़ा. किसी दम्पतिके विवाहोपरान्त उनके यहां नया नया बच्चा हुवा. कहा जाता है कि दिनमें जन्मा बच्चा मोटे तौरपर रातको जागता है और रातमें जन्मा बच्चा दिनमें जागता है. ऐसा बुढ़ियापुराण है. तदानुसार इस बालकको कुछ ऐसी कुटेव थी कि रात पड़ते ही

इसको पहलवानी सूझे, जागे- रोए. बिचारी पत्नी घरका काम करके सो गई हो तब भी यह तो रोये और इसे झंझट लगे. इसकारण हरेक समय अपने पतिको जगाये **अरे तुम देखो ना क्यों रो रहा है?** दस पंद्रह दिन बाद यह भी थक गया कि यह रोजरोजकी मुसीबत अच्छी आई बालक हुआ कि क्या हुवा? इसके बाद यह चाइल्ड स्पेशियालिस्टको जाकर मिला **इसका उपाय क्या?** उसने कहा **एक उपाय करो कि तुम रातको बच्चेके सोनेसे पहले इसकी खूब तेलकी मालिश करो, मालिश करके इसको नहलाओ और फिर सुला दो. फिर रातमें यह नहीं जागेगा.** एक तो यह खार खा कर बैठा था कि रोज रातको पत्नी जगाती है कि देखो क्यों रो रहा है. उसके बाद यह दूसरी मुसीबत और गले पड़ गई. पत्नी ऐसे समझती कि बच्चा हुवा यह पतिका दोष है, पति समझता है कि पत्नीका दोष है कि बच्चा ऐसा हुवा. जबकि दोष दोनोंका होता है पार्टनरशिपमें फिफ्टी फिफ्टी. लेकिन रातको जब जागना पड़े तो पति पत्नि एक दूसरेसे पूछते हैं कि तुम क्यों नहीं जागते क्या यह तुम्हारा बच्चा नहीं है? एक तो दिनमें ऑफिसके कामसे ही थककर पति तंग आ जाता है. फिर भी बिचारा बच्चेको खूब तेल मालिश करके स्नान-पानकराके सुला भी दे. अब उस दिन वास्तवमें चाइल्ड स्पेशियालिस्टकी बात सच्ची निकली कि रातको बच्चा रोया नहीं. परन्तु दो ढ़ाई बजे तब पत्नीने नित्य-नियमके अनुसार पतिको जगाकर पूछा **अरे देखोतो जरा रो क्यों नहीं रहा?** अब कहां जाना? एक तो तेलमालिश करी, नहलाया सब कुछ किया तो भी जगाना कि रो क्यों नहीं रहा? इसे यह चिंता हो गई कि रोज रोता है तो आज कैसे सो रहा है? कुछ न कुछ गड़बड़ तो नहीं हो गई? उसमें भी फिर खुद को तो उठना नहीं लेकिन पतिको जरूर जगाना.

भगवानभी **चित्तोद्वेगं विधायापि हरिः यद्यत् करिष्यति** किसी समय सोते होगे तो भी तुमको जगायेगा और किसी समय

जागते होगे तो सोनेकेलिये नहीं जाने देगा. लकिन यह तो दाम्पत्यकी लीला जैसे चलती है वैसे ही चलेगी. **तथैव तस्य लीलेति** जैसे दाम्पत्यको भी स्वीकारे बिना छुटकारा नहीं होता. बच्चेको पालनेमें ऐसी सभी प्रक्रियाओंमें अपनेको पार्टी बनना ही पड़ता है. इसमें एक दूसरेके ऊपर ताना देना कि लो तुम्हारा ही बच्चा है तू क्यों नहीं जागती? और पहला कहे कि नहीं नहीं तुम्हारा भी बच्चा है तुम क्यों नहीं जागते? लेकिन जब बच्चा रोना बंद कर देता है तो भी तुम्हें तो रोना ही पड़ेगा आखिरमें! अतएव यथा अवसर जागते रहना. **चित्तोद्वेगं विधायापि हरिः यद्यत् करिष्यति** दाम्पत्यकी लीला ऐसी ही होती है. **इति मत्वा चिन्तां द्रुतं त्यजेत्** चिंताको छोड़दो. जो जागता है तो तुम भी जागो और अगर थपथपाकर सुला सकते हो तो सुला दो. उद्वेग कुछ हो तो होगा ही इसका अगर हम दाम्पत्यके बंधनमें बंधे हैं तो.

अब तलकके उपदेश एक नहीं तो दूसरे रूपमें विवेकधर्याश्रय ग्रंथमेंके विवेकरूपी उपायोंको अवलम्बन करनेके बारेमें थे. अब यहां महाप्रभुजी धैर्यका उपदेश देना चाह रहे हैं. उसमें सबसे पहले तो यह भी एक आंतरिक उपाय है और उसमें भी सर्वप्रथम **हरिः** शब्द हमको मिलता है. **अज्ञान-पाप-दुःखादिकं हरति इति हरिः** अर्थात् जो आर्थिक उपदेश यहां मिल रहा है वह यह कि अध्यापक पढ़ाये और बादमें परीक्षा ले वैसे ही हमको स्वयंकी लीलाका अनुभव प्रदान करते करते भगवान तुम्हारे भीतर किसी प्रकारका उद्वेग भी प्रकट कर देते हैं. लेकिन किसी भी संयोगमें आखिरमें वह हरि होनेके कारण दुःखोंको हर ही लेते हैं. अतएव जो दुःख कि क्लेश तुम अनुभव कर रहे हो उसके बारेमें भगवल्लीला उसीकी होनेकी भावना करनेसे तुम्हारा उद्वेग चिंतामें विकृत नहीं होगा. उसके आधारपर महाप्रभुजी वाचनिक उपदेश देते हैं कि आत्मनिवेदन करनेवालेको धैर्य रखनेके अलग अलग उपाय अपनाने चाहियें

जिससे **तस्य लीला तथा इति मत्वा** अंशमें वाचनिक उपदेश समझ लेना. जैसे विद्यार्थीकी परीक्षा भी अंतमें तो लेनेमें आती है जो कि विद्याध्यापनका ही अंग होता है वैसे जिन उद्वेगोंको हम अपने स्वयंके आत्मनिवेदीके तौरपर विवेक उपयोगकरके समझ नहीं सकते उनका, धैर्यके चतुर्विध प्रकारोंका अवलम्बन करके मानसिक हल्केपनस सहन कर लेना चाहिये. अनुभवमें आते क्लेशोंको भगवल्लीलाका कोई प्रकार मान लेना चाहिये. ऐसे यहां कृर्तृधैर्योपदेश देनेमें आ रहा है.

तो एक बात यहां अच्छी तरहसे समझ जाओ **तस्मात् सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम. वदद्भिः एवं सततं.** इसे तुम ध्यानसे देखो यहां महाप्रभुजीने धैर्यका उपदेश दिया है. जो सबसे बड़ा फिनोमिना इसमें इन्वोल्व हुआ है. किस पॉइन्टको महाप्रभुजीने प्रेशराइज् किया है धैर्यको, कि तुम विवाहित होनेके बाद ऐसे ही धैर्य मत खो दा कि बच्चेको पैदा करनेके लिये तुम एकदम तैयार और पालनपोषन करनेमें तुम पार्टनर नहीं बनो तो तुम धैर्य खो रहे हो दाम्पत्यका, दाम्पत्यका धैर्य किसी भी दिन ऐसा नहीं हो सकता. पैदा किया है तो पालनपोषन करना ही पड़ेगा, सब प्रकारोंसे रातको जागना भी पड़ेगा, सब कुछ करना पड़ेगा. अगर साहस नहीं है तो विवाह ही नहीं करना था तुमको किसने कहा कि विवाह करो? अतएव प्रभुको हमने पकड़ा है तो जो कुछ उद्वेग प्रभु पैदा कर रहे हैं उसे उनकी लीला मानकर चिंताको छोड़ो तो तुम अच्छी तरह से भक्तिका संबंध प्रभुके साथ निभा सकते हो.

विवेकधैर्याश्रयमेंके ऐसे विवेक और धैर्यके उपायों द्वारा आत्मनिवेदीके भीतर उद्भव होते उद्वेगोंको चिंतामें पलटनेसे कैसे बचाया जा सके उस बारेमें उपदेशोंके बाद अब महाप्रभुजी भवगदाश्रय द्वारा भी हम अपने उद्वेगोंको चिंतामें परिणत होनेसे रोक सकत हैं इस बातको समझानेके लिये कहते हैं:

तस्मात् सर्वात्मना नित्यं 'श्रीकृष्णः शरणं मम'।
वदद्भिः एवं सततं स्थेयम्, इत्येव मे मतिः।।९।।

श्लोकान्वय और श्लोकका मानसशास्त्रीय विश्लेषण:

११. {वाचनिकोपायोपदेश} : **तस्मात्** ***सर्वात्मना*** **नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम (इति) वदद्भिः एवं सततं स्थेयम्** (संप्रदानाश्रयोपदेश)**, इत्येव मे मतिः.**

सरल भावानुवादः विवेक कि धैर्य रूपी उपायोंसे जिनके ऊपर काबू पाया जा सकता हो अथवा तो काबू नहीं भी पाया जा सकता हो ऐसे सब ही उद्वेगोंमें हमें **श्रीकृष्णः शरणं मम**की रटन द्वारा भगवदाश्रय तो दृढ रखना ही चाहिये ऐसा मेरा दृढ़ अभिप्राय है.

अब यहां फाइनल उपदेश आ रहा है. उसका गुसांईजी विवेचन करते हैं कि यह सब सलाह जो महाप्रभुजीने दी हैं उनमेंसे कोई भी सलाह तुम नहीं अनुसर सकते तो क्या करना? कुछ भी कर सकनेमें हम समर्थ न हों तो बताओ क्या करना? तब महाप्रभुजी कह रहे हैं **तस्मात् सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम. वदद्भिः एवं सततं स्थेयं, इत्येव मे मतिः.** इसमेंसे कुछ भी तुम नहीं अनुसर सकते हो तो ऐटलीस्ट शरणभावना तो कर ही सकते हो कि नहीं? शरणभावनाके मैंने पहलेही चार स्टेप बता दिये हैं. स्टेप वाईस उनकी तुम शरणभावना करो. तुम्हारे सारे ही प्रोब्लम्स्का सोल्युशन मिल जायेगा. **तस्मात् सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम. वदद्भिः एवं सततं स्थेयम् इत्येव मे मतिः.**

<u>नवरत्नग्रंथोक्त शरणागति और विवेकधैर्याश्रयोक्त शरणागतिका तुलनात्मक स्वरूप</u> :

उसके लिये महाप्रभुजीने विवेकधैर्याश्रयमें इस सूत्रका भाष्य किस प्रकार किया इसे तुम पढ़ोगे तो तुमको अतिशय आनन्द आयेगा:

एतत् सहनम् अत्र उक्तम् आश्रयो अतो निरूप्यते। ऐहिके पारलोके च सर्वथा शरणं हरिः।। दुःखहानौ तथा पापे भये कामाद्यपूरणे। भक्तद्रोहे भक्त्यभावे भक्तैश्चातिक्रमे कृते।। अशक्ये वा सुशक्येवा सर्वथा शरणं हरिः। अहंकारकृते चैव पोष्यपोषणरक्षणे।। पोष्यातिक्रमणे चैव तथा अन्तेवास्यतिक्रमे। अलौकिकमनः सिद्धौ सर्वार्थे शरणं हरिः।।
(विवेधैर्याश्रय:९-१२)

तुम कहते हो कि उद्वेगके कारण हमारा मन ही स्वस्थ कि स्थिर नहीं रहता कि हम विवेक या धैर्य व्यवहारमें ला सकें. महाप्रभुजी कहते हैं कि कोई चिन्ताकी बात नहीं. दुःखोंको सहन करना मैंने तुमको बताया लेकिन अब मैं तुमको भगवदाश्रयकी असरकारकता समझाना चाह रहा हूं. भगवदाश्रय तो ऐहिक कि पारलौकिक सभी बातोंमें निभा सको ऐसा है. तुम्हारे दुःखोंको तुमने समाप्त करना हो कि तुमसे कोई पापाचरण हो गया हो तो भगवदाश्रयसे विचलित मत होओ. किसी प्रकारका आधिभौतिक आध्यात्मिक कि आधिदैविक डर तुमको सता रहा हो तो भगवदाश्रयसे विचलित मत हो. तुम्हारी अधूरी रही हुई किसी प्रकारकी कामनायें तुमको बहुत कष्ट दे रही हों तो भगवदाश्रयसे विचलित मत हो. तुम्हारेसे किसी भक्तका अपराध कि द्रोह हो गया हो तो भगवदाश्रयसे विचलित मत होआ. तुम्हारे भीतर भक्तिभाव क्योंकर नहीं जागता तो भी भगवदाश्रयसे विचलित मत होओ. कोई भक्त तुमको किसी प्रकारका कष्ट पहुंचाता हो तो भी भगवदाश्रयसे तो विचलित मत होओ. ऐसी अनेकविधि

कष्टोंका प्रतीकार करनेमें तुम समर्थ हो कि असमर्थ हो तो भी भगवदाश्रय से विचलित नहीं हो. तुम्हारे ऊपर जो निर्भर हैं उनका पोषण कि रक्षण करनेकेलिये तुम्हें किसी प्रकारका अतिक्रमण कि ओछापन प्रकट करना पड़ता हो तो भी भगवदाश्रयसे विचलित मत होओ. जो लोग तुम्हारे ऊपर निर्भर हैं कि तुम्हारे साथ रहकर तुमसे कुछ सीखनेवाले हैं वह तुम्हारे साथ कुछ ओछापन करते हैं तो भी भगवदाश्रयसे तो विचलित मत होओ. ऐसी अनेक बातोंमें विचलित न हो ऐसा तुम्हारा अलौकिक मन सिद्ध हो जायेगा जो तुमको भगवदाश्रयसे विचलित नहीं होने देगा. इस प्रकार **श्रीकृष्ण: शरणं मम** इस अष्टाक्षरमंत्र द्वारा जगानेमें आती आश्रयभावनाको प्राप्त करो. तुम कायिक, वाचिक, मानसिक तीनों प्रकारोंसे कृष्णके अनन्याश्रयके भावको निभाओ.

एवं चित्ते सदा भाव्यं वाचा च परिकीर्तयेत् ।(विवेकधैर्याश्रय : १३)

चित्तमें ऐसी भावना करो एवं वाणीसे इस प्रकार रटन करते रहो.

अन्यस्य भजनं तत्र स्वतागमनमेव च ।
प्रार्थना कार्यमात्रेऽपि तथान्यत्र विवर्जयेत ।।(विवेकधैर्याश्रय : १४)

अन्याश्रय छोड़ो और सावधानी रखो कि प्रभुमें तुमको जैसी श्रद्धा है वैसा ही विश्वास भी रखो कि प्रभुके अतिरिक्त दूसरा कोई तुम्हें क्लेशोंसे मुक्त कर सकता है वैसा नहीं है.

अविश्वासो न कर्तव्य: सर्वथा बाधकस्तु स: ।
ब्रह्मास्त्रचातकौ भाव्यौ प्राप्तं सेवेत निर्मम: ।

यथाकथंचित् कार्याणि कुर्याद् उच्चावचान्यपि।।
(विवेकधैर्याश्रय : १५)

जिस प्रकार कर सकते हो उस प्रकार करो. ऊंचा-नीचा अगडम-बगडम जा काम कर सकते हो करो लेकिन अपने कृष्णाश्रयके भावको तुम खोना नहीं.

किंवा प्रोक्तेन बहुना शरणं भावयेद् हरिम्।

इस कलियुमें भक्तिमार्गको अनुसरना वास्तवमें बहुत मुश्किल काम है लेकिन शरणमार्ग बिलकुल सरल तुम्हारे पास उपलब्ध है. शरणमार्गको तुम अनुसरो, टूट मत जाओ, यह बात इसकेलिये कहनेमें आ रही है. इसकेलिये कहनेमें नहीं आ रही कि तुम बस सेवा मत करो. क्योंकि **अष्टाक्षर जप लूंगा!** कह कर अलग हो जाओ. वास्तवमें तो अष्टाक्षर किस प्रकार जपोगे -श्रीकृष्ण मेरी शरण हैं. क्योंकि मैं उसकी सेवाकी हवेली चलानेवाले पू.पा.गो.बा. हूं. उसमें फिर बादमें लक्ष्मीवाहन कोर्टमें मुकदमा दायर करेंगे कि यह गलत बोलते हैं क्योंकि सेवा-मनोरथकी विभिन्न नौटंकीयां तो हमनें पैसे देकर करायी थी. उसमें फिर मुखिया-भीतरिया कहेंगे कि यह दोनों तो मिथ्याभाषी हैं क्योंकि वास्तवमें तो सबहसे शामतक सेवामें तो हम पहुंचते हैं, कोल्हूके बैलकी तरह. और तनख्वाह कितनी थोड़ी देते हैं. भगवान भी घबरा जायें कि परसादकी तरह कितने सारे हाथोंमें पहुंचके मैं बिक गया और बंट गया.

आजकल तो हम खाली दिखावेसे भरा भक्तिमार्ग चला रहे हैं, चित्तमें कोई दूसरी ही भावना ही चल रही है. वाणीसे कुछ तीसरी ही बात कर रहे हैं. दिलसे कोई चौथा ही काम करनेमें आ रहा है. लेकिन लम्बे समय तक ऐसी गाड़ी नहीं चलेगी. क्योंकि आखिरमें तो महाप्रभुजीने सुस्पष्ट शब्दोंमें-

एवं चित्ते सदा भाव्यं वाचा च परिकीर्तयेत्।
अन्यस्य भजनं तत्र स्वतोगमनमेव च।
प्रार्थना कार्यमात्रेऽपि तथान्यत्र विवर्जयेत।।
अविश्वासो न कर्तव्यः सर्वथा बाधकस्तु सः।
ब्रह्मास्त्रचातकौ भाव्यौ प्राप्तं सेवेत निर्ममः।
यथाकथंचित् कार्याणि कुर्याद् उच्चावचान्यपि।।
किंवा प्रोक्तेन बहुना शरणं भावयेद् हरिम्।
एवम् आश्रयणं प्रोक्तं सर्वेषां सर्वदा हितम्।
कलौ भक्त्यादिमार्गा हि दुःसाध्याः इति मे मतिः।।

(विवेकधैर्याश्रय : १३-१७)

यहां १. [1]**अन्यस्य भजनं तत्र स्वतोगमनमेव च... विवर्जयेद्,** [2]**प्राप्तं सेवेत निर्ममः,** [3]**यथा कथंचित कार्याणि कुर्याद् उच्चावचान्यपि किंवा प्रोक्तेन बहुना शरणं भावयेद् हरिम्** ऐसे तीन अंशोंसे कायिक अनन्याश्रयकी रीति महाप्रभुजी समझाना चाहते हैं. २. [1]**वाचा च परिकीर्तयेत्...** [2]**प्रार्थना कार्यमात्रेऽपि ततो अन्यत्र विवर्जयेत्** ऐसे दो अंशोंसे महाप्रभुजी वाचिक अनन्याश्रयका उपदेश दे रहे हैं. ३. [1]**एवं चित्तं सदा भाव्यं....** [2]**अविश्वासो न कर्तव्यः सर्वथा बाधकस्तु सः** ऐसे दो अंशोंसे महाप्रभुजी मानसिक अनन्याश्रयका उपदेश देना चाह रहे हैं. लेकिन नवरत्नमें यहां केवल वाचिक आश्रयका ही जो केवल उपदेश देनेमें आया है उसमें महाप्रभुजीका हेतु तुम्हारे उद्वेगमें किसी भी प्रकारकी वृद्धि न करनेका स्पष्ट नजर आ रहा है. यह अष्टाक्षर करोगे और उस अष्टाक्षरको तुम जीनेका भी प्रयास करोगे तो इतनी अधिक विचित्र परिस्थितियों कि पाखंडोमें से तुम अपने आपको बाहर निकालनेमें सक्षम बन जाओगे. लेकिन ऐसे अभिगमसे तो नहीं ही कि तुम महाप्रभुजी द्वारा उपदशित रीतिसे सेवा तो करोही नहीं, अतएव अष्टाक्षर कर लूंगा! अथवा तो भक्ति तो करनी ही नहीं, इसलिये मैं अष्टाक्षर जप लूंगा. तुमको भक्ति करनी हो तो लेकिन किसी कारणसे वह

निभती नहीं हो तो अष्टाक्षर महामंत्र तुमको सहायक हो सकता है. अतएव आखिरी लाइन पर पड़े हुवोंके लिये अष्टाक्षर महामंत्र वाचिक संनिष्ठासे भी बहुत कुछ सुधार सकता है.

अब अष्टाक्षर महामंत्रको भी स्वाहा करके नष्टकरनेके लिये महायाग जुटाकर, उसके नामपर फिर नौटंकी इक्कठी करनेकी व्यापारिक कुटिलतासे इस मंत्रका भी दुरुपयोग कर लेनेमे तो, आजके हम पू.पा.गो.बालक सभी प्रकारसे समर्थ हैं. लेकिन इससे तो हमारा आत्मनाश ही ध्रुव निश्चित है.

इस कारण अपना भाष्य करनेकी बजाय सूत्ररूपमें नवरत्नग्रंथमें महाप्रभुजी कायिक वाचिक और मानसिक ऐसे त्रिविध आश्रयोंके बजाय केवल वाचिक आश्रयकी ही बात कर रहे हैं **तस्मात् सर्वात्मना नित्य श्रीकृष्णः शरणं मम वदद्भिः एवं सततं स्थेयम्** और वह भी पुष्टिजीवोंको सेवात्मक भक्तिमार्गकी सरलता लेकिन दुर्लभताभी समझानेके हेतुसे ही. इसकारण सच्चे अर्थमें भक्ति करनी हो तो ही अष्टाक्षर महामंत्र सब प्रकारसे सहायक हो सकता है. यह हम देख सकते हैं कि महाप्रभजीने बहुत कठोर आज्ञा यहां दी है **वदद्भिः एवं सततं स्थेयम्!** तुम इस प्रकार सतत अष्टाक्षर बोल ही नहीं पाओगे और इस प्रकार रह भी नहीं पाओगे. जो तुम अनन्याश्रय प्रभुका प्राप्त नहीं कर सको तो विवेक-धैर्य भी तुम जान नहीं पाओगे. आखिरमें तुम्हारेसे आश्रयभी निभनेवाला तो नहीं है. आश्रयका नियम ऐसे किसी दूसरी दृष्टिसे देखें तो विवेक धैर्य निभानेके बजाय कठिन काम है. उसमें सेवा करते हुवे भी. क्योंकि सेवामें अनवसरका विधान महाप्रभुजीने किया है. दिन रात्रिमें दोनोंमें भी अनवसर हो जाता है और रातमें भी अनवसर हो जाता है. एकमें ही आदर्श प्रकारसे तीन तीन घंटेकी सेवा भी होय तो भी, कुल चौबीस घंटेमें से केवल छः घंटेकी सेवा है. और यहां तो मार ही डाला है महाप्रभुजीने हमको **वदद्भिः एवं सततं स्थेयम्**

इत्येव मे मतिः कहकर. किसके बापकी ताकत है **सततं स्थेयम्** आज्ञाका अनुसरनेकी? इसकारण यह कोई सेवाका सबस्टिटयूट् नहीं है. अतएव ऐसा मत मान लेना कि सेवा नहीं करते तो अष्टाक्षरकी एक माला फेर लेंगे **फूल नहीं तो फूलकी पंखुडी** बस! अरे, क्या पाखंड फैला रखा है? यह बात यहां कहनेमें नहीं आ रही. यहां कोई बहुत ही गंभीर बात कहनमें आ रही है.

ऐसे यह वाचनिक उपायका उपदेश होनेपर जिसके सम्मुख हमने आत्मनिवेदन किया है उस श्रीकृष्णका अनन्याश्रय प्राप्त करनेका उपदेश महाप्रभुजी देना चाह रहे हैं. उसे ब्रेकेटमें संप्रदानाश्रयोपदेश कहकर स्पष्ट करनेका प्रयास किया है. उसी प्रकार *सर्वात्मना* अक्षरोंका तिरछा करके इस बारेमें स्पष्ट करना चाहता हूं कि महाप्रभुजी द्वारा दिया गया उपदेश हम पाल सकते हों कि न पाल सकते हों किन्हीं भी ऐसे विचित्र संजोगोंको यहां समस्याके तौर पर पेश करनेके लिये और उस समस्याका समाधान अंडरलाईन करके समझा दिया है.

इसी कारण कष्णाश्रयके उपसंहारमें महाप्रभुजी आज्ञा करते है:

विवेकधैर्य भक्त्यादिरहितस्य विशेषतः।
पापासक्तस्य दीनस्य कृष्णएव गतिः मम।।
सर्वसामर्थ्यसहितः सर्वत्रैव अखिलार्थकृत्।
शरणस्थसमुद्धारं कृष्णं विज्ञापयामि अहम्।।
(कृष्णाश्रय : ९-१०)

श्रीमहाप्रभुजी श्रीकृष्णसे वचन चाह रहे हैं कि शरणागत पुष्टिजीव कैसा भी हो उसका पुष्टिमार्गीय उद्धार - अर्थात् अपनी नित्यसेवाके योग्य इसी जन्ममें कि आनेवाले जन्ममें कि फिर नित्यलीलामें - जैसे प्रभुको रुचे वैसे करने की कृपा विचारोगे!

उपसंहार :

अगर हमारा श्रीमहाप्रभुजीके प्रति हृदयका भाव और गौरवकी लगन सच्ची है तो उनके नाम पर पुजवाना कि उनके नाम पर नये वल्लभपंथ चलानेके बजाय स्वयं महाप्रभुजी कितना अधिक श्रीकृष्णके साथ निश्छल - निर्हेतुक प्रेम करते हैं और उसे करनेके लिये हमको भी समझाना चाह रहे हैं, उसे अगर समझेंगे तो ही महाप्रभुजीको हम अच्छे लगेंगे. अन्यथा तो सब बेकार है.

अंतमें पुष्टिप्रभु श्रीकृष्ण और महाप्रभुजीकी शरणागतिकी प्रार्थना करके अब इस प्रवचनका उपसंहार करूंगा–

सर्वसाधनहीनस्य पराधीनस्य सर्वतः ।
पापपीनस्य दीनस्य श्रीकृष्णः शरणं मम ।।

महाप्रभुजीने जो निश्चिंतताका यह दिव्य उपदेश हमारी श्रीकृष्णभक्ति और श्रीकृष्ण शरणागतिको सुदृढ़ करनेकेलिये दिया है उनके अनुग्रह एवं आश्रयकी भावनाके साथ इस कार्यक्रमके उपसंहार रूपमें आश्रयका पद भी हम गायेंगे–

दृढ़ इन चरणन केरो भरोसो ।
श्रीवल्लभनखचंद्रछटा बिन सब जग मांझ अंधेरो ।।१ ।।
साधन और नहीं या कलिमें जासों होत निवेरो ।
सूर कहा कहे द्विविध आंधरो बिना मोलको चेरो ।।२ ।।

oooooooooo